श्रीराम पचायतन

श्री भागवत-दर्शन

भागवती कथा

(तीसवाँ खण्ड)

व्यासशास्त्रोपवनतः सुमनांसि विचिन्विता।
कृता वै प्रभुदत्तेन माला 'भागवती कथा' ॥

लेखक

श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी

प्रकाशक
संकीर्तन भवन, भूसी,
प्रयाग

तृतीय संस्करण १०००] माघ, सं० २०२६ [मूल्य १:६५
संशोधित मूल्य २-० रुपया।

मुद्रक—वंशीधर शर्मा, भागवत प्रेस, ८५२ मुट्ठीगंज, प्रयाग

विषय-सूची

(तीसरा खण्ड)

सीतायाश्चरितं महत्

(भूमिका)

इति लोकाद् बहुमुखाद् दुराराध्यादसंविदः।
पत्या भीतेन सा त्यक्ता प्राप्ता प्राचेतसाश्रमम्॥*

(श्री भा० ९ स्क० ११ अ० १० श्लो०)

छप्पय

जननि जानकी! जड जीवनि ढिंग तुम क्यों आयीं।
क्यों अति करुनामयीं दुखद लीला दरसायीं॥
तव करुना के पात्र अज्ञ जड जीव नहीं माँ।
करुनावश ह्वै जगत हेतु अति विपति सहीं माँ॥
हाय! कहाँ अति मृदुल पद, कहँ कंकड युत पथ विकट।
ह्वै के अति प्रिय राम कीं, रहि न सकीं तन तैं निकट॥

माता जानकी! तुम इस परम घृणित, महान् निंदित, अत्यन्त कुत्सित, निन्दा प्रिय संसार में आयी क्यों? माँ! यह विकर्म निरत संसार तुम्हारे आने योग्य नहीं था। इतनी पवित्रता की परख ये पाखण्डी पुरुष कर ही क्या सकते हैं, इतनी दया के भार को ये अज्ञ संसारी जीव उठा ही कैसे सकते हैं, इतनी

* श्री शुकदेवजी राजा परीक्षित् से कह रहे हैं— 'राजन्! यह संसार बड़ा ही बहिर्मुख है, हठी है और इसमें रहने वाले लोग नाना प्रकार की अट-सट बातें बनाते रहते हैं, ऐसे ही मूर्ख लोगों से भयभीत हुए भर्ता श्री भरताग्रज ने भगवती सीता का परित्याग कर दिया, तब वे अयोनिजा वैदेही महामुनि वाल्मीकि के आश्रम पर चली आयीं।"

कृपाके वहन करने की शक्ति इन बहिर्मुख प्राणियों में आ ही कैसे सकती है ? माँ ! तुम इतनी करुणा, ऐसा वात्सल्य लेकर इस जगत् मे न आती, तो यह जड़ जगत् जड़ ही बना रहता; इसमे चैतन्यता का सचार होना ही नही। राम में रामत्व स्थापित करने वाली आद्याशक्ति ! हे विदेहनन्दिनी ! आप ही हो; जगज्जननी ! तुम्हारे बिना सब-शून्य हैं। संसार में दया के वशीभूत होकर तुम न आती, तो आज सभी राक्षस बन जाते, पशुओ मे और पुरुषों मे कोई भी भेद भाव न होता, सभी पशुचर्या मे प्रवृत्त हो जाते। गंगा जल से भी पवित्र, सुमेरु से भी अधिक, आकाश से भी अधिक विस्तृत और समुद्र से भी अधिक गंभीर तुम्हारे पातिव्रत धर्म के बिना दर्शन किये, यह ससार जड से भी जड बना रहता। माँ ! सब मे शक्ति संचार करने वाली जननी ! हे जगद्धात्री ! हे विश्वप्रसविनी ! हे परम वात्सल्यमयी मैया ! राम की भी कीर्ति जब तुम्हारे ही कारण है, तो अब हम और क्या कहे ? किन शब्दो मे तुम्हारी महती महिमा का बखान कर सकें। जगदम्बे ! एक निष्फल प्रयास करने की अभिलाषा मन मे जागृत हो उठी है। तुम्हारी महिमा के महार्णव मे से कुछ जल कण लेकर मै अपने नयनो को आर्द्र करना चाहता हूँ ! हे माता ! यह सब तुम्हारी ही कृपा से सभव हो सकेगा। तुम सर्वेश्वरी हो, आद्याशक्ति हो, सच्चिदानन्दमयी हो, सब कुछ हो।

जैसे कोई अपने को छिपाने के लिये अपनी कृति को किसी दूसरे ही नाम से प्रसिद्ध कर देते हैं, ऐसे ही अपने पावन चारु चरित्र को माँ मैथिली ने रामायण के नाम से प्रसिद्ध कर दिया वास्तव मे देखा जाय, तो रामायण मे तो श्री-सीताजी का ही महान् चरित्र है। रामायण में से भगवती सीता के चरित्र को निकाल दो, तो उसमे रह ही क्या जायगा ? सीता से रहित राम-

चरित वैसा ही हो जायगा, जैसा प्राणों से हीन शरीर। सीता ही रामायण की प्राण हैं। उन्ही के महान् चरित के कारण रामायण का महत्व है। सीता के बिना राम मर्यादा पालन भले ही करते रहे, किन्तु उन्हे कोई पूज नहीं सकता। कोई कल्पना ही नहीं कर सकता।

जब समाज अमर्यादित हो गया, तो राम मर्यादा को लेकर आये। कठोरातिकठोर मर्यादा राम के गले में पड गयी। राम गुम सुम रहने लगे। राजपुत्र ही ठहरे मर्यादा मे रहना होगा। माताओं ने देखा, बच्चा बडा गम्भीर है, इसमे सरसता न हुई तो आनन्द कैसे आवेगा, सुख का सचार कैसे होगा। वे राम को खिलाने लगी और कहने लगी— मेरे बच्चे की मुनमुना सी बहुआ सी वह आवगी। रुनझुन रुनझुन करती हुई घूमेगी। इन शब्दों ने विद्युत का सा काम किया। गम्भीर राम का मुख मडल पूर्ण चन्द्रमा के समान विकसित हो उठा। उस पर मद मद मुसकान की रेखाय खिच गयी। छोटे छोटे गोल कपोल रक्ताभ बन गय। माताओं को एक मत्र मिल गया रामने भी देखा इन शब्दों के श्रवण मात्र स ही मेरे तन मे स्फूर्ति आने लगी है शरीर में शक्ति का सचार होने लगा है, तो उन्होने ध्यान किया। ध्यान करत ही उनके रिक्त हृदय मन्दिर मे एक मनमोहिनी मूर्ति स्वय ही प्रादुर्भूत हुई। वह किसी को दीखती नही थी, राम ही एक उसको एकान्त मे ध्यान करते और सुखी होत। वह अव्यक्त प्रतिमा थी। राम के लिय वह सजीव साकार थी किन्तु दूसरा के दृष्टिगोचर नह होती नही थी। राम उसकी आराधना करन लगे। मिथिला मे राजा जनक भी उस परमा शक्ति के उपासक थे। राम की शक्ति साकार मूर्तिमती हुई, किन्तु वह अयोध्या मे नही हुई, जनक पुर के पावन क्षेत्र मे हुई, पृथ्वी फोडकर निकल आई। ॥।

कृतार्थ हो गये, उन्होने मनमानी निधि पाई। राम उस मनमोहनी मूर्ति का ध्यान निरन्तर करते, अब वे उसे साकार- मूर्तिमत अपने सग देखने को व्याकुल हो उठे। पडितो को पत्रा दिखाया। ज्योतिषियो को हस्तरेखायें दिखायी, जन्म पत्री बनवायी, किन्तु प्रयोजन सिद्ध हुआ नही। किसी ने कहा—"कुमार! पुण्य करो पुण्य। पुण्य के विना मनोरथ सिद्ध होता नही।" राम ने सोचा—"क्या पुण्य करें? सबसे बडा पुण्य तो साधु सन्तो की सेवा है। महात्माओ की परिचर्या है। अपने यहाँ वशिष्ठजी महात्मा है वे सेवा लेने से ही रहे। कभी पैदल देखते है, तो डाँट देते है—"राघव! रथ कहाँ गया?" कभी पैरो मे मृदुल उपानह न देखें तो चौंक पडे। जिन्हे रात्रि-दिन हमारे ही सुख की चिन्ता है, वे सेवा क्या लेंगे।" राम की आशा निराशा में परिणित होने लगी। सहसा एक दिन रूखी रूखी जटावाले भैंसे के से चर्मवाले लाल लाल आँख किये, विश्वामित्र महा मुनि आ धमके। न जिनके हृदय मे कृपा न मृदुता कठोरतप करते करते जिनका भीतर बाहर सभी कठोर ही कठोर हो गया है। आते ही दशरथजी से बोले—"मुझे अपने दोनो छोहरो को दे दो।"

दशरथजी पर तो मानो किसी ने वज्र गिरा दिया हो। किसी ने राम के कान मे कह दिया—"इस बाबाजी का पल्ला पकड लो तुम्हे तुम्हारी आराध्य देवी हृदय मदिर की अव्यक्त प्रतिमा को व्यक्त कर देगा। यह अभिलाषा को सजीव साकार बना देगा।'

हाय रे स्वार्थ! तेरा सत्यानाश हो। मृदुल से भी मृदुल कोमल से भी कोमल राम उस कठिन तपस्वी के पीछे अपने प्राण हो ही लिये। पिताजी से तो लज्जावश कुछ कह न सके गुरू जी के कान मे सब कुछ कह दिया। गुरुजी ने बात बना

ली। राजकुमार राम सेवक बन गये। बिना सेवक बने शक्ति मिलती भी तो नही।

ये दाढी जटा धारी साधु देखने मे ही भीतर बाहर से कठोर होते हैं, यदि कोई इनके हृदय के भीतर घुस जाय, तो उसे बडा स्निग्ध सरस स्रोत मिल जाता है, छिद्र करके उसमे उगली घुसा दो-मीठा-मीठा पदार्थ मिल जायगा।

राम भी विश्वामित्र के हृदय मे घुस गये। मुनि हँस पडे और बोले—'शक्ति प्राप्त करने के लिय तुम मेरी सेवा कर रहे हो न ?'

राम सहम गये। कैसे कहते, बोले—'नही महाराज ? मै अपना कर्तव्य पालन कर रहा हूँ, मुझे कुछ इच्छा नही।'

खिल खिलाकर मुनि हँस पडे और बोले —'अच्छा यही सही, तुम अपना कर्तव्य पालन करो, मैं अपना कर्तव्य पालन करता हूँ। चलो, मेरे साथ जनक पुर।''

राम के रोम रोम खिल उठे। जनकपुर जनकपुर कितना श्रुत मधुर शब्द है। मिथिला कितना मृदुल स्निग्ध पद है। राम ने सिर झुका लिया वे बोले नही। बोलने से बात बिगड जाती है, उसका स्वास्थ्य चला जाता है चल दिये मुनि के पीछे पीछे जनकपुर।

जनकपुर की सभा में प्रवेश करते ही राम शक्तिमान् हो गये। उनके आश्चर्य का ठिकाना नही रहा, उनकी चरण की धूलि से एक पत्थर की शिला रूपी नारी बन गई। अवध मे नित्य कितने पाषाणो को छूते थे; आज तक एक भी स्त्री नही बनी। इस मिथिलापुरी की मृदुल मृत्तिका मे ही कोई मनोहर मन्त्र है कि राम परम शक्तिशाली हो गये। मिथिला देश मे काटे युक्त वृक्ष नही, मृत्तिका इतनी कोमल कि पैर रखते ही धरती धँस जाय, ऐसा अनुभव हो मानो, हमं टटकें तुरन्त निकाले नवनीत

पर चल रहे हो। राम के रोम-रोम मे रसिकता छा गई, राम के नयन अलसाने लगे। मनमयूर नृत्य करने लगा। वे एक अनिर्वचनीय आनन्द मे मग्न हुए आगे बढ़ते जाते थे।

अरे, हमने यह क्या किया? हम तो सीता के महत्व को गाना चाहते थे, गाने लगे रामचरित। राम कुछ करते हो राम किसी की उपासना करते हो, हमे तो जगज्जननी जानकी जी का ध्यान करना है उनकी पावन मूर्ति के चारू चित्रो का दर्शन करना है। उनकी आनन्द दायिनी झाँकी करके निहाल होना है। अच्छा तो हम आपका जगज्जननी की पाँच झाँकी करावेंगे। ये पाँच झाँकी पृथक् नही एक ही है। केवल वस्त्राभूषणो के वेप से वे झाकी एक से एक उत्कृष्ट होती गयी है।

अच्छा, तो अब आप चटपट जनकपुर चलिये, देर करने का काम नही। देखना वहाँ अशिष्टता मत करना। राजद्वार है, कैसा भी मन चले किसी बालक बालिका को छूना मत। दूर से झाँकी कर लेना भला। महाराज जनक ने जन्म जन्मान्तरों की तपस्याओ का जो मूर्तिमान् फल पाया है, वही जानकी जी हैं। माता पिता तथा परिजन पुरजनो के प्यार मे ये इतनी लदी हुई हैं, कि न तो कभी पृथ्वी पर पैर रख सकती हैं, न कभी सिर ऊँचा करके किसी को देख सकती है। पलग पर हँसती रहती हैं, या माता पिता की गोदी मे क्रीडा करती रहती है अथवा सखी सहेलियो के साथ हिडोले पर झोटा खाती रहती हैं। इतना प्यार ससार मे किस बालिका ने पाया। ये तो प्रेम का प्रसार करने के लिये ही पृथ्वी के पेट से पैदा हुई हैं। इन्हे जो देखता है वही प्यार करने लगते है, कैसी भोली भाली, प्यारी-प्यारी सुकुमारी बालिका। सुकुमारता ने जब देखा ससार मे मेरा कोई नाम भी न लेगा, तो उसने आकर सीता जी की शरण ली। इन्होने भी कृपा करके उसे अपने चरणो मे स्थान दिया तब से

सुकुमारता इनके चरणो में लिपटी ही रहती है कमल पखुडियों का नीचे का भाग कठोर होता है। जनकनन्दनी के चरण उन पर भी पड जाते तो अत्यत रक्तवर्ण के हो जाते, कोमलता उन्हे सुहलाने लगती। सुकुमारी राज कुमारी की कोमलता का प्रभाव समस्त मिथिलावासी नर नारियो पर पडा। उन सब के हृदयो से कठोरता निकल निकल कर कही आश्रय ढूंढने लगी। सबसे कठोर रुद्र है, जिन्होने काम देव को ही भस्म कर दिया। उनका धनुष तो जड हो ठहरा, वह शिव धनुष दैवयोग से मिथिलावासी नर नारियो की समस्त कठोरता उसमे आकर घुस गयी। धनुष बडा कठोर हो गया।

यह बात महाराज जनक को प्रतीत हुई, तो वे घबराये। उन्होने सोचा—'मेरी पुत्री के रहते और कठोर मिथिला मे रहे यह उचित नही। इस धनुष को तुडवा दो ' किन्तु तुडवावे किससे मिथिलावासी तो सब परम मृदुल हैं। दूर दूर से राजे महाराजे बुलाये। दाँव दिखा दिये, दवयोग से विश्वामित्र जा आ गये। राजा बोले—'महाराज! तुम्हारे बाल भी कठोर, चर्म भी कठोर नियम भी कठोर किसी कठोर को बताओ जो इसे तोड दे।"

बाबा जी आँख मूँद कर मूठ मूठ सोचते रहे, माना इन्हे कुछ पता ही नही। मानो बडी गम्भीर गुत्थी है। सोच सोचकर बोले—"राजन्! एक है तो सही जो इसे तोड दे, परन्तु उसे तुम तुडवायी क्या दोगे ?'

राजा ने कहा—"महाराज! जो तुम कहो वही देंगे।"

मुनिने कहा—"पक्की बात है, फिर आना-कानी तो न करोगे। भरो निवाचा।"

ये मुनि बडे चतुर होते हैं। बिना निवाचा भराय तो

ही नही करते।' राजा ने त्रिवाचा भरी। तब मुनि बोले—"तोडने वाले को तुम्हे अपनी छोहरी देनी होगी।"

राजा वचन हार चुके थे। प्राण चले जायँ, परन्तु वचन न जायँ। बोले— अच्छा तोडने वाले को दिखाओ तो सही।"

विश्वामित्रजी ने श्रीराम को आगे खडा कर दिया। न जाने राम मे मिथिला मे प्रवेश करते ही कहाँ से जादू आ गया। महाराज विदेह विमोहित हो गये। राम का हृदय धक धक कर रहा था। राम के पीछे न जाने लाज कहाँ से लग गई थी, उससे राम चिढ रहे थे, किन्तु करते क्या। मुनि ने कहा—"राम पहिले उस वस्तु को देखना चाहते है। जिसे वह धनुष को तोडकर पारितोषिक मे पावेंगे ?"

- राम पर तो मानो किसी ने सौ घडे जल डाल दिया हो, उनका हृदय तो बाँसो उछल रहा था, किन्तु आँखें भूमि मे धँसने के लिए व्यग्रता कर रही थी।

ओह! हम फिर बहक गये राम से हमे क्या प्रयोजन ? हम तो किशोरी जी की दूसरी झाँकी करने के लिए समुत्सुक है।

अच्छा तो अब धनुष यज्ञ मे चलो, अब जनक नन्दिनी सयानी हो गयी है। उनके पिता उन्हे किसी दूसरे के हाथो सौंप देंगे। इससे उन्हे एक अपूर्व सुख है। सुख क्या है जी ? भगवान् जाने। आराधक की लगन के सन्मुख सभी को आत्म समर्पण करना पडता है।

मधुरातिमधुर परम मृदुल अत्यन्त सुकुमार राम कठोराति कठोर शिव धनुष को तोडने के लिए प्रस्तुत है, एक ही लोभ से कि उनके मन मन्दिर की मूर्ति साकार प्रकट होकर उनके कठ मे लिपट जायगी और वे उसे देख सकेंगे, छू सकेंगे, उससे बात कर सकेंगे, उसे पाकर सनाथ हो जायँगे, राम रगमच मे उतर आये। अब विदेहनन्दिनी की दूसरी झाँकी करो।

अपनी आभा से दिशा विदिशाओ को आलोकित करती हुई, नूपुरो की झनकार से दशो दिशाओ को मुखरित करती हुई अपनी बडी बडी कजरारी अँखियाओ से निरन्तर श्रीराम को ही निहार रही है। दया का कृपा का स्नेह का अनुराग का स्रोत फूट फूट कर धनुष को मृदुल बना रहा है। राम मेरे लिये यह सब कर रहे है, परम मृदुल से परम कठिन बन रहे हैं। अच्छा मै भी राम मे रम जाऊँगी, अपना पृथक अस्तित्व ही न रखूँगी। धनुष टूट गया, सीताजी ने आत्म समर्पण कर दिया, अब उनका पृथक अस्तित्व नही। वे राम की सहधर्मिणी अनुगामिनी बन गयी। यह उनकी दूसरी आत्म समर्पण की परम मृदुल झाँकी है। जानकी जी को पाकर राम भी राम बन गये, नही तो अकेले अयोध्या जी मे सत्तू फाँकते रहते। आज्ञापत्रो पर हस्ताक्षर करते रहते।

भगवती जनकनन्दिनी दुलहिन बन कर दूलहा श्रीराम के सग अवधपुरी मे आई। घर मे एक दो सास तो थी नही, पूरी ३६० सासें थी उनके ही प्यार का इतना बोझ उनके सिर पर लद गया कि वे दृष्टि भरकर अपने प्राणनाथ को भली भाँति देख भी न सकी। प्रेम की दो बातें भी न कर सकी। एक बार कौशल्या मैया जल पान करा गयी है, तब तक सुमित्रा मैया भी ले आयी। आज एक रोटी कम खायी महल भर मे हल्ला मच गया।

तब तक ही राज्य भार श्री राघव के सिर पर लाद कर राजा ने तप करने का निश्चय किया। साश्रु नयनो से राम ने कहा—"प्रिये! पिताजी, मेरे सिर पर राज्य भार देना चाहते हैं।"

जगन्माता बोली—"हानि ही क्या है, भार वहन करने ही तो हम संसार मे आये हैं, उठा क्यो नही लेते।"

'किन्तु प्रिये ! फिर तो मुझे लोक के रंजन में ही निरत रहना पड़ेगा। तुम्हारे प्रेम का आस्वादन तो मैंने अभी किया ही नहीं। यहाँ रह कर मैं व्यवस्था के मर्यादा के अधीन हो जाऊँगा, मैं तो तुम्हें मुक्त, कंठ से खुले हृदयसे प्यार करना चाहता हूँ। परस्पर में एक दूसरे के हृदय में तो प्यार है ही, किन्तु यह प्रेम शून्य जगत् भी तो देखे प्रेम कैसा होता है।" राम एक साँस में ही कह गये।

माँ वैदेही ने कहा—"दूसरों को दिखाने से क्या लाभ ?"

हँसकर राम बोले—"यहाँ तो दिखाने ही आये है ! यों प्यार करने को तो साकेत ही बहुत था। प्रेम का आदर्श भी तो रखना है।"

जगज्जननी बोली—"मुक्त प्रेम तो वन में होगा; सास ससुर और गुरुजनों के सम्मुख खुलकर प्रेम थोड़े ही किया जाता है।"

राम सहम गये—"हाय ! तुम इतनी सुकुमारी, चलना भी तो जानती नहीं, इन परम मृदुल चरणों से ककरीली पथरीली भूमि पर कैसे चलोगी, हाय ! हृदय फट जायगा।" राम रो पड़े।

दयामयी माँ बोली—"जीवों पर कृपा करने को सब कुछ करना होता है। बिना स्वयं कष्ट सहे दूसरों के कष्ट को निवारण नहीं किया जा सकता। मैं तुम्हारे साथ वन में चलूँगी। तुम्हारे पीछे छाया की भाँति विचरूँगी, तुम्हारा प्रेम स्पर्श पाकर मैं पुलकित हो जाऊँगी, मुझे कुछ भी कष्ट न होगा। नहीं तो त्रितापों से संतप्त यह स्वार्थी संसार प्रेम से शून्य हो जायगा। चलो चलें।"

पाठको ! तीसरी झाँकी करलो। वन में आगे आगे राम जा रहे है, उनके पीछे अत्यन्त सुकुमारी जनक दुलारी है, सब से

पीछे देवर लक्ष्मण हैं। कृपा से ओत-प्रोत हृदय को लेकर सब पर कृपा अनुकम्पा की दृष्टि करती हुई जगन्माता आज वन वन मे भटक रही हैं। क्या उनके मृदुलातिमृदुल परम सुकुमार चरण कुश कटकाकीर्ण अवनि पर पैदल भ्रमण करने योग्य है ? हम कब कहते है, योग्य हैं, जो कमल दल की पखुडियो से भी मृदुल हैं, उन्हे खाली अवनि पर घसीटना अन्याय हैं, अनुचित हैं, सर्वथा असगत है, किन्तु उन्हे रोक कौन सकता है वे सबकी स्वामिनी जो ठहरी। वनवासी नर नारियो और तपस्वियो को कृतार्थ करती हुई वे तेरह वर्ष तक पति के पीछे सघन वनो मे भटकती रही। जिस समय अपने प्रियतम के अङ्क मे अलसाती हुई वे गिर जाती और वनवासी राम उनके मस्तक पर अपना वरद हस्त फिराते उस समय दोनों ही आत्मविस्मृत होकर तन्मय हो जाते। आनन्द सागर मे निमग्न हो जाते, कैसी सजीव झाँकी है।

सहसा स्वामिनी जी को अपने पुराने प्रहरी जय विजय की याद आ गयी। वे राक्षस बने हुए हैं। कृपा से उनका हृदय उमडने लगा वे सोचने लगी उनका उद्धार हो।

"क्यों जी ! अपराध किया जय विजय ने, शाप दिया सनकादिकों ने, माता जी को उनकी इतनी चिन्ता क्यो हुई ?"

इसलिये हुई कि वे जगन्मता ही ठहरी। बच्चा कही भूल से हाथ पैर तोडलावे, तो भी उसकी सार सम्हाल माता को ही करनी होगी। यह सत्य है, वे अपनी करनी का फल भोग रहे हैं, किन्तु मातृ हृदय को तो इतने से सन्तोष नही होता। उनकी कृपा तो अहैतुकी होती है। उन्होने सोचा—"मैं आगे चली जाऊँगी, तो राघव को वहाँ विवश होकर आना पडेगा। यही सोच कर वे रावण के सग चली गयी राम भला कैसे रह सकते थे, वे भी वानर भालुओ की सेना को लेकर चले गये।

लंका की राक्षसियो ने सीता के यथार्थ स्वरूप को नह पहिचाना। वे उन्हे डराने धमकाने लगी, भांति भांति के त्रा देने लगी कच्चा ही खाजाने की धमकियाँ देने लगी। हनुमान ऊपर से सुन रहे थे रावण का उद्धार हो जाने पर हनुमान् जी ने माता जी से पूछा—"माँ! इन राक्षसियो ने तुम्हे बहुत क दिया है कहो तो इनकी कुटाई कर दूँ।"

यह सुनकर दयामयी माँ डर गयी और बोली—"अरे! हनुमान् भैया! देखो ऐसा भूलकर भी मत करना, सब अपने स्वभाव से विवश हैं ये सब अज्ञ-जन कृपा के पात्र हैं।"

यथार्थ मे माँ तुम ने दया के वशीभूत होकर ही तो इतने कष्ट उठाये, नही तो जय विजय ने अपराध किया और उसे सहने के लिये तुम राक्षसो के बीच मे रही। लंका मे ही राक्षस नही थे, सर्वत्र राक्षस थे, अवध मे भी तो राक्षस वास करते थे, उनके ही कारण तो तुम जीवन भर कष्ट उठाती रही।

अब चौथी झाँकी कीजिये। भावुक भक्तो को इसी झाँकी से सन्तोष होता है, वे तो तुम्हारी इसी छवि का ध्यान करते हैं। उनकी आराधना की तो यही शोभा है। रत्न जटित सिंहासन पर अपने स्वामी के सहित तुम विराजमान् हो। भरत जी चमर कर रहे हैं लक्ष्मण और शत्रुघ्न दायें बायें सेवा मे समुपस्थित है, हनुमान् जी चरणो मे सिर रखे नीचे बैठे हैं। यह पचायतन झाँकी अत्यन्त मधुर है तुम अपनी कृपामयी दृष्टि मे सब पर अनुग्रह की वृष्टि कर रही हो राम के रोम रोम खिल रहे हैं, सभासद अपने को कृत कृत्य अनुभव कर रहे हैं। तुम बिना भेदभाव के दया को लुटा रही हो, कैसी है यह तुम्हारी भक्त मन हारिणी छवि! चाहते है जन्म जन्मान्तरो तक एक तुम्हारी इस छवि का ध्यान करते रहे, आप सिंहासनासीन होकर इसी

प्रकार त्रितापो से तापित प्राणियो को अपने कृपा कटाक्षो की कोर से कृत कृत्य करती रहे।

यह ससार आज है माँ! मुझे क्रोध आ रहा है, यदि उस समय मैं होता, राम मुझे धनुष बाण दे देते, तो इन समस्त निंदको का नाश कर देता। ये निंदक कितने क्रूर होते हैं? हाय! झूठी बाते कहते हुए इन्हे लज्जा भी नही लगती, इनकी जिह्वा भी नही गिरती। अच्छा सत्य ही सही; किसी ने पाप किया, तो तुम्हारे बाप का क्या बिगडा। तुम अपनी छाती पर हाथ रखकर देखो, तुमने कभी पाप नही किया? तुमसे कोई अनुचित कार्य नही बना? तुम सर्वथा दूध के धुले ही हो, तुम्हारे मन मे कभी पाप नही आया? यदि आया है, तो भले मनुष्यो! तुम उसे ससार के सामने क्यो नही प्रकट करते। उस पहाड जैसे पाप को तो कृपणके धनके सदृश छिपाते हो और दूसरो मे दोष न रहने पर भी उनमे अनुमान से दोष लगाते हो। यह नही देखते की हमे उनकी आलोचना करने का क्या अधिकार है।

अयोध्या मे बसने वाला धोबी अपनी मेहरारू से कहता है—'तू रात्रि मे किसके घर रही? अब मैं तुझे अपने यहाँ न रखूंगा, क्या मुझे राम समझती है, राम तो स्त्री लोभी है जो नौ महीना रावण के घर मे रही सीता को फिर से रख लिया। मैं ऐसा अधर्म न करूँगा।"

लीजिये, ये चौधरी जी राम से भी दो हाथ ऊपर बढ गये। क्या कहे इस कुटिल ससार की ऐसे लोगो की बातो पर भी ध्यान दिया जाता है, तो हम तो यही समझते हैं, ये महापुरुष दया कृपा के वशीभूत होकर सिरीं हो, जाते है। सनक जाते है, इन पर पागलपन सवार हो जाता है। अयोध्या मे एक भी ऐसा धोबी नही था प्राय सभी धोबी ऐसे हो गये थे जो सीताजी सहित श्रीराम को सिंहासन पर बैठा देखकर जलने लगे थे।

जहाँ देखो तहाँ सीता के सतीत्व की चर्चा होती। कोई उन्हें निर्दोष बताता कोई सदोष कहता। राम अब कर्तव्य परायणता के अधीन हो गये थे। उन्हे राजा की मर्यादा का पालन करना था। हृदय पर पत्थर रखकर उन्होने प्राणो से भी प्रिय अपनी सती साध्वी पति परायण पत्नीका त्याग कर दिया। ससार तेरे सिर पर बिजली पडे। निन्दको ! तुम्हारे ऊपर वज्र भी नही गिरता। इतने कोमल रामको तुम्हारे पीछे वज्रका बनना पडा। जिस सीताके बिना एक पल भी राम रह नही सकते थे कर्तव्य के वशीभूत होकर उनके बिना ग्यारह सहस्रवर्ष रहना पडा ऊपर से वे हँसते प्रजा का न्याय करते, कठोर से कठोर कार्य करते किन्तु हृदय उनका रो रहा था। सीताजी का निर्वासन हुआ नही कि राम चरित का अवसान हुआ नही। अब राम के चरित्रमे रखा क्या है ये ही नीरस बातें हैं। कुत्ता मारने वाले को उसकी प्रार्थना पर मठका महन्त बना दिया। तपस्या करते हुए शूद्र सम्बूक मुनिका सिरकाट लिया। जब तक सीताजी थी तब तक राम चरित था सीता गयी, ग्यारह सहस्रवर्ष का कुछ भी चरित्र नहीं राम गद्दी पर बैठे रहे। इसे पकड, उस दड दे उसे पारितोषिक दे ये ही बातें होती रही, इन म क्या आत्म तृप्ति होती है।

वल्कल वस्त्र पहिने तापसी वेष मे सहमी सिकुडी रोती हुई उन जगज्जननी जानकी की पाँचवी झाँकी का दृश्य दिखाने की सामर्थ्य अब लेखनी मे रही नही। हाय ! जिस समय भरी सभा मे लडखडाती हुई रोती हुई माताजी, सीतोजी मे—अपनी माता पृथ्वी से—प्रार्थना करती हैं और उनकी प्रार्थना पर पृथ्वी फट जाती है यह अत्यन्त ही करुणापूर्ण प्रसङ्ग है। जब जब मैंने इस प्रसङ्ग को पढा, तब तब फूट फूट कर रोया हूँ, इस प्रसङ्ग को मैंने कितने कष्ट से लिखा है इसे पाठक अनुमान न

कर सकेंगे। लिखते लिखते मेरी आँखें वह रही हैं। इकत्तीसवे खण्ड मे आरम्भ का ५५ पृष्ठो का सबसे बडा यही अध्याय है। पाँचवी झाँकी उसी अध्याय मे मिल जायगी।

साराश यह है कि रामायण मे रामचरित की प्रधानता नही है, श्रीसीताजी का ही चारु चरित है उसी की मुख्यता है। हिन्दु सस्कृति की मुझसे कोई अत्यन्त सक्षेप मे व्याख्या पूछे, तो मै दो शब्द कह दूँगा "सीता"। इन दो शब्दा मे कितने उच्च भाव हैं, कितनी कृपा निहित है, कितनी अनुकम्पा और सरसता भरी है, वह व्यक्त करने की वस्तु नही। इतने निन्दा प्रिय वहिर्मुख ससार के सम्मुख ऐसी निधि प्रकट हो गयी और लोगा ने उसका महत्व नही समझा, उन्हे नाना क्लेश दिये। इससे अत्यन्त दुखित होकर किसी भक्त कवि ने बडे ही मार्मिक शब्दो मे कहा है—"हे माँ! मैथिली! आप अखिल जगन्नियन्ता अखिलेश अच्युत को आद्याशक्ति हो आप इस सार हीन ससार मे हमारे रक्षण और शिक्षण के ही निमित्त प्रकट हुई। किन्तु माँ! तुमने बोन भी बजाया तो भैस के सामने। अरे, यह निन्दा प्रिय स सार क्या आपकी महती महिमा को सुन सकता है, माँ! यह स सार तो वधिर है वधिर! इस बहरे ससार को अपना महत्व जताने को आपने व्यर्थ प्रयास किया। इसीलिए तो आपको इतना कष्ट सहना पडा। ऊसर खेत मे बीज बोने का यही तो परिणाम होता है। अब आप से कहे भी तो क्या कहे, शिक्षा तो देने का अधिकार नही। दें भी तो आप मानोगी नही, क्योंकि आपका हृदय करुणा से भरा है, आप करे बिना मानोगी नही। नही तो आप ही सोचो —"आप अपने परम प्रियतम श्री राघव से कभी पृथक होने वाली हो क्या? आप तो नित्य सं भोगिनी हो। पल भर की पृथक्ता सहन करने मे भी आप समर्थ न होने पर भी सदा आपको अपने हृदयेश्वर से

पृथक रहकर वनमे—मुनियो के बीच—समय विताना पड़ा। मालती कलिका से भी मृदुल अपने चरणारविन्दों में कंकरीली पथरीली भूमि वाले वनो मे भटकना पड़ा। अपनी स्वतन्त्रता और करुणा को जननि आपने अनुपयुक्त स्थान में लगाया। इसलिए आपसे तो हम कुछ कहते नहीं। किन्तु इतना अवश्य कहेंगे, कि आप की इस करुणा को धिक्कार है और करुणा करने मे जो आप सर्व स्वतन्त्र हो, उस स्वतन्त्रता को धिक्कार है।*

-

छप्पय

बालकपन महँ लाड प्यार तैं पली कुमारी।
आई पुनि ससुराल-राम सँग वनहिँ सिधारीं॥
नित पथ श्रम सहि करी कृपा जड़ सठ अपनाये।
युगल रूप दरसाय भक्त कृतकृत्य बनाये॥
अन्धो बहिरो जग भयो, अभिनिवेस करि असत् महँ।
कौन करि सकै कृपा माँ! तुम बिनु ऐसी जगत् महँ॥

संकीर्तन-भवन, प्रतिष्ठानपुर, वैशाख शु० १४, २००३ वि० — कृपा का अभिलाषी— प्रभुदत्त

---

* नैतु नित्यमहामनो त्वमसि नस्त्रातु त्वमभ्यागता।
लोके त्वन्महिमावबोधवधिरे प्राप्ता विमर्दं बहु॥
क्लिष्टं ग्रावसु मालतीमृदु पदं विश्लिष्य वासो वने।
जातं धिक्करुणा धिगस्तु युवयोः स्वातन्त्र्यमत्याकुलम्॥

★

राम-रावण-युद्ध

(३७९)

रामस्तमाह पुरुपादपुरीष यन्नः
कान्तासमक्षसतापहृता श्ववत् ते ।
त्यक्तत्रपस्य फलमद्य जुगुप्सितस्य
यच्छामि काल इव कर्तुरलङ्घयवीर्यः ॥❀

(श्री भा० ९ स्क० १० अ० २२ श्लो० २)

छप्पय

समर निशाचरनाथ लख्यो प्रभु कोप दिखायो।
नयन अरुन करि कहैं नीच सम्मुख अब आयो॥
चोर भीरु निरलज्ज निशाचर पामर कामी।
पीठ-पिछारी प्रिया हरी तू है खल नामी॥
अति सुकुमारी जानकी, दयिता दुःख दुसह दयो।
पृथक करहुँ धड़तैं शिरनि, उदय पाप खल तव भयो॥

मैत्री समान गुण वालो मे ही होती है। शत्रुता तो सभी कर सकते हैं, छोटे लोग भी बडो से शत्रुता कर लेते हैं किन्तु अपने समान शत्रु को देखकर बडी प्रसन्नता होती है। वही शत्रु श्लाघनीय है जो युद्ध मे समान बलवीर्य वाला हो। भगवान् के समान ससार मे हो ही कौन सकता है। जब उनके समान कोई है ही नही तब वे लडे किससे? भगवान् ने अपने भक्तों को अनुचरो को—अत्यधिक आदर दे रखा है। वे अपने भक्तो को अपने समान ही नही मानते, अपने से बडा भी समझते हैं। जब शेष शय्या पर पडे पडे ऊब जाते हैं, युद्ध के लिये हाथ खुजाने लगते है, तब वे अपने भक्तो से लडने को कहते हैं। भक्त और भगवान् का स्वामी और सेवक का युद्ध कैसा! जब वे भक्त रूप से—सेवक-

---

*श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन्! अपने सामने रावण को देखकर श्रीरामजी क्रोध करके बोले—"ओ, राक्षसो के मलरूप रावण! जब हम लोग पचवटी मे नही थे तब तू पापी कुत्ते की भाँति छिपकर मेरी प्राण प्रिया सीता को हर लाया था आज मैं तुझ निर्लज्ज को तेरे पाप का फल उसी प्रकार दूँगा जिस प्रकार अमोघवीर्य काल पापी पुरुष के पाप का फल देता है।"

रूप मे—समर स्वीकार नही करते, तब भगवान् उनका वेप बदल देते हैं। जब भगवान् की ही इच्छा लड़ने की है, तो उसे कौन अन्यथा कर सकता है। भक्त और भगवान् की अदभुत अनुपम लडाई भिडाई होती है। अन्त मे प्रभु उनके सब अपराधो को क्षमा कर अपना लेते हैं, अपने मे मिला लेते हैं।

सूतजी कहते है—"मुनियो। जब युद्ध मे रावण के मुख्य-मुख्य वीर तथा कुम्भकरण, कुम्भ निकुम्भ धूम्राक्ष, दुमुख सुरान्तक, नरान्तक मेघनाद, प्रहस्त, अतिकाय विकम्पन आदि सेनानायक मारे गये तब वह स्वय रथ पर चढ कर श्रीरामजी से युद्ध करने आया। देवताओ के राजा इन्द्र ने भी अपना दिव्य रथ भेज कर अपनी सेवा समर्पित की। देवेन्द्र के सारथी मातलि ने आकर भगवान् से प्रार्थना की। भगवान् मातलिकी आज्ञा से रथ पर चढे। भगवान् को रथ पर धनुपबाण धारणकिये युद्ध के लिये उद्यत देख कर रावण ने अपने सारथी से कहा—'सारथी। तू मेरे रथ को राम के समीप ले चल। आज मैं अपने कटक को सदा के लिये निकाल फेकूंगा। आज मै शत्रु रहित होकर निश्चिन्त हो जाऊंगा।"

अपने स्वामी की आज्ञा पाकर सारथी ने श्रीराम की ओर रथ बढाया। रावण को अपनी ही ओर आते देखकर भगवान् मातलि से बोले—"मातलि। तुम बाईं ओर से मेरे रथ को ले चलो। देखो, जब वह रावण मेरे ऊपर आक्रमण करे, तो तुम टेढे मेढे होकर उसके प्रहारो को बचाना।"

मातलि ने कहा—"प्रभो। देवासुर सग्राम मे मैंने अनेक बार असुरो के साथ युद्ध करते समय देवेन्द्र का रथ हाँका है। भर-सक मैं आप पर शत्रु का प्रहार होने ही न दूंगा।"

यह सुनकर भगवान् शीघ्रता के साथ बोले—"महाभाग इन्द्र-

सारथि ! मैं आपकी रणचातुरी से परिचित हूँ। मुझे यह भी पता है कि तुम समस्त रथ-हाँकने वालों में श्रेष्ठ हो। मेरा अभिप्राय आपको शिक्षा देने का नहीं था। न आपके सुयोग्य सारथी होने में अविश्वास करना ही है। मैंने तो युद्ध के अवसर पर आप को केवल स्मरण दिलाया है। आप अपनी इच्छानुसार जैसे उचित समझें वैसे ही रथ हाँकें।"

भगवान् के इन वचनों को सुनकर इन्द्रसारथि अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसने बड़े उत्साह के साथ रथ को आगे बढ़ाया। उधर से रावण भी अपना रथ बढ़ाकर श्रीरामचन्द्र जी के समीप आया अब दोनों ओर से बाणों की वृष्टि होने लगी। दोनों ही मंडलाकार घूमकर बाणों की वर्षा करते। दोनों ही परस्पर एक दूसरे को जीतना चाहते थे। दोनों ही युद्ध के भाँति-भाँति पैंतरे दिखा रहे थे। दोनों ही एक दूसरे को खिजा रहे थे, दोनों ही दिव्यास्त्रों का प्रयोग कर रहे थे। दोनों हो आकाशमंडल को बाणों से भर रहे थे। रावण क्रोध करके श्रीरामचन्द्र जी के सिर को लक्ष्य करके सहस्रों लक्षों बाण छोड़ता। उन्हें भगवान् अपने सिर पर उसी प्रकार धारण करते जिस प्रकार शिव जी कमल के पुष्पों को सिर पर धारण करते हैं। रणरूप महायज्ञ में भक्त रावण अपने इष्ट पर बाण रूप पुष्पों की बलि चढ़ा रहा था। वे बाण भगवान् को पुष्प के समान प्रतीत होते थे। रावण जिन-जिन अस्त्रों को चलाता उनके निवारणार्थ श्रीरामजी उसके विपरीत अस्त्र चलाकर उन्हें विफल बना देते। इस प्रकार राम-रावण का युद्ध संसार में अनुपम हुआ। राम-रावण के युद्ध की कोई उपमा ही संसार में नहीं। जैसे सागर के समान गम्भीर सागर ही है, जैसे आकाश के समान विस्तृत आकाश ही है, जैसे कामधुरा के समान चित्त को आकर्षित करने वाली कामधुरा ही है, जैसे वायु के

समान व्यापक वायु ही है, जैसे सुमेरु के समान सुमेरु ही है, जैसे त्याग वैराग्य के समान शांति का साधन त्याग वैराग्य ही है, उसी प्रकार राम-रावण के युद्ध के समान राम-रावण का युद्ध ही है उस युद्ध को देखकर सभी प्राणी भयभीत हो गये, आकाश मे देवता यज्ञ नाग, गुह्यक, किंपुरुष, सिद्ध, विद्याधर तथा अन्यान्य देव उपदेव उस भीषण युद्ध को देखने के निमित्त एकत्रित हुए थे।

जब रावण ने देखा श्रीरामजी के अव्यथ बाण तो मेरे शरीर मे लगते है और मेरे सभी अस्त्र शस्त्र विफल बनते जाते है, तब उसने अपने सारथी से कहा—"सारथि! क्या तू प्रमाद कर रहा है, मेरे रथ को राम के सर्वथा निकट क्यो नही ले चलता। आज मैं राम को युद्ध मे सन्तुष्ट करूँगा।"

इस पर सारथि शीघ्र ही रथ को घुमा फिरा कर श्रीराम के समीप ले गया। श्रीराम को देखकर रावण गरज कर बोला—राघव, मैंने तुम्हारे बाणो की बडी प्रशसा सुनी है, आज मै तुम्हारा बल पराक्रम देखूंगा। आज मै तुम्हे युद्ध मे सन्तुष्ट करूँगा। अब तुम मेरे सामने से बचकर जा नही सकते।"

रावण के ऐसे कठोर वचन सुनकर श्रीराम ने उसे ललकारा और बडी ओजस्वी वाणी मे कहने लगे—"अरे, राक्षसाधम! तू क्यों बढकर व्यर्थ की बातें बना रहा है। तेरी वीरता तो उसी दिन प्रकट हो गयी जिस दिन हमारे परोक्ष मे तू सती साध्वी पतिव्रता सीता को बलपूर्वक उसी प्रकार उठा लाया, जिस प्रकार कुत्ता परोक्ष मे भोजन की वस्तु को उठाले जाता है। क्या स्त्री की चोरी करना ही वीरता है? क्या कुबेर के भाई को यह कुकृत्य शोभा देता है? क्या अधर्म कार्य करके तू विजयी बनना चाहता है? मैं आज तुझे तेरी नीचता का फल चखाऊँगा।"

इस पर रावण बोला—"राम, तू बहुत बढ-बढ कर बातें

करता है. वीर बहुत बोलते नही, करके दिखाते हैं। अच्छी बात है, सम्हल जा।" यह कह कर उसने श्रीरामजी के ऊपर असख्यो बाण छोडे उसी बीच मे विभीषण जी आ गये। सम्मुख विभीषण को देखकर क्रोध से रावण का रोम रोम जल उठा। उसने कहा— "अरे, कुलकलक। तैने ही इन तपस्वियो को इतना बढा दिया है, तैने लका का समस्त भेद इन्हे बता दिया है। तू अधम है, नीच है जातिद्रोही, कुलद्रोही तथा भातृद्रोही है। तेरे जैसे नीच इस पृथ्वी पर रहेंगे, तो यह पृथ्वी रसातल को चली जायगी। अत. आज प्रथम तुझे ही मारकर पृथ्वी का भार उतारूँगा। राम से पहिले तुझे ही मारूँगा।" यह कर उसने विभीषण पर एक महान् शक्तिशालिनी अमोघ शक्ति चलाई। समीप में ही खडे लक्ष्मण जी ने जब देखा, कि विभीषण इससे बच नही सकते, तो उन्होने तुरन्त एक बाण छोडकर उस शक्ति के टुकडे २ कर दिय साथ ही रावण के घोडो को मार दिया, सारथी को घायल कर दिया। इस पर भी रावण तनिक भी नहीं घबराया। पृथ्वी पर आकर बाणवर्षा करने लगा। तुरन्त उसका दूसरा रथ आ गया। उसके अस्त्र शस्त्रो के प्रहार से वानर दशों दिशाओं मे भागने लगे श्रीलक्ष्मण जी को भी उसने शक्ति मार कर अचेत बना दिया। किन्तु हनुमान जी तो अब सजीवनी बूटी का पहिचान गये थे, तुरन्त लाकर उन्हे चैतन्य बना दिया।

रावण ने प्राणो का पण लगाकर युद्ध किया। वानरी सेना मे कोई भी ऐसा वीर नहीं था, जो उसके सम्मुख ठहर सके। यह देखकर श्रीरामचन्द्रजी परम कुपित हुए उन्होने उसके शरीर में इतने बाण मारे कि उसके शरीर मे तिल भर भी स्थान नही रहा। अब वह श्रीराम के बाणो का प्रतिकार भी नही कर सकता था। उसके अग शिथिल हो गये वह सज्ञा शून्य सा प्रतीत होता था।

उसके बुद्धिमान सारथी ने जब देखा, कि अब राक्षसराज युद्ध करने मे सर्वथा असमर्थ है, तो वह बड़ी बुद्धिमानी से रथ को टेढा मेढा हाँकता हुआ समर भूमि से बाहर ले गया। वहाँ जाकर उसने अनेक उपचारो से रावण को स्वस्थ किया। चेतन्यता आने पर जब उसने अपने को समरभूमि से बाहर देखा, तो सारथी पर परम कुपित होकर कहने लगा—"मुझे युद्धस्थल के बीच से यहाँ क्यो ले आया? युद्ध से भाग कर आना शूरवीर के लिये मृत्यु से भी बढकर दुःख की बात है। इससे संसार मे मेरी बडी अपकीर्ति होगी। रामके पक्ष के लोग प्रसन्न होगे। राक्षसो के सिर नीचे हो जायँगे। यह तैंने मेरे साथ विश्वासघात किया। प्रतीत होता है तू शत्रु से मिल गया है। छिपे छिपे शत्रुपक्ष से वेतन पाता है। अथवा तू प्रमत्तहै, बुद्धि हीन है, समर के नियमो से अनभिज्ञ है। तभी तो तैंने ऐसा हृदय दौर्बल्य प्रकट किया।

सारथी ने हाथ जोडकर कहा—"देव! मैं शत्रुपक्ष से न तो मिला ही हुआ हूँ, न मैं उन्मत्त तथा बुद्धिहीन ही हूँ। जब मैंने आप को अचेतन देखा तो युद्ध के नियमानुसार सारथी धर्म का केवलमात्र पालन किया। युद्ध मे रथी सारथी की और अवसर आने पर सारथी रथी की रक्षा करता है। उस समय चेतनाशून्य दशामे आपका समर मे रहना अनुचित था। अब आप चैतन्य हो गये, अब जैसी भी आप आज्ञा देंगे, उसका पालन करूँगा।"

इस पर रावण ने कहा—"अच्छी बात है। अब तो मुझे राम के सम्मुख ले चल।" इतना सुनते ही सारथी रावण को श्रीराम के रथ के सम्मुख ले गया। श्रीरामचन्द्रजी युद्ध से थके हुए प्रतीत होते थे। वे कुछ चिन्तित से जान पडते थे। अतः अगस्त्य जी ने तुरन्त आकाशमार्ग से आकर उन्हें आदित्य-हृदय-स्तोत्र

की शिक्षा दी और कहा—"राघव ! यदि आप इस स्तोत्र का विधिवत् पाठ करके युद्ध करेंगे, तो आप की विजय अवश्य होगी। यह सुनकर श्रीराम ने श्रद्धाभक्तिपूर्वक मुनि से उस दिव्य स्तोत्र को ग्रहण किया। आचमन करके स्वस्थचित्तसे उसका पाठ किया। पाठ करते ही उन्हें अपने शरीर में एक नई स्फूर्ति दिखाई दी। वे अनुभव करने लगे, कि मैं रावण को अवश्य मारूँगा।

रावण को सन्मुख देखकर श्रीराम कुपित हुए। रावण भी अब प्राणों का मोह परित्याग करके युद्ध करने लगा। उस समय समस्त प्राणी भयभीत हुए। पृथ्वी काँपने लगी, दिन में उल्कापात होने लगा। श्रीराम को शुभ दिखाई देने लगे, इसके विपरीत रावण को अपशकुन दिखाई दिये। राम-रावण का वह अपूर्व युद्ध देवासुर संग्राम से भी बढ़कर हुआ। इन्द्र और वृत्रासुर का युद्ध भी उसके सम्मुख तुच्छ हो गया। रावण अपनी सम्पूर्ण युद्धचातुरी प्रकट करने लगा। वह विश्वविजयी वीर था। एक मात्र श्रीराम ही ऐसे थे जो उसके सम्मुख युद्ध कर सकते थे। दोनों ही एक दूसरे पर प्रहार करते। दोनों ही के घोड़े उछलते कूदते। दोनों ही एक दूसरे के रथ को तोड़ना चाहते थे, सारथी को मारना चाहते थे और ध्वजा को काटना चाहते थे। दोनों के रथ कभी आगे दौड़ते, कभी गोलाकार चक्कर काटते, कभी सीधे दौड़ते, कभी पीछे हटते कभी दायें जाते, कभी बायें लौटते। इस पर दोनों ही अपनी-अपनी घातें लगा रहे थे। दोनों ही एक दूसरे का वध करना चाहते थे। दोनों ही सम्पूर्ण शक्ति के साथ समर कर रहे थे।

रावण ने बहुत से बाण मार कर इन्द्रसारथि मातलि को घायल किया। उसके रथ के घोड़े दिव्य थे। अतः उनकी न तो शक्ति ही क्षीण हुई और न वे बाणवर्षा से विचलित ही हुए

मातलि ने श्रीराम जी से सावधान होकर युद्ध करने की प्रार्थना की। अब तो श्रीराम सम्हल कर बैठ गये। वे अनुभव करने लगे, कि रावण साधारण शत्रु नहीं है। इसे मारने के लिये मुझे प्रबल प्रयत्न करना पड़ेगा। इसीलिये अब वे फेंट बांधकर अत्यन्त क्रोध करके रावण की ओर झपटे।

सूत जी कहते हैं—"मुनियो! राम-रावण के युद्ध का मैं सजीव चित्र खड़ा नहीं कर सकता। यह कार्य मेरी शक्ति के बाहर है। युद्धादि के वर्णन में मेरी विशेष रुचि भी नहीं है। इतना ही समझलें कि वह युद्ध संसार में अपूर्व था। उसकी न तो किसी से उपमा ही दी जा सकती है, न समानता ही की जा सकती है। यह श्रीराम की एक अनुपम लीला थी क्योंकि वे स्वयं अनुपम हैं।"

छप्पय

सुनत रामके वचन क्रोध करि रावण धायो।
धनुषबानकूँ तानि समर महँ सम्मुख आयो॥
उभय ओर तैं बान चलैं सुर मुनि सुख पावहिँ।
भयो रूपर अति कठिन उभय शर दिव्य चलावहिँ॥
ज्यों सागर, नभ, चन्द्र, रवि, की उपमा अनुपम कहीं।
त्यों रावन अरु राम की, रन-समता जग महँ नहीं॥

रावण वध

(६८०)

एवं क्षिपन् धनुषि संधितमुत्ससर्ज
बाणं स वज्रमिव तद्धृदयं बिभेद ।
सोऽसृग् वमन् दशमुखैर्न्यपतद् विमानाद्,
हा हेति जल्पति जने सुकृतीव रिक्तः ॥❀
(श्री भा० ९ स्क० १० अ० २३ श्लो०)

छप्पय

लीला रघुपति करहिँ लरहिँ जीतेँ अरु हारेँ ।
श्रमित होहिँ जय करहिँ सहहिँ शर पुनि पुनि मारेँ ॥
कबहुँ आगेँ बढहिँ फिरहिँ घूमे मुरि जानहिँ ।
कबहुँ उछरे दुबकि कुदकि झट सम्मुख आवहिँ ॥
भक्तनि हित अवतार धरि, नरलीला रघुवर करहिँ ।
बँधहि सेतु प्रभु चरित का, जाते सब भवनिधि तरहिँ ॥

❀ श्री शुकदेव जी कहते हैं— राजन् ! इस प्रकार दशानन का तिरस्कार करते हुए श्रीराम ने अपने धनुष पर बाण चढ़ाकर उसके ऊपर छोड़ा जिसके द्वारा उसके वज्र के समान हृदय को बेध दिया। उस बाण के लगते ही वह अपने दशों मुखों से रक्त उगलता हुआ पुष्पक विमान से उसी प्रकार गिरा जिस प्रकार पुण्य क्षीण होने पर पुण्यात्मा स्वर्ग से गिरते हैं। इस दृश्य को देख कर वहाँ के उपस्थित पुरुष हाहाकार करने लगे।

ससार मे जिसने जन्म लिया है, उसकी मृत्यु अवश्यम्भावी है। मृत्यु के लिये चिन्ता करना मूर्खता है। चिन्ता इस बात की करनी है कि हमारी मृत्यु उचित हो। जितने भजन जप, अनुष्ठान, पूजा पाठ-आसन, प्राणायाम आदि साधन है, सबका एकमात्र लक्ष्य यही है, कि मृत्यु समय हमे हरिस्मृति बनी रहे। अन्त मे जिसकी बन गई उसकी सब बन गई। अन्त मे जिसकी बिगड गई उसकी सब बिगड गई। सब परिश्रम अन्त के लिये ही है। अन्त मे जैसी मति होती है, वैसी ही गति होती है। उन राक्षस असुरो के भाग्य का क्या कहना है, जिन्हे स्वय साक्षात् श्रीहरि अवतार लकर अपने दिव्य अस्त्रो से मारते है। वे अधम योनि के असुर राक्षस मरत समय अपने चित्त को काव से ही सही राम मे लगाते है नेत्रो स जगत्पावन श्रीराम के रूप को निहारते निहारते तनुका त्याग करते है। इसीलिये वे ससार के आवागमन से सदा के लिये मुक्त हो जाते है। उनके समस्त कर्मबन्धन कट जाते है। उनका चरित्र रामचरित्र मे घुलमिल जाता है। रावणके बिना राम का क्या अस्तित्व। कस के बिना कृष्ण को कौन असुरोद्धारक कहेगा। ससार से सम्बन्ध छूटकर राम से सम्बन्ध हो जाय। वह सम्बन्ध प्रेम का हो, तब तो कहना ही क्या, सोने मे सुगन्ध है किन्तु प्रेमसम्बन्ध न भी हो, काम से, क्रोध से, भय लोभ से, तथा द्वेष से कैसे भी भगवान् से सम्बन्ध हो जाय बेडा पार ही है। आज हम अनुष्ठान पारायणो मे रावण के नाम कीतन क्यो करत है। इसलिये कि उसने श्रीराम से अपना सम्बन्ध स्थापित किया। शत्रु बुद्धि से ही सही, निरन्तर उनका चिन्तन करता रहा। अन्त मे उनके ही हाथो मारा गया, उन्ही का था और पुन उन्ही का प्रिय पापद बन गया। अत. श्रीहरि स यही प्राथना करनी चाहिय कि

हमारी मृत्यु हो तो श्रीहरि से किसी न किसी प्रकार का सम्बन्ध स्थापित होने के अनन्तर हो।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! राम और रावण का युद्ध परा-काष्ठा पर पहुँच गया। राम रावण को मारना चाहते थे, रावण बचना चाहता था। दोनों में ही घनघोर युद्ध होता रहा। जब श्रीरामने देखा, यह शत्रु तो परम प्रबल है, तब उन्हें बड़ा क्रोध आया। उन्होंने अपने धनुष पर एक अत्यन्त तीक्ष्ण चन्द्राकर बाण चढ़ाया। रावण को लक्ष्य करके श्रीराम ने उसके मस्तक में वह बाण मारा। बाण के लगते ही उसका सिर धड़ से पृथक होकर धड़ाम से धरती पर गिर गया। रावण का सिर कट जाने पर सभी चराचर प्राणी सुखी हुए साधु-साधु कहकर श्रीराम की प्रशंसा करने लगे, किन्तु इस बात को देखकर सब आश्चर्यचकित हो गये कि जिस स्थान से रावण का सिर कटा था, वहीं से उसके धड़ में तुरन्त एक वैसा सिर पुन: उत्पन्न हो गया। उसे भी श्री रामने तत्काल काट दिया। उसके कटने पर पुन. तीसरा सिर प्रकट हो गया इस प्रकार सैकड़ों सिर उत्पन्न हुए और उन्हें श्रीराम ने तुरन्त काट डाला, किन्तु रावण मरा नहीं। उसके सिर निरन्तर उत्पन्न होते रहे। यह देखकर श्रीराम अत्यन्त चिन्तित हुए। वे साधारण मनुष्यों की भाँति कुछ स्थिर न कर सके कि अब मुझे क्या करना चाहिये।"

श्रीराम की ऐसी दशा देखकर इन्द्र का सारथी मातलि उनसे बोला—"प्रभो! आप यह कैसी प्राकृत लीला कर रहे हैं। इस नर-नाट्य को दिखाकर जीवों को क्यों मोह में डाल रहे हैं। यह रावण साधारण बाणों से नहीं मरेगा। अब इसके ऊपर साव-धानी से मन्त्रों द्वारा अभिमन्त्रित करके ब्रह्मास्त्र छोड़ें। इसके मरने का एक निश्चित समय है। मैं अपनी दिव्य दृष्टि से देख

रहा हूँ कि इसके मरने का समय अब उपस्थित हो गया है। आपको भगवान् अगस्त्यने जो, ब्रह्मास्त्र प्रदान किया है, वह अमोघ है उसका प्रयोग इस पर कीजिये। यह राक्षस साधारण अस्त्रों शस्त्रों से मरने वाला नहीं है।'

मातलि की बात सुनकर श्रीरामने उसका अभिनन्दन किया और बोले—"इन्द्रसारथि! तुम बड़े बुद्धिमान हो, तुमने ब्रह्मास्त्र का स्मरण कराके बडा ही उत्तम कार्य किया, अब मैं कभी भी व्यर्थ न जाने वाले ब्रह्मास्त्र को विधिवत छोड़ता हूँ, उससे यह राक्षस अवश्य ही मर जायगा।' यह कहकर श्रीरामचन्द्रजी ने विधिपूर्वक आचमन किया और मन्त्रों से अभिमन्त्रित करके ब्रह्मास्त्र को धनुष पर चढाया। तदनन्तर रावण को लक्ष्य करके उसकी छाती में बाण मारा। उस बाण के लगते ही रावण मूर्छित होकर रथ से उसी प्रकार गिर गया, जिस प्रकार पकने पर फल वृक्षसे गिर पडता है। अथवा पुण्यक्षीण होने पर सुकृती स्वर्ग से गिर पडता है अथवा वेग कम होने पर ऊपर फेंका हुआ पत्थर नीचे गिर पडता है, अथवा अश्वविद्या का अनभिज्ञ दौड़ते हुए घोडे से गिर पडता है, अथवा जड कटने पर नदी के तीर का वृक्ष गिर पडता है। अथवा बालू को ढाह तीक्ष्णधार से कट कर गिर पडती है। रावण के गिरते ही सिद्ध चारण, गन्धर्व सभी साधु साधु कहकर श्रीरामका अभिनन्दन करने लगे। राक्षसी सेना मे भगदड मच गई। रावण का वह मृतक शरीर पृथ्वी पर पडा हुआ ऐसा ही प्रतीत होता था, मानो सुमेरु का शिखर टूट कर गिर पड़ा हो। उसकी आँखें फट गई थी। राम के बाण से हृदय विध जाने से वह रक्त मे लथपथ हो रहा था। रक्त से सना उसका शरीर ऐसा शोभित होता था मानो गेरुपर्वत का कोई शिखर टूट पड़ा हो। रावण को मृतक देखकर वानरी सेना मे

हर्ष छा गया। वानर भालु किलकारियाँ मारने लगे। फल और पुष्पों को उछालने लगे। वृक्षों की पुष्पित पल्लवित शाखाओं को तोडने लगे, वे इधर से उधर दौडने लगे, एक दूसरे का आलिंगन करने लगे। लक्ष्मण, सुग्रीव अगद नल नील, विभीषण, जाम वन्तादि तथा अन्यान्य बडे बडे वानरों ने आकर विजयी रामका अभिनन्दन किया उनकी पूजाकी और शत्रुवध पर बधाई दी। सबकी पूजा स्वीकार करके लोकाभिराम श्रीराम परम सुखी हुए। जो शत्रु चिरकाल से उनके हृदय म खटक रहा था उसका आज अन्त हुआ।

सूतजी कहते है— मुनियो! रावण को मरा हुआ देखकर अब विभीषण के हृदयमे भ्रातृप्रेम उमडा। अब वे पुरानी बात को भुलाकर मृतक रावणके शरीर के समीप जाकर भाँति-भाँति से विलाप करने लगे। विभीषण के करुण विलाप को सुनकर करुणासागर श्रीराम की आखो म आँसू आ गये।

छप्पय

खेंचि कान तक बान राम रावनके मार्यो।
काट्या धडतैं शीश धम्म धरतीपै डार्यो॥
उदित भयो पुनि शीश तुरत पुनि काट्यो रघुपति।
ज्यों ज्यों काटहिं उगहि नये लखि प्रभु विस्मित अति॥
मोहित सम चेष्टा करहिं मातलि बोल्यो बचन तब।
क्यौं नरलीला करहु हरि, ब्रह्म अस्त्र कूँ लहु अब॥

राक्षसियों का विलाप

ततो निष्क्रम्य लङ्काया यातुधान्यः सहस्रशः ।
मन्दोदर्या समं तस्मिन् प्ररुदत्य उपाद्रवन् ॥
स्वान् स्वान् बन्धून् परिष्वज्यलक्ष्मणेषु भिरर्दितान् ।
रुरुदुः सुस्वर दीना घ्नन्त्य आत्मानमात्मना ॥❀

(श्री भा० ६ स्क० १० अ० २४,२५ श्लो०)

छप्पय

मातलि सम्मति मान ब्रह्मसर धनु पै धारयो ।
करि अभिमन्त्रित तुरत निशाचरपति तव मारयो ॥
मरत निशाचर देव विप्र ऋषि मुनि सुख पायो ।
सुन रावन-वध बन्धु विभीषन ढिँग तब आयो ॥
लङ्कापति को निधन सुनि, आईं तहाँ निशाचरी ।
शिर पटकहिँ छाती धुनहिँ, मृतक पतिहिँ लखिगिरि परीं ॥

जिनके साथ जीवन भर रहे, जिस अग से अग सटाकर

❀ श्री शुकदेव जी कहते हैं—"राजन ! लका स बाहर निकल कर मन्दोदरी मादि सहस्त्रो रानियां रोती रोती समरभूमि म आई । जो लक्ष्मणजी के बाणो से मारे गये ऐसे अपने बन्धुबान्धवो के मृतक शरीरों का मालिङ्गन करती हुई दीन होकर उच्चस्वर से रुदन करने लगी और अपने आप अपने ही शरीरो को कूटने लगीं ।'

विहार, शैया, आसन, भोजन तथा शयन आदि में साथ-साथ रहे थे ही जब प्राणहीन होकर मृतक दशा मे हमारे सम्मुख आते हैं तो हृदय फटने लगता है, चित्त चाहता है अब हम भी मर जायँ। हम भी किसी प्रकार शरीर को त्याग दें। उस समय अपने स्नेही बन्धु बान्धवो और प्रियजनो के मृतक शरीर को देखकर वैराग्य उत्पन्न होता है। किन्तु वह वैराग्य स्थायी नही होता। कुछ काल में उतर जाता है। भगवान् की माया ऐसी प्रबल है कि प्राणियो का शोक सदा एक सा नही रहने पाता। ससारी व्यवहार मे फँस कर पुरानी बात भूल जाता है, फिर भी प्रियजन का सयोग ससार म सबसे श्रेष्ठ सुख है और उनका सदा के लिये वियोग सबसे बडा दुख है।

श्रीसूतजी कहते हैं—'मुनियो ! रावण मारा गया। विभीषण ने जब उसकी मृत्यु का समाचार सुना तो वे अत्यन्त दुखित होकर अपने ज्येष्ठश्रेष्ठ भाई के लिये विलाप करने लगे। अपने सर्वसमर्थ विश्वविजयी बन्धु को रक्त मे सना तथा भूमि मे पडा देखकर विभीषण बालको की भाँति फूट-फूट कर रोने लगे। रोते रोते वे कह रहे थे— राजन् ! आप सदा सुखद शैया पर शयन करते थे। आप के सोने के स्थान को दासियाँ भाँति भाँति से सुन्दरता पूर्वक सजाती थीं। आज आप बिना शैया के भूमि पर क्या सो रहे हैं। भैयाजी, आपके समान ससार मे कोई शूर वीर नहीं था। आपने इन्द्रादिक समस्त लोकपालो पर विजय प्राप्त की थी फिर आप आज कैसे पराजित हो गये। आप तो ऐसे महान् और विशाल वृक्ष के समान थे जिसकी जड अत्यन्त दृढ थी। फिर आपको रामरूप प्रबल पवन ने कैसे उखाड दिया ? आप तो उस ककुदवाले वृषभ के समान थे, जिसके सींग अत्यन्त पैने थे। आपको देखकर तो सभी भयभीत हो जाते थे। आज रामरूप-व्याघ्र ने

आपका भी अन्त कर दिया। आप तो उस मदोन्मत्त हाथी के समान थे, जिस पर अकुश भी काम नही देता, फिर भी रघुकुल-सिंह ने आपको प्राणहीन बना दिया। भैयाजी! मैने आपको कितना समझाया। सभी ऊँची-नीची बातें बताई। हाथ जोडे पैरो पडा किन्तु आपने मेरी एक भी बात न मानी। आप के सचिवो ने भी मेरी सम्मति का विरोध किया आपने भी उनकी हाँ मे हाँ मिलाई। मेरा तिरस्कार किया, इसमे आपके भी कुछ दोष नही। काल को जिससे जो कराना होता है, बलपूर्वक उससे वही करा लेता है। जिस समय जैसा होना होता है वैसी ही बुद्धि बन जाती है। विनाशकाल मे सभी बातें विपरीत हो जाती है। राजन् लका आपके बिना विधवा बन गई। आपकी उदारता परोपकारिता सहनशीलता, तेजस्विता, दृढता, तपस्या तथा शूरवीरता ससार मे सर्वत्र प्रसिद्ध है। आप अपने गुणो से ही विश्वविजयी बने थे। आपके बिना ये इतनी रानियाँ यूथभ्रष्ट मृगियो के समान विलाप करगी। आज मै बन्धुविहीन बन गया। अपने समथ बन्धु की मृत्यु का मैं कुलकलक ही कारण बना।''

विभीषण को इस प्रकार विलाप करते देखकर श्रीरामचन्द्र जी उसके समीप गये। उनके दुख मे दुखी से बने श्रीराम उन्हे समझाने लगे— भैया विभीषण, अब जो बात तो गई उसके लिये शोक करना व्यर्थ है। वीरो की कभी मृत्यु नही होती वीर तो सदा अजर अमर बने रहते हैं। वीर की मृत्यु का सोच भी न करना चाहिये। सोचनीय तो वे पामर हैं, जो कायरता पूर्वक खाट पर पडे पडे कष्ट से मरते हैं। जिन्होंने शत्रु का सामना करते हुए वीरता पूर्वक युद्ध करते करते प्राणो का परित्याग किया है वे तो श्लाघनीय हैं। तुम्हारे भाई ने अपने बाहुबल से राज्य प्राप्त किया, लोकपाल सहित देवताओ को जीता विश्व

को विजय किया, यथेष्ट दान दिया, बड़ो का सम्मान किया, शिव जी की आराधना की, प्रबल तपस्या की, परिवार वालो को सुख दिया, जाति मे श्रेष्ठता प्राप्त की विपत्ति पड़ने पर भी शत्रु के सम्मुख सिर नही झुकाया, किसी के सम्मुख दीन वचन नही कहे अपनी प्रतिज्ञा का प्राण रहते रहते पालन किया। जो कह दिया उसका अंत तक पालन किया। ऐसे श्रेष्ठ भाई की मृत्यु पर तुम्हें शोक न करना चाहिये। वैर का अंत प्राण के अंत होने पर हो जाता है। अत. यह अब जैसा ही तुम्हारा भाई है वैसा ही मेरा। अब तुम विधि पूर्वक इसका मृतक सस्कार करो। सम्राटो के योग्य इसकी अत्यन्त धूमधाम से क्रिया करो।"

श्रीरामचन्द्र विभीषण को इस प्रकार समझा ही रहे थे कि उसी समय विलाप करती हुई बहुत सी राक्षसियाँ लंका से आती हुई दिखाई दी। भगवान् उनके सम्मानार्थ एक ओर हट गये। युद्ध क्षेत्र का उस समय का दृश्य बड़ा ही बीभत्स था। स्थान स्थान पर मरे हुए राक्षसो के कटे हुए सिर और धड़ पड़े थे। बहुत से मर गये थे। बहुत से अधमरे बिलबिला रहे थे। किसी के हाथ कट गये थे। कोई बिना पैरो के बिलबिला रहे थे, बहुतो के शरीर रक्त से लथपथ हो रहे थे, रक्त की नदियाँ बह रही थी, मृतक शरीरो को कक गृद्ध सियार तथा अन्य मांस भोजी जन्तु नोच रहे थे। सर्वत्र दुर्गन्ध आ रही थी। राक्षसियाँ चिल्लाती और छाती पीटती इधर से उधर दौड़ रही थी। वे अपने पतियो के शरीरों को खोज रही थी जिनको अपने पति मिल जाते वे उनसे लिपट जाती। गोद मे रखकर भाँति भाँति से विलाप करती। कोई अपने पति के कटे सिर को लेकर मूर्छित हो जाती, कोई अपने पति के पैरों मे ही पड़ जाती। कोई ल्हासो पर पैर रख कर नीचे दबे अपने पति के शव को बलपूर्वक निकालती और न निकलने पर

गिर जातो। वहाँ का दृश्य परम कारुणिक था। श्रीरामचन्द्र जी का हृदय भी उस समय भरा हुआ था। राक्षसियों के सिर खुल गये थे, बाल बिखर गये थे। रोते-रोते कंठ बैठ गये थे। आँखें सूज गई थी। वे उच्चस्वर से निःश्वास छोड़ती हुई विलाप कर रही थी। अपने पतियों के गुणों का बखान करती करती रो रही थी। उनके करुण क्रन्दन से दशो दिशायें भर गई। कुछ तो पृथक-पृथक अपने अपने पतियों मृतक शरीर से लिपट कर रो रही थी। जिस समय सब राक्षसियाँ विलाप कर रही थी, उसी समय रावण की प्रधान-पत्नी मन्दोदरी अन्य बहुत सी स्त्रियों से घिरी हुई रोती रोती अपने पति के समीप आई।

सूत जी कहते है—"मुनियो! जिस मन्दोदरी ने दुःख कभी देखा ही नहीं था, जो सदा सुख मे पली थी, आज वह नगे ही पैरो पैदल अपनी छाती को पीटती हुई आ रही थी। उस समय मन्दोदरी की दशा को देखकर पत्थर भी पिघल जाते थे।"

छप्पय

बार बार पति देह अङ्कमहँ धरि धरि रोवैं।
मृतक बदन लखि दुखित होहिँ धीरजकूँ खोवैं॥
दृढ आलिगन करहिँ शीश धरनी में मारैं।
पटतैं पौंछैं रक्त धूरि पति शव की झारैं॥
निशाचरी रोवैं सतत, क्रन्दन-ध्वनि नभमहँ भरी।
तबई रानिनि तैं घिरी, आई तहँ मन्दोदरी॥

मन्दोदरी का विलाप

कृतैपा विधवा लङ्का वयं च कुलनन्दन ।
देहः कृतोऽन्नं गृध्राणामात्मा नरकहेतवे ॥ *

(श्री भा० ९ स्क० १० अ० २८ श्लो०)

छप्पय

प्राणनाथ कूँ निरखि मृतक मन्दोदरि रोई ।
ह्वैकें व्याकुल गिरी विरह महँ तनु सुधि खोई ॥
प्राणनाथ ! हृदयेश प्राणपति कहि डकरावै ।
क्रदन कुररी सरिस करै दुख तैं बिललावै ॥
रामवबंडर वायुतैं, पति-पादप जडतैं कट्यो ।
विधवा लङ्का ह्वै गई, मम सिंदूर सिरको मिट्यो ॥

भरणपोषण करने से पति को भर्ता कहा गया है । जिसके भर्ता का देहान्त हो जाय, उस नारी के दुःख के विषय मे जो भी कुछ कहा जाय वही थोड़ा है । पति ही स्त्रियो का सर्वस्व है । विधवा स्त्री उसी प्रकार शोभा नही पाती जैसे बिना जल की नदी ।

---

* श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षित् से कह रहे हैं—"राजन् ! रावण के मरने पर मन्दोदरी विलाप कर रही है—"हे कुल नन्दन ! तुमने हम सबको और इस लङ्का को भी विधवा बना दिया । देह को गीधो का आहार बना दिया और अपने आपको नरक का अधिकारी बना दिया ।"

पतिव्रता पत्नी के करुणाक्रन्दन मे करुणा की ऐसी धारा बहती है की उसमे आस-पास के सभी आर्द्र हो जाते हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो पति की मृत्यु से दुखी मन्दोदरी अपने पति के अग मे लिपटकर भाँति-भाँति से विलाप करने लगी। करुणाक्रन्दन करती हुई वह कहने लगी—'हे प्राणनाथ ? युद्धमे जब आपकी भी मृत्यु हो सकती है तब तो ससारमे मैं किसी को भी निश्चित विजयी नही कह सकती। आप ससार मे सबसे श्रेष्ठ योद्धा थे। इन्द्र, वरुण, कुबेर, यम तथा अन्याय लोकपाल कोई भी आपको जीत नही सके। आपने अपने बाहुबल से तीनो लोको को जीत लिया था। सूर्य आपके प्रभाव के सम्मुख निस्तेज होकर लङ्का मे उदित होते थे। पृथ्वी आपके भय से बिना जोते बोये सब ओषधियो को उत्पन्न करती थी। ससार मे कोई भी प्राणी आपका सामना करने मे समर्थ नही था। आपके नाम से समस्त लोक भयभीत होते थे। देवता भी आपके सम्मुख ऊँचा सिर करके नही खडे हो सकते थे। ऐसे आप आज श्रीराम के बाण से आहत होकर अवनिपर बिना विस्तर के सो रहे हैं। आप एक महान् पादप थे। ऐश्वर्य, बल, पराक्रम तथा धैर्य आपकी जड थी कुम्भकर्ण, मेघनाद आदि आपकी मोटी-मोटी शाखायें थी। प्रधान-प्रधान सेनापति छोटी-छोटी शाखायें थे। सैनिक पल्लव थे। तीनो लोको के समस्त रत्न उसके फल थे। यश कीर्ति उसके फूल थे। ऐसे महान् पादप को रामरूप आँधी ने आज जड से उखाड कर फेंक दिया प्राणनाथ ? आप अपने सामने किसी को कुछ समझते ही नही थे। आपने काम के वश होकर सतीसाध्वी सीता का अपहरण किया। आप सीता को हर कर नही लाये, अपितु अपनी मृत्यु को ही स्वेच्छा से ले आये। स्वामिन् ! मैने आपको सब प्रकार से सम-

भाया। सीता से भी सुन्दरी स्त्रियाँ आप मे अनुराग रखती थी, किन्तु भाग्यने मेरा सुहाग लूट लिया। प्रारब्ध ने आपकी मति विपरीत करदी। भवितव्यता ने आपके मन मे ऐसी धर्महीन इच्छा उत्पन्न कर दी। आपने सती सीता को उसके पति से कुछ काल के लिए पृथक् कर दिया था। उसके परिणाम-स्वरूप मै आपसे सदाके लिये पृथक् हो रही हूँ। सती की आह ने आज मुझे विधवा बना दिया। हे हृदयेश! आप बिना मै तथा ये अन्य सभी रानियाँ ही विधवा नही हुई अपितु यह लङ्का भी विधवा हो गई। आपने अपने धर्मात्मा भाई विभीषण की बात नही मानी। मेरे वृद्ध पिता ने आपको कितना समझाया। पर पकड कर, रोकर, दीन होकर, मैने आपसे कितनी-कितनी विनती की। किन्तु आपका तो काल समीप आ गया था। आपने काम के वश होकर किसी की बात न मानी। हाय! मै लुट गई। अब ये ये राक्षस किसके बल पर देवताओ से लड सकेंगे। किसके अधीन होकर स्वर्गीय सुखो का अनुभव करेंगे। हे प्राणधन! आप मुझसे बोलते क्यो नही। मैं कितनी देर से आप से बातें कर रही हूँ, क्या आप मुझसे अप्रसन्न हो गये है। इतनी कठोरता तो आपने पहिले कभी नहीं की। आप तो मेरा सबसे अधिक आदर करते थे आज आप धरती के ऊपर बिना बिस्तर के शयन कर रहे है। वह आपकी पद-प्रतिष्ठा के अनुकूल नही। आपकी विशाल बाहुओ मे सुगन्धित अंगराग लगाया जाता था, रक्त चंदन मे ये चर्चित होती थी, आज वे रक्त से सनी भूमि पर पडी हैं! मै कबसे रुदन कर रही हूँ। आप मेरे सिर पर हाथ रखें। सीता जब लङ्का मे आई तभी मैंने अपने कुल का विनाश समझ लिया था। सीता के कारण ही आज मै रानी से भिखारिनी बन गई। मैं कभी स्वप्न मे भी नही सोच सकती थी कि आपको कोई युद्ध में जीत

सकता है। आपको भी इस बात का विश्वास नही था, कि तीनो लोक मे मेरा कोई सामना कर सकेगा। तीनो लोको को जीतकर आप अपने को विश्वविजयी माने बैठे थे। जो बात असम्भव समझ जाती थी वह आज सभव हो गयी। जिसका स्वप्न मे भी भान नही था वह प्रत्यक्ष सम्मुख आ गई। हे नाथ! आप हमे किसके ऊपर छोड रहे है। आप हमारे किस अपराध पर उदासीन बन गये है। मैं तो सदा आपके अनुकूल आचरण करती थी मैंने जीवन मे एक ही बार आपका विरोध किया था, वह सीता-हरण के अवसर पर किया था। इसलिये विरोध नही किया था, कि सीता मेरी सौत बन जायगी। सौत तो मेरा सहस्रो हैं। द्वेष से नही, ईर्ष्या से नही मैंने तो आपको हितबुद्धि से विरोध किया था। मै जानती थी सीता सती है। सती चाहे तो अपनी दृष्टि से तीनो लोको का भस्म कर सक्ती है। देवी सीता न अपनी दृष्टि से हमारे कुलका नाश नही किया। यह उसकी महत्ता ही ह। उस देवी ने इतने कष्टो को भी धर्म के साथ सहन किया। किन्तु पाप का फल तो मिलता ही है। देर मे सवेर मे, पाप तो जड मूल से नाश कर ही देता है। हे राक्षसेन्द्र, मैं अब कहाँ जाऊँ। क्या करू? कौन मुझे धीर बँधावेगा।'

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इस प्रकार रावण की प्रधान पत्नी मन्दोदरी भाँति-भाँति से विलाप करने लगी। ढाह बाँधकर रोने लगी। मन्दोदरी का इस प्रकार रोते देखकर नोकाभिराम श्रीराम के भी नेत्रो मे आँसू आ गये। कारुणिक श्री राघवेन्द्र न विभीषण से कहा— विभीषण! तुम अपनी भाभी मन्दादरी का धैर्य बँधाओ। विधि के विधान को कोई अन्यथा नही कर स[illegible] जिसके भाग्य मे जिसके द्वारा जिस प्रकार जब मृत्यु बदी ह।

उसकी उसके द्वारा उसी प्रकार उसी समय अवश्य हो जाती है। उसे कोई टाल नही सकता।"

भगवान् की यह बात सुनकर विभीषण ने कहा—"प्रभो! मेरी भाभी मन्दोदरी बडी साध्वी है, यह धर्म के मर्म को भली भाँति जानती है। यह अयोनिजा है, आप के मत्री अंगद इनके ही कानीन पुत्र हैं।

यह सुनकर शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! हमने तो सुना है, मन्दोदरी दिति के पुत्र मय की पुत्री थी। हेमा नामक अप्सरा के गर्भ से यह उत्पन्न हुई थी। रावण जब मृगया के निमित्त वन मे गया था तब मय ने इसका विवाह रावण के साथ कर दिया था। अब आप कहते हैं यह अयोनिजा है। यह सुनकर हमे बडा ही आश्चर्य हुआ है कि अगद मन्दोदरी का पुत्र है। कृपया हमारे इस सदेह को दूर करें।"

शौनकजी के इस प्रकार पूछने पर सूतजी बोले—"महाराज! आपने जो सुना है वह भी सत्य है। किन्तु कल्पभेद से उत्पत्ति मे भी भेद हो जाता है। इस सम्बन्ध मे एक पौराणिक कथा है उसे आप दत्तचित्त होकर श्रवण करें।"

प्राचीनकाल मे एक बडे भारी तपस्वी मुनि थे। मुनि एकान्त मे रहकर घोर तप कर करते थे। आठ पहर मे एक बार दुग्ध पान करते थे। कोई सेवक दूध लाकर एक बरोसी मे अग्नि जलाकर उस पर दूध रख जाता। शनैः शनैः दूध गरम होता रहता। तीसरे पहर मुनि उठकर नेत्र मूंदे मूंदे ही दुग्ध का पान कर लेते पुनः ध्यान मे मग्न हो जाते। एक दिन दूध गरम हो रहा था। उसमे उबाल आ रहा था। उसी समय एक सर्प का बच्चा नीचे उतर रहा था। वह अकस्मात् उस दूध मे गिर पडा और मर गया। एक मूसिका इसको देख रही थी। मूसिका ने

सोचा--"मुनि यदि इस दूध को पी लेगे तो उनके प्राणो का अन्त हो जायगा। सर्प तो दूध के नीचे बैठ जायगा। मुनि को ध्यान भी न रहेगा। यदि मै इसमे गिर जाऊँ, तो ऊपर तैरती रहूँगी। मेरे मरने से मुनि बच जायं तो मेरी देह किसी काम मे आ जाय। इस अधम शरीर का कुछ उपयोग हो जाय।" यह सोचकर मूसिका दूध मे गिर पडी। नियत समय पर मुनि उठकर ज्योही दूध पीने लगे त्योही उन्हें ऊपर तैरती हुई मूसिका दिखाई दी। मुनि रुक गय। वे सोचने लगे--' मूसिका इस दूध मे कैसे गिरी। ध्यान से जब मुनिने सब बातें जान ली, तब उन्हे दया आई। तुरन्त उन्होने अपनी योगशक्ति से उस मूसिका को जीवित कर दिया। और साथ ही उसे एक बडी सुन्दरी बालिका बना दिया। वह कन्या मुनि के आश्रम पर रहकर मुनि की सेवा करने लगी। प्रातः उठकर स्नान के लिये जल ले आती आश्रम को झाड बुहार कर स्वच्छ रखती, पूजास्थान को लीप देती। दूध गरम कर देती। उनके वस्त्र को धो लाती। मुनि उसकी सेवा से बडे सन्तुष्ट रहते। कुछ काल मे वह युवती हो गई। मुनिको उसके विवाह की चिन्ता हुई। उसका उदर बडा मद, पतला था, इसलिये मुनि उसे मदोदरी कहा करते थे।

एक दिन मुनिको आहार के व्यतिक्रम से रात्रि मे स्वप्नदोष हो गया। प्रात उठकर उन्होने स्नान किया, गायत्री का जप किया, और ध्यान मे मग्न हो गये। उस कन्याने आश्रम को स्वच्छ किया और मुनि की लगोटी को लेकर नदी-तट पर गई। मुनि का वीर्य अमोघ था। जल से धोने पर भी जब वह न छूटा तो कन्या ने अनजान मे उसे स्वच्छ करने के निमित्त दाँतों से उसे छुडाया। इससे वह उसके पेट मे चला गया और वह गर्भवती हो गई। अपनी ऐसी दशा देखकर वह बहुत भयभीत हुई। उसका

डरते-डरते मुनिके सामने सब निवेदन किया। मुनि ने ध्यान से सब बातें जान लीं और बोले—"कोई बात नहीं, इससे तेरा कन्यापन नष्ट न होगा।"

समय आने पर उस कन्या ने एक पुत्र रत्न उत्पन्न किया। उस पुत्र के साथ आश्रम पर रहने लगी। उन महात्मा के आश्रम पर राक्षसराज रावण आया करता था। एक दिन रावण ने उस कन्या को एकान्त में बैठे देखा। उसके अनवद्य सौन्दर्य को देखकर राक्षसराज उस पर आसक्त हो गया। उसने जाकर मुनि को प्रणाम किया और पूछा—"भगवन्, आपके आश्रम पर यह कन्या कहाँ से आ गई। यह तो स्त्री-रत्न है, महलों में रहने योग्य है। इस निजनवन के योग्य यह नारी-रत्न नहीं है।"

मुनि रावण के भावको समझ गये। उन्होंने सोचा "हमें तो किसी न किसी को इसे देना ही है। अच्छा ही है त्रैलोक्य-विजयी सम्राट हैं।" यह सोचकर वे बोले—"राजन्! यदि आप चाहें तो इस कन्या-रत्न को ग्रहण कर करते हैं, किन्तु आप इसे अपनी प्रधान पत्नी बनावें।'

रावण ने प्रसन्नता-पूर्वक इस प्रस्ताव को स्वीकार किया और वह मन्दोदरी को ले गया। अब वह लडका ही रह गया। एक दिन बालि मुनि के आश्रम पर आया। उसने कहा—"भगवन्! मेरे कोई पुत्र नहीं है, आप ऐसा आशीर्वाद दें, कि मेरे एक पुत्र हो जाय।"

हँसते हुए मुनिने कहा—"राजन्! आशीर्वाद क्या दें, हम आपको साक्षात् पुत्र ही दिये देते हैं।" यह कह कर उन्होंने मन्दोदरी के कानीन पुत्र को वानरराज बालि को दे दिया। बालि उसे प्रसन्नता-पूर्वक ले गया। ताराने उसे सगे पुत्र की भाँति पाला पोसा।" इस प्रकार यह कल्प-भेद की कथा है। मन्दोदरी बड़ी

ही सुन्दरी और बुद्धिमती थी। रावण जब से सीता को चुरा लाया था तभी स मन्दोदरीने इसका विरोध किया था। किन्तु रावण उसकी सब बाता को हँसकर टाल देता था।

इस प्रकार यह मदोदरी अयोनिजा हुई। यह बडी पतिव्रता थी।

यह सुनकर शौनक जी न पूछा—'सूतजी! फिर क्या हुआ?

सूतजी बोले—"जब मन्दोदरी, की कथा श्रीरामजीने सुनी, तो उन्होन उसके प्रति आदर किया और विभीषण से बोले—'विभीषण। जा हो गया हो गया। अब तुम इस मन्दोदरी महारानी को धैर्य धराओ और रावण का शास्त्रीय विधि से प्रेत-सस्कार कराओ।"

विभीषण न कहा—"प्रभो। यह मेरा भाई बडा दुष्ट था इसन सदा आपका विरोध किया। सज्जना को दु ख दिया। सीता माता का बडी बडी यातनायें दी। इसीलिये मैं ऐसे अधम बन्धु का प्रेत कर्म न करूँगा।"

यह सुनकर अत्यन्त ही मधुर वाणी मे भगवान् बोले—'देखो, भैया। तुम्हारा कहना ठीक है शरीर के अन्त होने के साथ वैर का भी अन्त हो जाता है। विरोध तभी तक रहता है जब तक देह रहता है। देह का जहाँ अन्त हुआ, तहाँ तभी बातें भुला दी जाती है। इसीलिये अब पुरानी बाता को भूल जाओ। रावण के कुल मे तुमही अब ज्येष्ठ और श्रेष्ठ हो नियमानुसार तुमही इसकी अन्त्येष्टि क्रिया करने के अधिकारी हो। इसके समस्त सस्कार बडी धूम धामसे सम्राट् के अनुरूप ही करने चाहिय।

सूतजी कहते है—"मुनियो। भगवान् की आज्ञा पाकर विभीषण जी ने रोती हुई मन्दोदरी को भाँति-भाँति से समझाया

और फिर मृतक की अन्त्येष्टि क्रिया करने का प्रवन्ध करने लगे।"

छप्पय

परे धरनिपै प्रभो ! न दासिनि तैं वोले अब।
लागे जिनकूँ जीति प्रिया रोवैं ठाढी सब॥
रावन के सब कर्म विभीषण ने सोचे अब।
घृणा हृदय महँ भई मृतक नहिं कर्म करे जव॥
रघुनन्दन अति प्रेम तैं, प्रेत कर्म प्रायसु दई।
समुझाई मन्दोदरी, पृथक् देह पतितैं भई॥

रावण की अन्त्येष्टि क्रिया

स्नानं विभीषणश्चक्रे कोशलेन्द्रानुमोदितः।
पितृमेधविधानेन यदुक्तं साम्परायिकम् ॥*

(श्रीभा० ९ स्क० १० अ० २८ श्लो०)

छप्पय

राम-रजायसु पाइ विभीषण अनुमति दीन्ही।
सामग्री सब पितृकर्म एकत्रित कीन्ही ॥
चन्दन चिता बनाइ ताहि पै धरयो बन्धुतन।
निरखत मृतक शरीर सबनि को दुखित भयो मन॥
धू धू करि के चिता जब, जरी निशाचर नाथ की।
एक संग फूटी तबहिँ, चूड़ी रानिनि हाथ की॥

जिस देह के अभिमान से पुरुष अत्यन्त अभिमानी बन जाता है। मैं सुन्दर हूँ, स्वरूपवान् हूँ, धनी हूँ, विद्वान् हूँ, गुणी हूँ, ईश्वर हूँ, सिद्ध भाग्यवान् हूँ, मेरे समान दूसरा कौन है, अमुक ने मेरा अपमान क्यों किया? क्या वह मेरे प्रभाव को जानता नहीं। मैंने अमुक शत्रु को मार डाला, अमुक को उसके कुकृत्य का फल चखा दिया। इस प्रकार के देह ही कारण मिथ्याभिनिवेश

---

* श्रीशुकदेव जी कहते हैं—"राजन्! इसके अनन्तर श्रीरामचन्द्रजी के कहने से विभीषण जी ने अपने कुटुम्बियों की पितृमेधविधान द्वारा शास्त्रीय विधि से अन्त्येष्टि क्रिया की।"

हो जाते हैं। उस देह का अंतिम परिणाम क्या है। यदि बन्धु बान्धवों ने उसे अग्नि में जला दिया तो दो मुट्ठी राख हो जाती है, यदि भूमि में गाड दिया तो सडकर कोडे पड जाते हैं यदि जल में या वन में फेंक दिया तो मांसभोजी जीव खाकर विष्ठा बना देते हैं। ऐसे अनित्य शरीर के पीछे मनुष्य कैसे कैसे घोर पाप करता है, कितने प्राणियों को क्लेश देता है, कितने प्राणियों से वैरभाव कर लेता है। यदि इस शरीर के परिणाम की ओर जीव का ध्यान बना रहे, तो फिर वह ऐसे जघन्य पाप न करे।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! श्रीरामचन्द्रजी ने विभीषण जी को रावण की अन्त्येष्टि क्रिया करने की आज्ञा दी, तब भगवान् की आज्ञा शिरोधार्य करके उन्होंने सामग्री एकत्रित करनी आरम्भ कर दी। रावण अग्निहोत्री था, अग्निहोत्री का दाह-संस्कार उसकी अग्निहोत्र की अग्नि से ही किया जाता है। अतः विभीषण ने प्रथम जाकर रावण के अग्निहोत्र को समाप्त करा दिया। अग्निहोत्र के पात्रों और अग्नियों को लेकर ब्राह्मण निशाचर आगे चले। सबसे पहिले उसके मृतक शरीर को विधिवत् गंगाजल से स्नान कराया गया। सुगन्धित चन्दन उसके शरीर पर लपेटा गया बहुमूल्य रेशमी वस्त्र उसे पहिनाये गये सुगन्धित पुष्पों की माला पहिना कर सुवर्ण की पालकी पर उसका मृतक शरीर रखा गया। बहुमूल्य दुशाले से ढँक दिया गया। जितने अग्निहोत्री राक्षस थे उन्होंने स्वयं कंधा लगा कर उस पालकी को उठाया आगे आगे बाजे बजते जाते थे। अग्निहोत्र की तीनों अग्नियाँ तथा अग्निहोत्र के समस्त पात्रों को लेकर ब्राह्मण आगे चल रहे थे। उसके पीछे रोते हुये वृद्ध यातक राक्षस पालकी के पीछे चल रहे थे। सबसे पीछे रोती हुई राक्षसियाँ चल रही

थी। वे सब की सब सुकुमार थी। रावण के सामने वे कभी महल के बाहर भी नही निकलती थी। स्वेच्छा से उन्हे सूर्य भी नही देख सकते थे। पैदल चलने का उन्हे कभी काम ही नही पडा था। वे लडखडाती हुई कष्ट से चल रही थी। नितम्बो के भार से उनकी एडियाँ बालू मे घुस जाती जिन्हे वे कष्ट से निकालती हुई मथर गति से चल रही थी। निरन्तर रोने के कारण उनकी आँखे सूज गई थी, वे विलाप करती हुई रावण की अरथी के पीछे दु खपूर्वक चल रही थी। उनके बाल खुले हुये थे, आज वे सब बिना परदा के जा रही थी। सभी उन्हे देख सकते थे।

लंका से दक्षिण की ओर समुद्र के तट पर पवित्र स्थान मे रावण का शव रखा गया। चन्दन काष्ठ, और खस की सुन्दर चिता बनाई गई। दुखित विभीषण ने बडे कष्ट से रावण के मृतक शरीर को चिता पर रखा। उसके अग्निहोत्र के पात्र भी उसके साथ ही चिता मे रखे गये। उसकी चिता-वेदी दक्षिण और पूर्व की ओर बनाई गई थी। स्रुवा नाम के यज्ञपात्र को दधि और घृत से भर कर उसके कधे पर रखा। शकट नामक यज्ञपात्र पैरो पर रखा गया। जघाओ पर ओखल तथा अन्य काष्ठपात्र रखे। अग्नि उत्पन्न करन की उत्तरारणि और अधरारणि भी उस के ऊपरी अगो के समीप रखी। इस पर सब पात्रो को चिता मे रखकर पिड और बलि देकर विधि पूर्वक उसे वस्त्राभूषणो से अलकृत किया। अनेक प्रकार के वस्त्र और आभूषणो से सुसज्जित रावण जीवित के समान प्रतीत होता था। रोते-रोते विभीषण ने शास्त्रीय विधि से चिता मे अग्नि दी। धूधूकरके चिता जलने लगी। दशो दिशाओ मे चदन और खस की सुगन्धि भर गई। जिस देह के अभिमान से रावण तीना लोको के प्राणियो

को तुच्छ समझता था, उसे अग्नि ने जला कर दो मुठ्ठी भस्म कर दी। जिस देह को सुखी बनाने के लिये भाँति-भाँति के पाप किये थे आज वह पाँचों भूतों में विलीन हो गई।

देह के जल जाने पर विभीषण आदि सभी राक्षसों ने समुद्र में स्नान किया। उन सबों ने तिल-कुश युक्त जल रावण आदि समस्त बन्धुओं के निमित्त भीगे वस्त्रों से दिया। रावण के संस्कार के अनन्तर विभीषणजी ने सभी के पद प्रतिष्ठा के अनुरूप संस्कार कराये। सब का तिल मिश्रित जल से तर्पण किया। स्त्रियाँ ढाह मार कर रुदन करने लगी उनके करुण क्रन्दन से दशों दिशायें भर गईं। तब विभीषण जी ने सब स्त्रियों से कहा—"अब तुम सब महलों में चली जाओ।"

विभीषण की आज्ञा पाकर सभी राक्षसियाँ विलाप करती हुई अपने अपने महलों को चली गईं। स्त्रियों के चले जाने पर विभीषण जी श्रीरामचन्द्रजी के समीप गये और हाथ जोडकर बोले—"प्रभो! आपकी आज्ञा से मैंने अपने बडे भाई की अन्त्येष्टि क्रिया कर दी। और भी यथायोग्य सबके संस्कार करा दिये। अब मेरे लिये क्या आज्ञा है?"

सूत जी कहते है—"मुनियो! विभीषण के ऐसे विनीत वचन सुनकर श्रीरामचन्द्र जी प्रसन्न हुए। आज वे अपने बली पराक्रमी तथा सर्वसमर्थ शत्रु को मार निश्चिन्त से हुए। वे ऐसी चेष्टा करने लगे मानो मेरा मनोरथ सफल हुआ। अब तक उनकी मुद्रा क्रोधयुक्त थी, अब उन्होंने क्रोध का परित्याग कर दिया। वे बडे स्नेह से विभीषण जी से बोले—"राक्षसराज! मैं नहीं चाहता था कि रावण का वध करूँ। मैंने युद्ध को रोकने की बहुत चेष्टा की अङ्गद को भेजा। सन्धि का प्रस्ताव किया, किन्तु उसने

मेरे प्रस्ताव को ठुकरा दिया, किसी भी प्रकार वह सीता को लौटाने के लिये उद्यत नहीं हुआ। तब मैंने विवश होकर उसका वध किया।"

यह सुनकर विभीषण ने कहा—"प्रभो! मेरा भाई बड़ा दुष्ट था। वह अत्यन्त ही हठी था। जिस बात को वह निश्चय कर लेता उसे वह करके ही छोड़ता था। किसी की भी सम्मति वह नहीं मानता था। मैंने तथा मन्त्रियों ने उसे बहुत समझाया। मन्दोदरी ने भी विनयपूर्वक प्रार्थना की। किन्तु उसकी तो मृत्यु निकट आ गई थी। किसी भी प्रकार उसने सीताजी को लौटाना स्वीकार नहीं किया। इसलिये उसे ये दिन देखने पड़े। फिर भी प्रभो! मेरा भाई बड़ा भाग्यशाली था। जो गति ज्ञानी ध्यानी तथा योगियों को भी प्राप्त नहीं वह उसने प्राप्त की। मरते समय आपका नाम जिनकी जिह्वा पर आ जाता है वह मुक्त हो जाता है, सो इसने तो आपके लोकाभिराम सुन्दर स्वरूप को देखते-देखते तनु त्याग किया। आपसे किसी प्रकार भी सम्बन्ध हो जाय उसी का बेड़ा पार है।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इस प्रकार विभीषण जी ने अनेक भाँति से भगवान् की स्तुति की। प्रसन्न होकर भगवान् ने लक्ष्मणजी को आज्ञा दी कि विभीषण का राज्याभिषेक किया जाय इतना सुनते ही सब लोग बड़े प्रसन्न हुए और विभीषण जी के राज्याभिषेक की तैयारियाँ होने लगी। इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजी ने रावण का उद्धार किया। देवताओं का दुःख दूर किया, पृथ्वी का भार उतारा। रावण के मरने पर युद्ध देखने के लिये जो देवता सिद्ध गन्धर्व आये थे वे अपने-अपने विमानों पर चढ़कर अपने-अपने लोकों को चले गये।

छप्पय

डकरावें सब नारि दृश्य अति ई दुखदायक।
दाह करम करि दई तिलाञ्जलि निशिचर-नायक॥
धूम-धाम के सहित विभीषण किया कराई।
भस्म देह की भई परम गति रावन पाई॥
सब सौतिनि कूँ संग ले, मंदोदरि महलनि गई।
सब वानर प्रमुदित भये, विजय रामदल की भई॥

श्री सीताराम का सुखद सम्मिलन

ततो ददर्श भगवानशोकवनिकाश्रमे
क्षामां स्वविरहव्याधि शिंशपामूलमास्थिताम् ।

रामः प्रियतमां भार्यां दीनां वीक्ष्यान्वकम्पत ।
आत्मसंदर्शनाह्लादविकसन्मुखपङ्कजाम् ॥*
(श्री भा० ६ स्क०, १० अ०, ३०-३१ श्लोक)

छप्पय

आइ विभीषण रामचरनमहँ शीश नवायो ।
पूँछे राघव सीय कहाँ तब पतो बतायो ॥
जानि नगर तैं दूर गये रघुनायक नेही ।
विरह व्यथातैं व्यथित लखी बैठी वैदेही ॥
मलिन वसन कच जटा बनि, बिथुरे इतउत म्लानमुख ।
पति दरशन तैं भयो अति, सीय हृदयमहँ परम सुख ॥

विरह प्रेम को निर्मल बना देता है। जैसे एक स्थान मे रखे बर्तन मे काई लग जाती है, जब उसे खटाई से रगड देते हैं तो चमकने लगता है। मीठी वस्तुओ को खाते-खाते जब मुँह भर जाता है तो तनिक सी चटपटी चटनी चाट लेने से स्वाद बदल जाता है कडवी मिरच खा लेने से मिठाई और भी स्वादिष्ट लगने लगती है। वियोग मे जिसे जितना ही दुख होगा, सम्मिलन मे उसे उतना ही सुख होगा। विरह मे जितनी ही अधिक उत्कठा होगी, संयोग मे उसे उतना ही सुखानुभव होगा। जिस प्रेम मे विरह नही वह अधूरा है, अपूर्ण विरह प्रेम के स्वारस्य अभिवृद्धि का कारण है।

* श्री शुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! तदनन्तर श्री रामचन्द्र ने अपने ही विरह की व्याधि व्यथिता अत्यन्त दुर्बला श्री सीताजी को अशोकवन के एक आश्रम मे शिशपातर के तले बैठे हुए देखा।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! अशोकवाटिका में वैठी वैदेही अपने प्राणनाथ की बडी उत्कण्ठा से प्रतीक्षा कर रही थी । यदि पतिमिलन की आशा न होती, तो उनका जीवन पल भर भी न रहता । उनके प्राण-पखेरू कबके उड जाते । वे एक मात्र इसी आशा से जीवित रही, कि कभी न कभी मेरे हृदयधन समुद्र को पार करके आवेंगे और मुझे राक्षसो के वन्धन से छुडावेंगे । जब उन्होने सुना कि समुद्र का सेतु बांधकर शरणागतवत्सल श्रीराम लका मे आ गये तब से उनकी उत्कठा अत्यधिक वढ गई थी । उन्हे पल-पल भारी हो रहा था । वे सोचती थी—"हाय ! मैं कैसी हतभागिनी हूँ, कि प्राणनाथ के समीप रहने पर भी मैं उनके दर्शन नही कर सकती । उन्हे न दिनमे कल थी न रात्रि मे । वे रात्रिदिन जाग कर रोते-रोते श्रीराम की ही प्रतीक्षा करती रहती थी । युद्ध के समय चित्त मे अनेक प्रकार के विचार उठते थे । राक्षस भाँति-भाँति की माया रचकर भयापति को भुलाना चाहते थे जगज्जननी को भी वे भुलावा देने का षडयन्त्र रचते थे । जगदम्बा भी मानवीय लीला का अनुसरण करती । कभी रोती कभी दुखित होती । अब जब उन्होने सुना कि मेरे अपमान करने वाले रावण को मेरे प्राणनाथ ने पछाड़ दिया, रावण के सिर को धड से पृथक कर दिया, तब उनके हर्ष का ठिकाना नहीं रहा । रावण के मरने पर उन्हें हर्ष नही हुआ, उनको तो इसी बात का हर्ष था, कि मैं अपने हृदय-धन राजीवलोचन रघुनन्दन का दर्शन कर सकूँगी । चिरकाल की प्यासी अपनी आँखो को उनकी छविरूपी सुधा से तृप्त कर सकूँगी वे टकटकी लगाये द्वार की ही ओर देख रही थी कि प्राणनाथ किसी को मुझे बुलाने के लिये भेजेंगे । तनिक भी पत्ते की खडखडाहट होती उनकी उत्सुकता वढ जाती ।

सोचती कोई आ रहा है। जब कोई दिखाई न देता, तो उन्हें बडी निराशा होती। इसी प्रकार वे बडी देर तक प्रतीक्षा रूपी अगाध सागर मे डूबती रही। प्रेम मे सदा सदेह बना रहता है। प्रतीक्षा के पल बहुत बड़े बन जाते हैं। जब बहुत देर तक कोई नही आया, तो वे सोचने लगी—"प्राणनाथ ने मुझे अभी तक बुलाया क्यो नही। कही उन्हे मेरे चरित्र पर सदेह तो नही हो गया? उन्होने यह नही सोच लिया कि नौ महीने जो राक्षस के घर मे रह चुकी है, जिसे रावण पकडकर ले गया है, उसे मैं कैसे अपना सकता हूँ। फिर सोचने लगी—"नही यह बात नही, वे तो अन्तर्यामी है। घट-घट की बात जानते है। उनसे मेरे भाव अविदित नही हैं। मेरे मनमन्दिर मे तो उन्ही की मनमोहनी मूरत सदा समाई रहती है। मैं भूल से भी किसी भी दशा मे, परपुरुष का चिंतन नही कर सकती। फिर अभी तक उन्होने मुझे बुलाया क्यो नही। सभव है किसी काम मे फँस गये हो। अभी-अभी तो रावण का बध हुआ है। सभी प्रवन्ध तो उन्ही को करना है। तो भी मैं तो उनकी अनन्य उपासिका हूँ। मेरी तो उन्हे सुधि लेनी ही चाहिये। उन्हे स्मरण न भी रहे तो लक्ष्मण, हनुमान, सुग्रीव तथा विभीषण इत्यादि सभी मुझे भूल गये। विभीषण यहाँ होते तो मैं उनको सवाद भेज देती किन्तु वे तो युद्धस्थल पर है। इस प्रकार सीताजी अनेक प्रकार की बातें सोचती हुई राम दर्शन के लिये उत्सुक हुई घडियो को गिनने लगी।

इधर रावण की अन्त्येष्टि क्रिया होने के अनतर श्रीराम चन्द्रजी ने अपने सुहृद सखा सेवक तथा अनन्योपासक विभीषण जी से पूछा—"विभीषण मेरी प्राणप्रिया वेदेही कहाँ है?—

हाथ जोड़े हुए विभीषण ने कहा—"प्रभो! जनकनन्दनी

जगज्जननी भगवती सीता लङ्का मे ही हैं। आप पधारें। अपनी चरणधूलि से मेरे गृह को कृतार्थ करें।"

श्रीरामचन्द्रजी ने कहा—"विभीषण! मेरी वस्तु तुम्हारी है। तुम्हारी वस्तु मेरी है। तुममे और हममे कोई भेद भाव नही। मैं तुम्हारे घर अवश्य चलता, किन्तु वनवास के पूर्व मैंने प्रतिज्ञा की थी मैं नगर मे न जाऊँगा। अतः मैं तुम्हारे घर नही जा सकता। यदि सीता नगर मे है तो मैं उसके भी समीप नही जा सकूँगा।"

यह सुनकर विभीषण ने कहा—"नही, प्रभो! सीता मात तो अशोकवन मे रखी गईं हैं वह तो नगर से बहुत दूर सुन्दर उपवन है। यदि आप नगर मे न जाना चाहे तो अशोकवाटिका मे तो चल ही सकते है।"

भगवान् ने कहा—"विभीषण! मेरा मनमधुप सीता के मुख-कमल के दर्शनो के लिये अत्यन्त उत्कण्ठित हो रहा है, किन्तु नियम के कारण मे बँधा हुआ हूँ। यदि नगर के बाहर-बाहर अशोक उपवन के लिए कोई मार्ग हो, तो मैं अपनी प्राण प्रिया के पास चल सकता हूँ।'

विभीषण ने कहा—"दीनबन्धो! नगर के बाहर ही बाहर अशोक उपवन के लिए सुन्दर सुविस्तृत राजपथ है। चतुरगिनी सेना आगे-आगे चले। सीता जी के मैले कुचैले वस्त्र उतारे जायं। उनको सुकुमारी सुन्दरी राक्षसियाँ उबटन लगा कर स्नान करावें। सोलहो शृङ्गार करके सीता जी आपके सम्मुख आवें।"

श्रीराम चन्द्र जी ने कहा—"विभीषण! चतुरगिनी सेना की क्या आवश्यकता है। सीता को मैं उसी दशा मे देखना चाहता हूँ। उसके स्नान शृगार की अभी आवश्यकता नही। मेरी प्रिया

ने मेरे बियोग मे इतने दिन किस प्रकार, किस वेष से काटे हैं इसे मैं स्वय जाकर देखना चाहता हूँ। हनुमान, अंगद, लक्ष्मण, सुग्रीव और विभीषण मेरे साथ चलें।'

भगवान् की ऐसी आज्ञा पाकर विभीषण परम प्रसन्न हुए। जिन जिनका नाम निर्देश कर दिया गया था, उन्हे साथ लेकर श्रीरामचन्द्रजी चले। आगे-आगे विभीषण मार्ग दिखाते जाते थे राजपथ के दोनो ओर लका के राक्षस हाथ जोडे खडे थे, अत्यन्त उत्कठा के साथ प्रेम भरित हृदय से श्रीराम पैदल ही अपनी प्राण प्रिया से मिलने चले। कुछ दूर चल कर विभीषणजी ने एक अत्यन्त ही सुन्दर वाटिका मे प्रवेश किया। उस वाटिका की शोभा को देख कर अखिल ब्रह्माण्ड-नायक श्रीरामचन्द्रजी परम विस्मित हुए। रावण के ऐसे अपार ऐश्वर्य को निहार कर वे चकित दृष्टि से इधर-उधर निहारने लगे। उसी समय हाथ जोडकर विभीषण ने कहा—"प्रभो! सम्मुख जो अशोक के अनेकवृक्ष हैं उनके समीप ही एक शिशपा का वृक्ष है। उसी के नीचे जगदम्बिका अधिक बैठती हैं। देखिये वे सम्मुख बैठी दिखाई देती हैं।"

इतना सुनते ही श्रीरामचन्द्रजी आगे बढे। शेष सब लोग ठिठक गये। भगवान् ने दूर से ही देखा—एक मैले रग की साडी ओढे शिशपा वृक्ष के नीचे एक पाषाणप्रतिमा के सदृश देवी भूमि पर विना आसन के बैठी है। मानो माता की गोद मे आसन की अनावश्यकता दिखा रही हो। उनके कारे-कारे घुँघराले बाल बिना धोये चिकट कर जटा बन गये है। अधिक उपवास करने से उनका तन कृश हो गया है। नेत्र बन्द करके अपने इष्ट का ध्यान कर रही हैं। सीता जी की ऐसी दशा देख कर परम कारुणिक श्रीराम का हृदय भर आया। प्रेम के अश्रुओं

से उनका मुख भीग रहा था। अस्खलित वाणी में उन्होने कहा—"सीते! मैं आ गया।"

अत्यंत मधुर चिरपरिचित हृदय में गुदगुदी पैदा करने वाले न शब्दों को सुनते ही विस्मय के साथ सीताजी ने अपने नयनों को खोला। मानों सूर्य के उदय होने पर दो कमल खिल गये हों। सामने ही अपने हृदयधन को देखकर संभ्रम और विस्मय के साथ सीता जी उठ खड़ी हुईं। वे निर्णय ही न कर सकी कि यह स्वप्न है या यथार्थ। कई वार उन्होने अपने नेत्रों को मीडा। अब तो उन्हे कोई संदेह ही न रहा। वे कटी लता के समान श्रीभगवान् के चरणों पर गिर पड़ी। भगवान् ने उन्हे उठाकर उनके सिर को अपने गोद में रख लिया। सीताजी की ऐसी दशा देखकर भगवान् का हृदय भर रहा था, उनके नेत्रो से अविरल अश्रु प्रवाहित हो रहे थे। श्री सीताजी ने अश्रुओं से अपने प्राणनाथ को पाद्य अर्घ्य दिये। भगवान् के वस्त्र भीग गये। वे बार-वार स्तुत करने का प्रयत्न करती किन्तु कंठ के अवरुद्ध हो जाने से वे एक शब्द भी न वोल सकी। बड़ी देर तक दोनों मौन रहे। भीतर का प्रेम पिघल कर नेत्रो द्वारा निकल रहा था। जव हृदय हलका हो गया, तब भगवान् ने कहा—"सीते! मेरे पीछे तुम्हे वडे कष्ट उठाने पड़े।"

अत्यंत ही कष्ट के साथ सीताजी ने कहा—'प्राणनाथ! आज मेरे सब कष्टो का अन्त हो गया। आपने अपनी इस दासी को भुलाया नही। इससे वढकर मेरे सुख की और कौन सी बात हो सकती है।"

इतने मे ही विभीषण की स्त्री अपनी लड़की को लिये हुए आती हुई दिखाई दी। उसे देखते ही सीता पति के अंक से उठ पड़ी। श्रीरामचन्द्र भी संकोच के साथ हट गये। विभीषण-

पत्नी ने आकर जगज्जननी के पैर छुए और कहा—"देवि ! बड़े भाग्य की बात है कि आज आप अपने प्राणनाथ से पुनः मिल सकी। मैं चाहिती हूँ कि आज आपको अपने हाथों से मंगल-स्नान कराऊँ।"

सीताजी ने कहा—"बहिन ! पति के दर्शनों से ही मेरे सब स्नान हो चुके। पहिले मैं अपने देवर के डेरे पर चल कर उनसे क्षमा याचना करूँगी। तब स्नान करूँगी। मैंने अपने देवर के प्रति बड़ा अपराध किया है। उन पर क्रोध में भर कर लाँछन लगाया था। न कहने योग्य बातें कही थीं उसके परिणाम स्वरूप मुझे ये क्लेश उठाने पड़े।" इतने में ही विभीषण आगये। विभीषण ने सीता जी के चरणों में प्रणाम किया और कहा—"देवि ! आप मेरे घर को अपनी चरण धूलि से पावन बनावें।"

इतना सुनते ही जानकीजी रो पड़ी और रोते-रोते बोली—"राक्षसराज ! मैं तुम्हारे उपकारों को जन्म-जन्मों तक न भूलूँगी। तुम्हारी ही कृपा से आज मैं अपने प्राणनाथ से मिल सकी हूँ। किन्तु विभीषण जी, मैं स्वेच्छा से अपने पति के बिना कहीं नही जा सकती। अब तक तो मैं पराधीन होकर उनसे पृथक् रही हूँ।"

उसी समय लक्ष्मण जी ने आकर सीता जी के चरणों में प्रणाम किया। लक्ष्मण जी को देख कर सीता माता रो पड़ीं। वे मूर्छित होकर भूमि पर गिर पड़ीं। दौड़कर श्रीराम ने उन्हें उठाया। लक्ष्मण जी ने भी पैर पकड़े। रोते-रोते सीता जी ने कहा—"सुमित्रानन्दवर्धन, लक्ष्मी-सम्पन्न लक्ष्मण ! मेरा अपराध तो ऐसा है, कि वह किसी प्रकार भुलाया नही जा सकता, किन्तु तुम उदार हो, अपनी उदारता से क्या तुम मुझे क्षमा कर दोगे।"

यह सुन कर लक्ष्मण जी ने रोते-रोते कहा—"माँ! आप कैसी बातें कह रही है। माता कभी पुत्र से क्षमा याचना भी करती है क्या? माता को सब कुछ कहने का, मारने का, दड देने का अधिकार है। माता की सभी चेष्टाये पुत्र के कल्याण के ही निमित्त होती हैं।"

उसी समय हनुमान् जी ने आकर माता जी की चरण वन्दना की। हनुमान् जी को देखकर माता का हृदय भर आया और स्खलिय वाणी मे बोली—"हनुमान्! तूने अपनी प्रतीज्ञा पालन की। तेरे लिये अब क्या कहूँ, मेरे पास उतने शब्द नही।"

पीछे खड़े सुग्रीव जी भी आये। सुग्रीव को देखकर वैदेही ने अपना अचल सम्हाल लिया। दूर-से ही सुग्रीव जी ने प्रणाम किया। हनुमान् जी ने कहा—"माता जी ये मेरे स्वामी वानर-राज सुग्रीव जी है।" सकोच के साथ सीता जी ने कहा—"वानर राज ने तो हमे सपरिवार खरीद लिया। हम इनके उपकारो के बोझ से सदा दबे ही रहेगे।"

उसी समय हाथ जोड कर हनुमान् जी ने भगवान् से कहा—"प्रभो! सभी वानर जगज्जननी के दर्शनो के लिये समुत्सुक हो रहे है।"

भगवान् ने विभीषण से कहा—"राक्षसराज, तुम इसका प्रबन्ध करो।"

विभीषण ने कहा—'मै अभी शिविका मँगाता हूँ।"

भगवान् ने कहा—"भैया! इस समय बन्द शिविका की आवश्यकता नही। ऐसे समय पर्दा नही किया जाता। खुले रथ पर जानकी को बिठा कर ले चलो, जिससे सभी सुखपूर्वक इन्हे देख सकें।"

भगवान् की आज्ञा पाते ही सुन्दर विशाल रथ मँगाया गया जो ऊपर से खुला था। १०८ सुन्दर सफेद घोड़े उसमे जुते हुए थे। विभीषण की पत्नी अपनी लडकी कला के द्वारा विभीषण से कहलाया कि सीता जी वस्त्राभूषणो से अलकृत होकर रथ पर वैठे।"

हाथ जोडकर विभीषण ने भगवान् से पूछा—"प्रभो ! यह बच्ची कला कह रही है कि सीता माता का प्रथम मङ्गल स्नान हो। वे वस्त्राभूषणो से अलकृत होकर आपके साथ रथ मे विराजें।"

करुणासागर भगवान् ने कहा—"अच्छी बात है, जैसी तुम्हारी इच्छा हो वैसा ही करो।"

भगवान् की आज्ञा पाकर विभीषण-पत्नी परम प्रसन्न हुई ! उन्होने तुरन्त सुन्दरी सुकुमारी स्त्रियो को बुलाया। महौषधियो और दिव्यौषधियो के पवित्र सुगधित जल से उन्हे स्नान कराया। उबटन लगा कर उनके अगो के मल को छुडाया। दिव्य वस्त्राभूषणो से उन्हे अलकृत किया। सोलहो शृ गार कराके उन्हे आदर पूर्वक रथ के समीप ले आई। श्री रामचन्द्र जी ने अपने हाथो से जानकी जी को रथ पर चढाया। विभीषण और सुग्रीव सारथियो को हटा कर स्वय रथ को हाँकने वैठे। लक्ष्मण और हनुमान् चमर लेकर खडे हुए। श्री सीताराम जी की मनोहर जोडी दिव्य रथ पर विराज मान अत्यत ही शोभित होती थी। सडक के दोनो ओर बन्दनवारें वँधी हुई थीं। दोनो ओर राक्षस और वानर खडे हुए थे। वीच मे मद-मद गति से रथ चल रहा था। अस्त्र शस्त्रो से सुसज्जित राक्षस पक्तिवद्ध दोनो ओर खडे थे। दोनो ओर की अपार भीड जय जय श्री सीताराम की गगनभेदी ध्वनि लगा रही थी। वानर

श्रीसीता जी के साथ श्री रामचन्द्र जी के दर्शन करके कृतार्थ हो गये। जो वानर मर गये थे उनके साथी सम्बन्धी सोचने लगे— 'हाय ! हमारे ये मृतक बन्धु इन दर्शनो से वंचित ही रह गये। उनके मन मे ऐसा संकल्प ज्यो ही उठा त्यो ही इन्द्र ने आकाश से अमृत की वर्षा की। अमृत पड़ते ही सभी मृतक वानर जीवित हो उठे और दौड़कर श्री सीताराम जी के दर्शनो के लिये राज पथ पर आ गये। वानर परस्पर मे कह रहे थे—"श्री सीता जी के सम्बन्ध मे हमने जैसा अनुमान किया था, ये तो उससे असख्यो गुनी उत्तम हैं। श्रीराम जी के धैर्य को धन्य है जो इतने दिन के वियोग को साहस के साथ सहन करते रहे।" इस प्रकार वानर राक्षस परस्पर मे भाँति-भाँति की बाते करते थे।

श्री सीताजी को साथ लेकर भगवान् अपने शिविर के समीप आये। एक वृक्ष के नीचे सीता जी को उतारा गया। चारो ओर वानरों की भीड़ लग गई। तब श्री रामचन्द्र जी ने अपने भाई लक्ष्मण जी से कहा—"लक्ष्मण। विभीषण ने हमारा बड़ा उपकार किया है। मैं इसे लका के सिंहासन पर बैठा हुआ देखना चाहता हूँ। तुम जाकर अभी लका मे विभीषण का राज्याभिषेक करो।'

भगवान् की आज्ञा पाकर लक्ष्मण जी प्रधान-प्रधान वानरो को साथ लेकर लका मे गये। तुरन्त सुवर्ण के घड़ो मे समुद्र का जल मंगाया गया। ब्रह्माण राक्षसो ने वेद मन्त्रो से विभीषण को स्नान कराया। विधिवत उनका राज्याभिषेक किया। विभीषण को राज्यसिंहासन पर बैठा देखकर सभी परम प्रमुदित हुए। देवताओ ने उनके ऊपर नन्दनकानन के पुष्पो की वर्षा की। गन्धर्वों ने मगल गान गाये। अप्सरायें सुन्दर-सुन्दर गीत गाती हुई नृत्य करने लगी। चारो ओर बाजे बज रहे थे।

सजाई गई थी। स्थान-स्थान पर सुगन्धित धूप जलाई गई थी। सुन्दर सुगन्धित पुष्पों की मालायें सर्वत्र लटकी हुई थी। घर-घर केले के फलयुक्त खम्भे गाड़े गये थे। कन्याओं ने दधि अक्षत, लावा अंकुर आदि मंगल द्रव्यों से राक्षसराज विभीषण का पूजन किया। सभी प्रकार दान दिये गये। सेवक तथा भृत्यों को पुरस्कार बाँटे गये। इस प्रकार बड़े विधि विधान पूर्वक राज्याभिषेक का कार्य सम्पन्न हुआ।"

सूतजी कहते हैं—मुनियो! जब राज्याभिषेक का कार्य सुख-पूर्वक सम्पन्न हो चुका, तब हाथ जोड़े हुए राक्षसराज श्रीराम चन्द्र जी के समीप आये और विनीत भाव बोले—"प्रभो! मैंने आप की आज्ञा शिरोधार्य की। अब मेरे लिये और क्या आज्ञा है।"

यह सुनकर भगवान् परम प्रसन्न हुए और आगे का कर्तव्य सोचने लगे।

छप्पय

पवन-तनय सुग्रीव विभीषण लछिमन आये।
वैदेही पद-पदुम आइ सब शीश नवाये॥
लज्जित देवी भईं अधिक आभार जनायो।
राम-रजायसु पाइ विभीषण यान मँगायो॥
रथ चढ़ि वैदेही सहित, उपवनमहँ राघव गये।
जग जननी, जग जनककूँ, लखि बानर प्रमुदित भये॥

विजयी राम का अवध गमन

आरोप्यारुरुहे यानं भ्रातृभ्यां हनुमद्युतः ।
विभीषणाय भगवान् दत्त्वा रक्षोगणेशताम् ॥
लङ्कामायुश्च कल्पान्तं ययौ चीर्णव्रतः पुरीम् ।
अवकीर्यमाणः कुसुमैर्लोकपालार्पितैः पथि ॥*
(श्रीभा०, ९ स्क० १० अ० ३२, ३३ श्लो०)

छप्पय

लंका महँ अभिषेक विभीषण को करवायो ।
जानि अवधि को अन्त यान पुष्पक मँगवाओ ॥
पवन-तनय सुग्रीव लखन अंगद बैठाये ।
बैठे सियासहित स्वयं रघुपति हरषाये ॥
प्रान प्रिया कूँ सबहि थल, लीला के दिखरावते ।
यानमाँहि नभमँह चले, प्रेम सहित बतरावते ॥

काल अनादि है अनन्त है। आप काल को कितनी भी बडी

---

* श्री शुकदेवजी कहते हैं—"राजन् भगवान् श्री कौशलकिशोर रावण को मारकर, विभीषण जी को राक्षस राज्य एक कल्प की आयु तथा लङ्कापुरी देकर लक्ष्मण तथा विभीषण के सहित सीता को पुष्पक विमान पर चढाकर, वनवास की १४ वर्ष की अवधि को समाप्त करके अयोध्यापुरी को चले। मार्ग में लोकपाल उनके ऊपर पुष्पों की वर्षा करते जाते थे।"

सीमा क्यों न बाँध लें एक न एक दिन वह अवधि अवश्य हो जायगी। इसीलिये एक बार काल ने कहा था—तुम मेरी सीमा करो, मै आ ही रहा हूँ। नियत अवधि का एक-एक दिन बडे ही महत्व का होता है, नित्य ही यह स्मृति बनी रहती है, आज इतने दिन बीत गये, इतने दिन और शेष हैं। जब अवधि पूरी हो जाती है, तब शिर से एक प्रकार का भार सा उतर जाता है। मनुष्य अपने को स्वतन्त्र अनुभव करने लगता है।

चौदह वर्ष की अवधि बाँध कर कौशिल्यानन्दवर्धन रघुनन्दन वन को गये थे वे चौदह वर्ष बात की बात में बीत गये। वे ५१०६ दिन यों ही बीत गये। अवधि मे एक दिन शेष रह गया। वह एक दिन काटना उन्हे अत्यन्त ही भारी हो गया। जिस इतने बडे दण्डक बन को नगे पैरो हो कई बार पार किया आज वे अवध जाने को अत्यत ही उत्कठित हो उठे, क्योकि अब कोई बन्धन तो रहा ही नही, अवधि तो बीत गई।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! रावण मारा गया विभीषण जी लंका के अधीश्वर हुये। सीता जी का अपने प्राणनाथ के साथ सम्मिलन हुआ। चौदह वर्ष की अवधि मे अब केवल एक दिन ही शेष रह गया। विभीषण जी ने कहा—"प्रभो! यह राज्य आपका है, मै भी सपरिवार आपका किंकर हूँ। अब कुछ दिन यहाँ निवास करके मुझे कृतार्थ करें।"

यह सुनकर राजीवलोचन रघुनन्दन बोले—"भैया! विभीषण, तुम्हारा कहना यथार्थ है, मुझे अवध जाने की इतनी उत्सुकता नही और न मुझे राज्याभिषेक की ही उत्कण्ठा है। मुझे तो अपने छोटे भाई भरत की चिन्ता है। उसने चित्रकूट मे सब के सम्मुख यह प्रतिज्ञा की थी, कि यदि राम चौदहवें वर्ष के अन्त होते ही अवध मे न आ जायँगे, तो मै प्राणो का परित्याग

कर दूँगा।" आज मेरे १४ वर्ष पूरे होते हैं, यदि कल मैं अयोध्या न पहुँच सका, तो अपने प्राणो से प्यारे भाई को न पा सकूँगा। उसके बिना मैं जीवित नही रह सकता। अतः यदि तुम भरत का, मेरा, तथा मेरे समस्त परिवार वालो का जीवन बचाना चाहते हो, तो ऐसा कोई प्रबन्ध करो, जिससे मैं कल प्रात काल अयोध्यापुरी पहुँच सकूँ।"

यह सुन कर अत्यन्त प्रसन्नता प्रकट करते हुये विभीषण जी बोले—"प्रभो! आप किसी प्रकार की भी चिन्ता न करें। आप तो कल की कह रहे हैं, मैं तो आप को आज ही, अभी ही, अवध पहुँचा सकता हूँ। आपको कोई क्या पहुँचा सकता है। जहाँ आप न हो वहाँ पहुँचाये भी जा सकते है। आप तो सर्वत्र व्याप्त हैं। फिर भी आप अपने सेवको को बडाई देने के लिये ऐसी मानवीय लीला कर रहे है। लंका मे एक पुष्पक नामक दिव्य विमान है। मेरे बडे भाई लोक-पाल धनद कुबेर को वह ब्रह्मा जी से प्राप्त हुआ था। वह संकल्प के अनुसार उडने वाला है। मन से भी अधिक उसका वेग है। रावण उसे कुबेर से छीन लाया था। उस पुष्पक विमान से आप अयोध्या पधारे। वह यान परम सुखद है। उसमे शीत, ऊष्ण, आधि, व्याधि किसी की भी शका नही है। वह सर्वकाल से सदा सुखद ही रहता है।"

यह सुनकर बड़े उल्लास के साथ श्री रामचन्द्र जी ने कहा—"भैया! तुमने यह बडी सुन्दर बात बताई। अब देर करने का काम नही। शीघ्र से शीघ्र तुम पुष्पक विमान को लाओ। मैं अपने मुख्य-मुख्य बन्धुओं को साथ लेकर सीता सहित अयोध्यापुरी जाऊँगा।"

इतना सुनते ही विभीषण जी ने तुरन्त ही पुष्पक विमान को मँगाया।

पुष्पक को सम्मुख उपस्थित करके विभीषण जी हाथ जोड़ कर श्रीरामचन्द्र जी से बोले —"प्रभो ! लोकपाल कुवेर जी का दिव्य पुष्पक विमान उपस्थित है। अब मेरा जो कुछ कर्तव्य हो उसका आदेश करें।"

यह सुनकर भगवान् बोले—'देखो, भैया विभीषण ! तुमने जो लका पर विजय प्राप्त की है उसमे वानरो ने भी तुम्हारी सहायता की है। अत, मैं चाहता हूँ, तुम्हारी ओर से वानरो को धन-रत्न द्वारा सत्कार किया जाय। यद्यपि मेरे आश्रित भक्त धन-रत्न की इच्छा नही करते, फिर भी उनके सम्मान के लिए पुरुष उनकी पूजा करते है। इसलिये तुम भी इन सब सहयोगियो की पूजा करो।"

अत्यन्त प्रसन्नता प्रकट करते हुए विभीषण जी ने कहा—"प्रभो ! आप तो अन्तर्यामी हैं। सब के घट-घट की बात जानते हैं सबकी इच्छाओं को पूर्ण करते हैं मेरे मन मे यह बात बार-बार उठ रही थी, किन्तु सकोचवश प्रकट नही कर सका। मैंने सोचा—"इन धातुओ और पाषाणो के ठीकरो से मैं सब की पूजा करूँ तो कही अपमान न समझा जाय। अब जब आपने मेरी इच्छा पूर्ण करने के लिये मुझे आज्ञा ही दी है, तो इसे मैं अपना परम सौभाग्य समझता हूँ। जिन्होंने आपके चरणो का आश्रय ले लिया है उन्हे इच्छा तो हो ही क्या सकती है। दूसरों पर कृपा करने के निमित्त ही उनकी पूजा को स्वीकार करते हैं।' इतना कहकर विभीषणजी ने बहुत से रत्न, वस्त्र आभूषण तथा सुवर्ण मुद्रायें मँगाई। उन सबको पुष्पक विमान मे भर कर ऊपर से ऋक्ष वानरो के ऊपर वर्षाया। जिसे जो वस्तु प्रिय थी उसने ले ली बहुत देर तक वे रत्न आभूषण वर्षाते रहे। इस प्रकार सब का धन रत्न से सत्कार करके विभीषणजी नीचे

उतर आये और भगवान् से बोले—"प्रभो! मेरी मनोकामना आपने पूर्ण की। अब मुझे क्या आज्ञा होती है?"

भगवान् ने कहा— भैया, अब सब कुछ हो चुका। तुम सब ने प्राणो का पण लगाकर मेरी सहायता की है। यदि तुम सब मेरी सहायता न करते तो लका जीतने मे सदेह हो रहता अब मैं अयोध्या जाना चाहता हूँ। तुम लका मे कल्पपर्यन्त सुखपूर्वक रहकर राज्य सुख भोगो। सुग्रीव किष्किन्धा जायँ और भी रिक्ष-वानर जहाँ-जहाँ से आये है वहाँ सुखपूर्वक लौट जायँ। तुम सब मुझे प्राणो से भी अधिक प्रिय हो। मैं नही चाहता कि तुम सबसे पृथक होऊँ, किन्तु कर्तव्य मुझे ऐसा करने के लिए विवश कर रहा है।'

श्रीरामचन्द्रजी के ऐसे वचन सुनकर सब रुदन करने लगे। उस समय सभी दुखित थे। भगवान् के भावी वियोग को स्मरण करके सबके हृदय भरे हुए थे। नेत्रो से अश्रुबिन्दु गिर रहे थे। तब रोते रोते सुग्रीव ने कहा—"प्रभो! हम नही चाहते कि आप से पल भर भी पृथक रहे। राज्य सुख में क्या रखा है आपके चरणो की सन्निधि के सम्मुख सभी सुख तुच्छातितुच्छ है। यदि हमे जाने की ही आज्ञा है, तो उसे टाल तो कसे सकते है किन्तु हमारी भी अवधदर्शनो की बडी लालसा है। उस परम पावन पुण्यपुरी के दर्शन करके हम भी कृतार्थ होना चाहते है। आपके वनवासी रूप के दर्शन तो हमने किये, अब हम आप को राजरूप मे और देखना चाहते हैं। हम सौभाग्यवती जगज्जनी कौशल्या देवी के चरणो मे प्रणाम करके उनका आशीर्वाद लेना चाहते हैं। आपका राज्यभिषेक देखकर माता को प्रणाम करके तथा अयोध्यापुरी के वन उपवनो मे विहार करके आपकी आज्ञा होगी तो पुन. लौट आवेंगे।'

सुग्रीव जी के ऐसे वचन सुनकर लोकाभिराम श्रीरा बोले—"संसार में मित्रों का मिलन, उनका सहवास बडे भाग से मिलता है। तुम लोगो के साथ अवधपुरी चलने में मुझे परम सुख होगा। अच्छी बात है, तुम लोग इस विमान में च जाओ।'

भगवान् की आज्ञा पाते ही अंगद, हनुमान, नल नील, गव गवाक्ष जामवंत तथा अन्यान्य अपने मुख्य-मुख्य साथी वानरों के सहित सुग्रीव जी विमान पर चढ गये। विभीषण जी भी अपने आज्ञाकारी सचिवो सहित दिव्ययान पर विराजमान हुए। श्री सीताजी और लक्ष्मणजी के सहित रघुकुलतिलक जानकी-जीवन – धन श्रीरामचन्द्र जी मध्य मे विराजे। सबके बैठ जाने पर वह पुष्पो से विभूषित चित्र-विचित्र ध्वजा-पताकाओं से युक्त विमान आकाश में उडा। उस समय उसकी शोभा अपूर्व थी। ऊपर से नीचे की वस्तुएँ बडी ही सुन्दर छोटी-छोटी दिखाई देती थीं। सीताजी अत्यन्त कुतूहल के साथ जिस वस्तु को भी देखती उसी के सम्बन्ध मे श्रीरामचन्द्र जी से पूछतीं। भगवान् भी सीता जी को प्रसन्न करने के निमित्ति सभी स्थानों का परिचय कराते जाते। यह त्रिकूट पर्वत है, यह युद्ध क्षेत्र है। यहाँ मैंने रावण को मारा, यहाँ कुम्भकर्ण संहारा, यहाँ देवनाक, नरांतक, अतिकाय, त्रिशिरा, अकम्पन, प्रहस्त विरूपाक्ष, महोदर आदि रावण के बडे बडे बलवान वीरों को मैंने रण मे पछाडा। यहाँ लक्ष्मण ने इन्द्रजित् का अंत किया, यहाँ हनुमान् ने धूम्राक्ष को यम-सदन पठाया। देखो, यह समुद्र है। इसी पर पुल बाँधकर हम समस्त सेनासहित इस पार आये थे। नल-नील की सहायता से सभी वानरों ने १०० योजन लम्बे इस सुदृढ सेतु को चार दिन मे बाँधा था देखो, यहाँ हमने अपना पडाव डाला था। यही सर्वप्रथम

हमे राक्षसराज विभीषण के दर्शन हुए। सम्मुख जो तुम्हें हरी भरी मनहोर पुरी दिखाई देती है यही वानरराज सुग्रीव की राजधानी है। तुम्हारे विरह में दुखी होकर यही बड़े कष्ट से मैंने ऋष्यमूक पर्वत पर वर्षा के चार माह व्यतीत किये थे। यही पर मैंने अपने मित्र सुग्रीव के प्रिय करने के निमित्त उसके दुष्ट भाई बालि का वध किया था। उसकी पतिव्रता पत्नी तारा को यही मैंने सान्त्वना दी थी।

यह सुनकर सीताजी अत्यन्त ही उत्सुकता के साथ बोली— 'प्राणनाथ ! मैं वानरराज सुग्रीव की पत्नियो से मिलना चाहती हूँ आप कृपा करके विमान को यहाँ उतरवा दें।"

सीताजी की उत्सुकता देखकर भगवान् ने कहा—"अच्छी बात है, ऐसा ही हो।" यह कह कर भगवान् ने पुष्पक को नीचे उतरने की आज्ञा दी। पुष्पक के उतरते ही सुग्रीव ने कहा— 'जगज्जननी सीता माता मेरे अन्त पुर मे पधार।'

भगवान् ने कहा— देखो भैया ! अब शिष्टाचार का समय नही है। हमें पल-पल भारी हो रहा है, तुम अपनी तथा सभी मुख्य-मुख्य वानरो की पत्नियों को यही ले आओ। वे सब भी सीता के साथ अवधपुरी चलें। भीतर जाने से देर हो जायगी। स्त्रियाँ जब आपस मे मिलकर घर गृहस्थी की बातें करने लगती है, तो वे समय को भूल जाती हैं। कितना भी बुलाओ कितनी भी शीघ्रता करो उनकी पचायत समाप्त नही होती सो भैया ! तुम यही सबको बुला लाओ। उन सबके बैठने का प्रबन्ध हम सीता के समीप ही कर देंगे।"

भगवान् की आज्ञा पाकर सुग्रीव शीघ्रता के साथ अन्त पुर मे गये। वहाँ जाकर तारा से बोले—"तारे ! देखो हम रावण को मार कर लका विजय करके जानकी जी को लेकर आ

अब हम सब अयोध्यापुरी को जा रहे हैं। तुम्हे भी हमारे साथ चलना होगा। सीताजी की प्रसन्नता के निमित्त तुम भी अवश्य चलो। मुख्य मुख्य वानरो की जिन-जिन स्त्रियों को तुम साथ लेना चाहती हो। उन्हे भी ले लो। शीघ्रता करो। विलम्ब का काम नही। श्रीरामचन्द्रजी अत्यन्त शीघ्रता कर रहे हैं।"

अपने पति की ऐसी बात सुनकर तारा के हर्ष का ठिकाना नही रहा स्त्रियो को वैसे ही मेले ठेले मे जाने की बडी उत्सुकता रहती है, फिर तिस पर भी आज विमान मे चढकर जाना है। सर्वश्रेष्ठ अयोध्यापुरीको देखना है। इससे उनको उत्सुकता अत्यधिक बढ गई। सभी ने शीघ्रता के सहित शृगार किया। सुन्दर-सुन्दर वस्त्राभूषण को धारण किया। पूँछ को सजाया और पैरो से पाइजेबो को खनखनाती हुई तथा नूपुरो को बजाती हुई पुष्पक विमान के समीप आई। वे सोच रही थी हम चलकर सीताजी के दर्शन करेंगी। न जाने वे कितनी सुन्दरी होगी जिनके पीछे इतना घनघोर युद्ध हुआ। असख्यो प्राणियो का सहार हुआ। उनके साथ हम भी विमान मे चढकर अवधपुरी जायँगी। वहाँ महाराज दशरथ की पत्नियो के दर्शन करेंगी। लोकपालो से भी बढकर उनके ऐश्वर्य को देखेंगी। श्रीरामचन्द्रजी के राज्याभिषेक के दर्शन करेंगी। आज हमारा जीवन सफल हो गया। इस प्रकार के मनोरथो को करती हुई वे पुष्पक विमान की प्रदक्षिणा करने लगी। सीता सहित भगवान् का आगमन सुनते ही बहुत सी वानरियाँ सीताजी के दर्शनो के लिये आई। सब बडी उत्सुकता और कुतूहल के सहित जानकी को निहार रही थी। उनके अनवद्य सौंदर्य को देखकर अत्यन्त आह्लादित हो रही थीं। चकित-चकित दृष्टि से उन्हे पुन पुन देख रही थीं।

उनम से एक बोली—"सीताजी की जैसी प्रशसा सुनते थे

हैं तो उससे भी बढकर, किन्तु इनके सौन्दर्य मे एक बडा भारी दोप है।"

दूसरी ने पूछा—"वह क्या दोप है ?"

शीघ्रता के साथ उसने कहा—"यही कि और अग तो सब अच्छे ही हे, किन्तु इनके पूँछ नही। पूँछ के बिना भला क्या सौन्दर्य।"

यह सुनकर श्रीरामचन्द्र जी हँसने लगे और बार-बार हनुमान् तथा लक्ष्मण जी की ओर निहारने लगे।

तारा अपनी सभी सहेलियो के साथ पुष्पक की प्रदक्षिणा करके उस पर चढी। जानकी जी ने सत्कार पूवक उन्हे अपने समीप बिठाया। उनको कुशल पूछी और इधर-उधर की भी दो चार बातें हुई। इतनी ही देर मे विमान ऊपर उडने लगा।

उसी समय हनुमान् जी ने कहा—"प्रभो! मुझे आज्ञा हो तो समीप के ही पर्वत पर मेरी माता जी रहती हैं, उनके दर्शन कर आऊँ।"

उनकी यह बात सुनकर भगवान् ने कहा—"अरे भाई! अकेले ही अकेले क्यो, माता जी के दर्शनो को तो हम भी चलेंगे। चलो, पुष्पक विमान वहाँ भी उतरे।"

यह सुनकर हनुमान् जी के हर्ष का ठिकाना नही रहा। वे भगवान् की भक्तवत्सलता को स्मरण करके गद्गद हो उठे। विमान से उतर कर सीतालक्ष्मण सहित श्रीरामजी माता अंजनी के दर्शनो को स्वयं गये। माता के चरणों में प्रणाम करके वे बैठ गये। हनुमान् जी ने कहा—"माँ! भगवान् पधारे।"

भगवान् का आगमन सुनकर माता अधीर हो उठी। वे बार-बार भगवान् को प्रणाम करने लगी।

हनुमान् जी को गोद में लेकर वे प्यार करने लगी। बार-

बार कहती— 'बेटा, तैंने मेरी कोख को कृतार्थ कर दिया। मेरा जीवन सफल बना दिया, जो घर बैठे ही भगवान् का दर्शन करा दिया। भगवान् के साथ ये इतने कारे मुखवारे भालू बन्दर कहाँ गये थे ?'

हनुमान् जी ने कहा—"माता जी! राक्षसराज रावण जगज्जननी जानकी को पचवटी से हर ले गया था। भगवान् उन्हे खोजते-खोजते किष्किन्धा आये। वहाँ पर मेरे स्वामी सुग्रीव से भगवान् ने मैत्री की, वालि का मारा। वानरो की असख्य सेना एकत्रित की, समुद्र पर सेतु बांधा और रावण को उसके परिवार सहित मारा विभीषण को राज्य देकर सीता जी को लेकर पुष्पक विमान से भगवान् अयोध्यापुरी जा रहे हैं। मार्ग मे आपको कृतार्थ करने उतर पड़े है।"

भगवान् को सीता जी की खोजने और रावण को मारने के लिये इतना श्रम करना पडा। इसे सुनते ही माता की आँखें लाल हो गई। उन्होने हनुमान् जी को गोद से उठाकर दूर फेंक दिया और अत्यन्त क्रोध के साथ बोली—"तुझे बार-बार धिक्कार है तैंने मेरी दूध को लजा दिया। तू मेरा बेटा कहलाने योग्य नही अरे इस तनिक सी बात के लिये भगवान् को इतना कष्ट करना पडा। तू स्वयं जाकर लंका को उठा लाता। या रावण को जीवित पकड कर भगवान् के सम्मुख उपस्थित कर देता। या लका को समुद्र मे डुबा देता। समुद्र को ही सोख जाता। तैंने तो मेरा दूध पिया है। फिर ऐसी कायरता की।"

माता जी की ऐसी डाँट सुनकर हनुमान् जी कुछ भी नही बोले। लक्ष्मण जी को सन्देह हुआ कि माता बार-बार अपने दूध को प्रशंसा कर रही है। इनके दूध मे ऐसी क्या शक्ति है यह सत्य है कि हनुमन जी प्रवल पराक्रमी महान् शूर वीर हैं,

फिर भी माँ अपने दुग्ध के सम्बन्ध से जैसे प्रशंसा कर रही हैं, वह तो अत्युक्ति मात्र ही है।"

माता लक्ष्मण जी के भाव को ताड़ गईं। उनके मुख-मंडल पर गम्भीरता छा गयी। वे भगवान् को लक्ष्य करके बोलीं—"भगवन्! प्रतीत होता है छोटे कुमार को मेरी बातों पर विश्वास नहीं हो रहा है। अच्छी बात है, मैं अपने दुग्ध का प्रभाव दिखाती हूँ।" यह कह कर माँ ने अपने दुग्ध की एक धार सामने के पर्वत पर छोड़ी। धार के पड़ते ही पर्वत फट गया। यह देख कर लक्ष्मण जी की शङ्का दूर हो गयी। उन्हें परम आश्चर्य हुआ। यह देखकर हँसते हुये भगवान् ने कहा—"माता जी! आपके पुत्र सब कुछ करने में समर्थ है। वे अकेले लंका को उठा लाने मे समर्थ है। इस बात को मैं जानता था। फिर भी मैंने उन्हें ऐसा करने की आज्ञा नहीं दी। यदि वे ही रावण को मारकर सीता को ले आते तो मेरे लोकपावन चरित्रों का विस्तार न होता। इसलिये अपने चरित्रों के विस्तार के निमित्त जान बूझकर यह लीला मैंने स्वयं ही की। आप हनुमान् जी पर प्रसन्न हों, इन पर पूर्ववत् वात्सल्यभाव प्रकट करें।"

भगवान् की ऐसी मधुर वाणी सुनकर माता अजना देवी ने हनुमान् जी को गोद में बिठाकर प्यार किया। उन्हें अजर अमर तथा अनन्य भगवद्भक्त होने का आशीर्वाद दिया। तदन्तर भगवती अंजना देवी ने भगवान् की पूजा की। भगवान् भी माता से आज्ञा लेकर सबको साथ लेकर विमान पर आ बैठे।

भगवान् की आज्ञा पाकर पुष्पक पुनः आकाश में उड़ा। भगवान् सीता जी को पुनः स्थानों को दिखाने लगे—"देखो सीते! यह पम्पा सरोवर है इसके समीप ही मुझे तपस्विनी शबरी

मिली थी। उसी ने मुझे सुग्रीव से मैत्री करने को सम्मति दी थी। यहाँ मैंने मारीच का वध किया था। यह पंचवटी है जहाँ से तुम्हें दुष्ट रावण हर ले गया था। देखो, यह वही विशाल वृक्ष है जहाँ हमारे पिता के समान गृद्धराज जटायु रहते थे जिन्होंने तुम्हारी रक्षा के लिये प्राणों का परित्याग किया था। यह कबन्ध के मरने का स्थान है। यह भगवान् अत्रि का स्थान है। यहीं पर उनकी तपस्विनी धर्मपत्नी अनसूया ने तुम्हें पतिव्रत धर्म का उपदेश दिया था। यह देखो परम पावन तीर्थ चित्रकूट है। यहीं हम पहिले पहिल पर्णकुटी बना कर रहे थे। यहीं भरत मुझे लौटाने के लिये आया था। यह सुन्दर-जल वाली पयस्विनी नदी है जो गङ्गा जी की एक धारा ही है जिसे अत्रि पत्नी भगवती अनसूया ने अपने तप प्रभाव से प्रकट किया था। यह वही घाट है जहाँ से नित्य लक्ष्मण जल लाया करता था। यहीं पर मैंने अपने स्वर्गीय पिता जी को इंगुदी फल के पिंड दिये थे। सीते! सम्मुख देखो हम तीर्थराज प्रयाग में आ गये। सम्मुख पिघले हुए नीले रंग के काँच के समान भानुतनदनी यमुना जी गम्भीरता के साथ बह रही है। उनसे शीघ्रता के साथ चंचल बालिका के समान दौड़ कर गङ्गा जी मिल रही हैं, लिपट रही है। गङ्गा जी का जल शीतल है, क्योंकि ये हिमालय की पुत्री हैं। सूर्य की पुत्री होने के कारण यमुना का जल उष्ण है। माता पिता का गुण सन्तानों में आ ही जाता है। जम्बू फल के नीले-नीले रस के कारण यमुना जी का जल नीला है। गङ्गाजी बहुत दिनों तक जटाशंकर भगवान् भूतनाथ की जटाओं में घूमती रहीं। धूंए से मटमैली हुई जटाओं के संसर्ग से गङ्गा जी के जल का रंग भी मटमैला हो गया है। सरस्वती देवी यहाँ गुप्त रूप से निवास करती हैं। यह दिव्य अक्षयवट है।

इसे साधारण दृष्टि वाले पुरुष देख नहीं सकते। सामने भरद्वाज मुनि का आश्रम है। ये तीर्थराज प्रयाग के चैतन्य देव है, यहाँ के अधिष्ठाता कुलपति हैं। बहुत से ऋषि मुनि इनकी सन्निधि मे निवास करते हे। पहले भगवान् भरद्वाज के हम दर्शन करले। आज की रात्रि यही निवास करके प्रात. अवधपुरी चलेंगे।"

सूतजी कहते है—"मुनियो! इतना कह कर भगवान् ने पुष्पक विमान का भरद्वाज-आश्रम मे उतरने का आदेश दिया। भगवान् के सकल्प होते ही, पुष्पक भरद्वाज आश्रम मे उतर गया।"

छप्पय

जनक सुतातैं कहैं प्रिये! देखो लीला थल।
यह त्रिकूट गिरि समर भूमि यह सागर को जल॥
है यह सुन्दर सेतु नील नल ने बनवायो।
यह रामेश्वर धाम विभीषण याँहि थल आयो॥
किष्किन्धा पम्पापुरी, पंचवटी गोदावरी।
चित्रकूट सीते! लखो, यह तिरबैनी सुख करी॥

विरही भरत को परम सुखद सम्वाद

भरतः प्राप्तमाकर्ण्य पौरामात्यपुरोहितैः ।
पादुके शिरसि न्यस्य रामं प्रत्युद्यतोऽग्रजम् ॥*

(श्री भा० ९ स्क० १० अ० ३५, ३६ श्लो०)

छप्पय

भरद्वाज मुनि लखे राम सौमित्र सीय सग ।
निरखि सबनि कूँ कुशल भये मुनि के पुलकित अग ॥
करि बहु विधि अतिथ्य सबनि की कुशल बताई ।
भरत तपस्या सुनी दया हरि उरमहँ आई ॥
पवनतनय पठये तुरत, भरत जहा विरही बसहि ।
स्वाँस स्वाँस रघुपति जपहिँ, तप करिके तनकूँ कसहिँ ॥

जिस वस्तु की अपने को उत्कट अभिलाषा हो वह वस्तु प्राप्त हो जाय, तो यही सुख है। मनुष्य अनेक वस्तुओ की अभिलाषा करता है, उनमे से अधिकाश असफल होती है। बहुत सी वस्तुओ की इच्छा होती है। कुछ दिनो मे वह इच्छा निवृत्त हो जाती है। फिर हम सोचते हैं अच्छा हुआ वह वस्तु हमे नही

* श्री शुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! जब भरत जी ने सुना कि श्री रामचन्द्र जी वन से लौटकर आ रहे हैं, तो वे नगर निवासी, आमात्य तथा पुरोहित के सहित भगवान् की पादुका को शिर पर रख कर उनकी अगवानी करने चले।"

मिली, नही तो उससे बडा अनर्थ हो जाता इस प्रकार वहुत सी वस्तुओ की इच्छा होती है, कालान्तर मे वह निवृत्त हो जाती है, किन्तु जो इच्छा निवृत्त न हो कर दिनो दिन वढती ही जाती हो जिसकी प्राप्ति की अधिकाधिक अभिलाषा उत्कट ही होती जाती हो, वही इष्ट है। उसी की प्राप्ति के लिये किये हुये प्रयत्न को साधन कहते है। साधक को साध्य वस्तु की प्राप्ति की आशा ही परम सुखकर है, फिर उसकी प्राप्ति के सम्बन्ध मे तो कहना ही क्या ?

सूतजी कहते हैं—" मुनियो ! तीथराज प्रयाग मे पहुँचकर श्री रामचन्द्र जी ने सितासित के सुन्दर सगम मे शास्त्रीय रीति से स्नान पूजन किया और वे भरद्वाज मुनि के आश्रम पर पहुँचे। आगे आगे रघुकुल तिलक श्री राघव चल रहे थे, उनके पीछे उनके चरणचिन्हो के सहारे-सहारे श्री विदेहनन्दिनी जानकी चल रही थी। दोनो के चरणो को वचाते हुये लक्ष्मण जी चल रहे थे। उनके पीछे विभीषण, सुग्रीव, अगद तथा अन्यान्य निशाचर और वानर चल रहे थे। आश्रम के द्वार पर पहुँच कर श्रीरामचन्द्र जी ने मुनि के एक शिष्य से कहा—"महात्मन् ! भगवान् से कहो मैं दाशरथि राम अपने भाई पत्नी और सुहृदो के साथ द्वार पर दर्शन के लिये खडा हूँ।"

भगवान् की वात सुनकर मुनि का विनयी शिष्य दौडा हुआ भगवान् भरद्वाज के समीप गया और जो भगवान् ने कहा था उसे ज्यो का त्यो निवेदन कर दिया। भगवान् का आगमन सुनकर मुनि सभ्रम के साथ सहसा अपने आसन से उठ पडे और शीघ्रता पूर्वक कहने लगे—'अरे, राम के पधारने पर पूछने की क्या आवश्यकता थी, उन्हे तू साथ क्यो नही लाया।" यह कह

भगवान् भरद्वाज स्वय ही नगे पैरो द्वार की ओर चले। बहुत स शिष्य भी मुनि के पीछे-पीछे दौडे।

मुनि को अपनी ओर आते देखकर भगवान् विभीपण जो से बोल—"विभीपण ! देखो, शिष्य म डली से घिरे हुए जो सूर्य के समान तेजस्वी मुनि आगे-आगे आ रहे हैं ये ही भगवान् भरद्वाज हैं, मुनि का हमारे ऊपर कितना वात्सल्य स्नेह है, स्वय ही हमे लेने आ रहे हैं। तुम सब लोग श्रद्धा सहित मुनि के चरणो मे प्रणाम करना।'

श्रीरामचन्द्रजी ऐसा कह ही रहे थे, कि मुनि और भी अधिक समीप आ गये। आगे बढ कर श्री रामचन्द्र जी ने मुनि की पैर छुये। सीता जी भी मुनि को प्रणाम करके श्रीराम के पीछे एक ओर खडी हो गई। तदनन्तर लक्ष्मण, विभीपण, सुग्रीव, हनुमान्, अगद तथा अन्यान्य वानर निशाचरो ने मुनि की चरण वन्दना की। अत्यन्त ही स्नेह से श्री राम चन्द्र जी के कन्धे पर हाथ रखे हुए मुनि ने कहा—"राम ! यह बडे सौभाग्य की बात है, कि तुम अपने भाई और पत्नी के सहित सकुशल वन से लौट आये हो। पहिले ही पहल जब तुम अयोध्या जी से चल कर मेरे आश्रम पर आये थे, तब मैं सीता की सुकुमारता और तुम्हारी कोमलता को देखकर भयभीत हो रहा था, कि तुम वन में कैसे चौदह वर्ष रहोगे, किन्तु आज-तुम्हे अवधि समाप्त करके लौटते देखकर मैं अत्यत हो हर्पित हूँ। वन मे तुम पर जो-जो विपत्तियाँ आईं जिस प्रकार सोताजी का हरण हुआ,जिस प्रकार तुमने वन्धुबान्धवो सहित रावणको मारा, ये सब बातें मैंने योग समाधि द्वारा पहिले ही जान ली हैं। राघव तुम्हारी कीर्ति समार मे बनी रहेगी। असख्यो जीव तुम्हारे वनवास

के चरित्र को सुनकर इस भवाटवी से सदा के लिये पार हो जायँगे। इस समय तुम कहाँ से आ रहे हो ?'

मुनि के इतने स्नेह को देखकर सकोचो राम और भी अधिक सकुचित हो गये। वे नीचे सिर किये हुए हाथ जोड़ कर विनय के साथ बोले—"भगवन् ! मैं पुष्पक विमान द्वारा आज ही अभी लका से चला आ रहा हूँ। ये सब मेरे साथी, सुहृद तथा अतरङ्ग मित्र हैं। इनकी सहायता से ही मैं लका को जीत सका। ये वानरराज सुग्रीव हैं ये ही वानरी सेना लेकर लका पर चढ गये थे। ये राक्षसराज विभीषण है। सग्राम मे इनकी सहायता न मिलती तो शत्रु पर विजय प्राप्त करना अत्यत ही कठिन था। ये पवन-तनय हनुमान् है। इनके सम्बन्ध मे अब मैं क्या कहूँ ये नल, नील, गवय, गवाक्ष आदि वानरी सेना के प्रधान-प्रधान यूथपति हैं आप इन सब पर कृपा करें, अनुग्रह की दृष्टि से इनकी ओर देखें।"

श्री राम के ऐसा कहने पर सभी ने पुन मुनि के पाद-पद्मो मे प्रणाम किया। मुनि ने सभी के प्रति वात्सल्य स्नेह प्रकट किया, सभी की कुशल पूछी। सब के सहित श्रीरामजी को यज्ञवेदी के समीप लाये। वहाँ आकर मुनिवर ने श्रीरामचन्द्रजी को विधिपूर्वक अर्घ्य दिया। श्रीरामचन्द्रजी ने अयोध्यावासियों की कुशल पूछी। भरत के समाचार जानना चाहे।

श्रीरामचन्द्रजी के पूछने पर गद्‌गद कठ से मुनि बोले—"राम ! भरत की बात मत पूछो। वे तो तुम्हारे स्नेह के साकार स्वरूप हैं, वे मूर्तिमान् तप है। साक्षात् धैर्य है। तितिक्षा की मूर्ति हैं, जैसा तप घर मे रहते हुए भरत ने किया है वैसा कोई कर ही नही सकता। वे राजधानी मे नही रहते। अयोध्या से दो कोश दूर नन्दिग्राम मे वे निवास करते है। आप भूमि पर

सोते है, इसलिए वे भूमि खोदकर गुफा मे रहते है। आपकी भाँति उन्होने भी वल्कल वस्त्र धारण कर रखे है। उनके मचिव अमात्य भी गैरिक वस्त्र पहिन कर उनके समीप रहते है। वे आपकी चरण-पादुकाओको सिंहासन पर रखते हैं उनसे निवेदन करके सब कार्य करते हैं। राज्य मे उन्ही को छाप चलती है। छत्रचँवर वे पादुकाओ पर ही धारण कराते हैं। उन्होंने एक गौ रखी है। उसे व जौ खिलाते है। उसके गोबर म से जो जौ साबित निकलते है, उन्हें वे स्वय बीनते हैं। उन बीने हुए जौ के दानो को सुखाकर उनको दलिया बनाते है, उसे गोमूत्र मे पकाकर तीसरे पहर खाते हैं। वे शुक्ल पक्ष म एक-एक ग्रास बढाते है, कृष्ण पक्ष मे एक-एक ग्रास घटाते है। इस प्रकार वे चान्द्रायण व्रत करते रहते हैं निरन्तर आपके ही नामो को रटते रहते है।'

भरत तो भरतखण्ड के भूषण हैं। भरत की कीर्ति के सम्मुख सूर्य-चन्द्र फीके-फीके से प्रतीत होते है।'

मुनि के मुख से अपने भाई भरत की प्रशसा सुनकर भगवान् का हृदय भर आया। वे भाई की तपश्चर्या की बात सुनकर करुणा से अत्यन्त ही द्रवित हुए। उनके कमल-नयन से नेह का नीर बहने लगा। श्रीराम की ऐसी दशा देखकर प्रसग बदलने के लिये मुनि कहने लगे—"राघव! अब मेरी इच्छा है, कि तुम कुछ दिन मेरे आश्रम पर रहो।"

यह सुनकर आँसू पोछते हुए श्री राघव बोले—'प्रभो! यह तो मेरा सौभाग्य है, जो भगवान् मेरे प्रति इतना वात्सल्य प्रकट कर रहे हैं। भगवान् की सेवा का सौभाग्य बडे पुण्यों से प्राप्त हो सकता है। यदि मैं कुछ दिन भगवान् की सन्निधि मे रह सकता तो अपने को बडभागी समझता, किन्तु मैं विवश हूँ।

वनवास की अवधि आज ही समाप्त होती है यदि मैं कल अयोध्या में न पहुँचूंगा, तो मेरा भाई भरत अवश्य ही अपने शरीर को त्याग देगा। भगवान् की आज्ञा को तो मैं टाल नहीं सकता। आज की रात्रि मैं यहां भगवान् के आश्रम में निवास करूंगा। अभी मैं महावीर हनुमान् को भरत के समीप भेजता हूँ। मेरे आगमन का समाचार सुनकर भरत को सन्ताप होगा। वह प्राण त्यागने का विचार छोड देगा। कल प्रात मैं भगवान् की आज्ञा लेकर अवध पुरी को जाऊंगा।'

मुनि ने श्री राम की बात का अनुमोदन किया। मुनि की सम्मति पाकर भगवान् ने हनुमान जी से कहा पवनतनय! तुम अभी अवध पुरी जाओ और भरत को मेरे आने की सूचना दो उसे धैर्य बंधाओ। उसके सब समाचार लेकर तुरन्त पुन मेरे पास लौट आओ। गङ्गा पार करते हुए उस पार तुम्हें शृ गवेरपुर मिलेगा। वहाँ का राजा निपादराज गुह है। वह मेरा परम मित्र है। मुझसे बडा अनुराग रखता है। उसे भी मेरी कुशल कहना। मेरी ओर से उसकी कुशल पूछना और मेरे आने का समाचार देना।"

भगवान् की आज्ञा शिरोधार्य करके हनुमान् जी वायु वेग के समान आकाश मार्ग से चले। गङ्गा पार करके उन्होने शृ ग-वेरपुर मे निपाद राज को भगवान् का सन्देश सुनाया। गुह से सत्कृत होकर हनुमान् जी अयोध्या की ओर उडे। अयोध्या से इधर ही नन्दिग्राम के समीप वे उतरे। वहाँ उन्होने मुनि वेप मे ध्यान लगाये भरत जी को देखा।

जब से श्रीराम जी वन को गये थे तभी से भरतजी एक एक दिन गिनत रहे। गिनते गिनते आज चौदह वर्ष पुरे हो गये। आज उनकी दशा विचित्र थी, उनके हृदय मे विचारों का

बवडर सा उठ रहा था। वे बार-बार दक्षिण दिशा की ओर देखते। श्रीरामचन्द्रजी को आज सूर्यास्त तक आ जाना चाहिये। चित्रकूट मे उन्होने यही आश्वासन मुझे दिया था, किन्तु अभी तक उनके आने का मुझे कोई समाचार नही मिला। मैंने यहाँ से गङ्गा तक बहुत से अश्वारोही नियुक्त कर रखे हैं, उन्हे आज्ञा दे रखी है, कि राघव के आगमन का ज्योही समाचार मिले त्यो ही मुझे अविलम्ब समाचार दिया जाय, किन्तु अभी तक कोई अश्वारोही दौडकर आता हुआ दिखाई नही देता। देखते-देखते मेरी आंखें पथरा गई। 'श्रीराम आ रहे हैं' इन श्रुति मधुर शब्दो को सुनने को श्रोत्र अत्यन्त ही समुत्सुक हो रहे हैं, किन्तु कोई मुझे इन सुखद शब्दो को सुनाता नही। इस शुभ सवाद को कोई आकर कहता नही, यदि अभी श्रीराम शृ गवेरपुर तक नही आये, तो अब आवेंगे नही क्या? निश्चय ही उन्होने मुझे माता के सम्बन्ध से कुटिल समझा होगा। उन्होने मेरा मन से परित्याग कर दिया होगा। राम से रहित होकर मैं जीवित नही रह सकता। अब मैं कल प्रातःकाल होते ही अपने शरीर को प्रज्वलित अग्नि मे भस्म कर दूँगा।"

भरत जी इन्ही विचारो मे निमग्न थे, उसी समय पवत-तनय हनुमान् जी ने उनके समीप आकर जय जय श्री सीताराम का सुमधुर शब्द कहा। इस श्रुतमधुर शब्द को सुनकर भरत जी के रोम-रोम मे बिजली सी दौड गई। इन शब्दो मे न जाने कितनी मोहकता थी; कितना आकर्षण था, कि भरत जी चौक पड़े। सम्मुख उन्होने एक ब्राह्मण को खडा हुआ देखा। अत्यत ही स्नेह के साथ उसे देखने लगे।"

ब्राह्मण-वेष बनाये वानर-श्रेष्ठ हनुमान् जी बोले—"महा-भाग, आप जिन श्रीराम का निरन्तर चिन्तन करते रहते हैं, वे

रावण को मारकर लक्ष्मण और सीता के सहित सकुशल तीर्थ-राज प्रयाग में भगवान् भरद्वाज मुनि के आश्रम पर ठहरे हुए हैं। आप कल प्रातः उन्हें प्रसन्नता पूर्वक यहाँ देखेंगे।"

इतना सुनते ही शीघ्रता के साथ भरत जी उठे। उन्होंने दौडकर हनुमान् जी को हृदय से लगा लिया। नयनों के नीर से उन्हे अर्घ्य दिया और गद्‌गद कण्ठ से रुक-रुक कर कहने लगे—"महाभाग ! आप कौन हैं ? आप देवता हैं या यक्ष हैं ? गन्धर्व हैं अथवा मनुष्य हैं। आप कोई भी क्यों न हों, इस सुखद सवाद के सुनने से आप मेरे माननीय है, पूजनीय हैं। मेरे पास ऐसी कोई वस्तु नहीं, जिसे मैं इस उपकार के बदले मे आपको अर्पित कर सकूं। फिर भी मैं ग्राम, धन, धान्य, वस्त्र, आभूषण और सुन्दरी सुकुमारी कन्यायें आपको अर्पित करता हूँ।"

यह सुनकर हनुमान् जी बोले—"प्रभो ! मेरा नाम हनुमान् है। मैं अजना के गर्भ से वायु के वीर्य द्वारा उत्पन्न हुआ हूँ। मैं न देवता हुँ, न यक्ष, न गन्धर्व, न किंपुरुष तथा मनुष्य ही हूँ। मैं जाति का बानर हूँ। इसके पूर्व मैंने एक बार आपके और भी दर्शन किये थे, जब मैं सजीवनी बूटी वाले पर्वत को लेकर आ रहा था।"

यह सुनते ही भरत जी ने पुनः पवन-तनय का गाढालिंगन किया और अत्यन्त ही स्नेह पूर्वक बोले—"अरे भैया हनुमान् ! तुमने तो वेष ही बदल लिया। तुम तो भगवान् के अनन्य उपासक हो। जीवन तो तुम्हारा ही सार्थक है, तुमने अपना समस्त जीवन श्री राघव की सेवा मे ही समर्पित कर दिया है। भगवान् लका से कब पधारे ? वे माता जानकी के सहित कुशल पूर्वक तो हैं ना? मेरे भाग्यशाली भाई जो अवस्था में छोटे होने

पर भी गुणों मे मुझसे बडे है, वे लक्ष्मण तो कुशल पूर्वक है न ? विजयी राम को अधिक श्रम तो नही उठाना पडा ? वे इस समय कहाँ है ? उन्होने आपको क्या मेरी परीक्षा लेने भेजा है ? वे पधारे क्यो नही ? वे मुझे अपराधी तो समझते हो होगे ? अपराधी तो मैं हूँ ही, किन्तु कृपा के सागर राम अपनी भक्त वत्सलता के कारण मेरा कभी स्मरण करते है क्या ?"

भरत जी के ऐसे प्रश्नो को सुनकर गद्‌गद कठ से हनुमान्‌जी ने कहा—"प्रभो ! ये प्रश्न आपकी विनय के अनुरूप ही हैं। श्रीराम का न तो जानकी हरण की चिन्ता थी और न विजय की अभिलाषा, वे तो निरन्तर आपका ही चिन्तन करते रहते हैं। आपके लिये आज ही लका से विमान मे उडकर तीर्थराज प्रयाग मे पधारे हैं ! वे तो आज ही आ रहे थे, किन्तु भगवान् भरद्वाज के अत्यधिक आग्रह के कारण आज वे उनके आश्रम पर रह गये है। कल प्रात.काल आप उनके दर्शन करेगे। आप किसी प्रकार की चिन्ता न करें। जिस प्रकार आप निरन्तर श्रीराम का चिन्तन करते रहते हैं उस प्रकार वे भी आपका सदा चिन्तन करते रहते है। ससार मे श्रीराम को आप से अधिक कोई प्रिय है, इसका पता मुझे नही।"

यह सुनकर रूधे हुये कन्ठ से भरत जी ने कहा—"पवन-तनय तुमने यह मुझे बडा ही सुखद सवाद सुनाया। सवाद क्या सुनाया है, मेरे जीवन को बचाया है, यदि आप आज यह सवाद न देते तो कल प्रात मैं निश्चय ही प्रज्वलित अग्नि मे कूद कर अपने प्राणो को गँवा देता।"

हनुमान् जी ने कहा—"प्रभो ! इस बात को भगवान् ने बार-बार दुहराया था। इसीलिये आज उन्होने मुझे यहाँ भेजा है अब आप मुझे आज्ञा दें। अब जाकर भगवान् को आपके

समाचार सुनाऊँगा और कल प्रात उन्हें साथ लेकर आपके समीप पुनः आऊँगा।

भरत ने ममता भरी वाणी मे कहा—"पवनतनय! मैं तुम्हें जाने को तो कैसे कहूँ, किन्तु पुन आने की अभिलाषा से तथा श्री रामचन्द्र जी के दर्शनों के लोभ मे मैं तुम्हे जाने को कह सकता हूँ, किन्तु तुम्हे स्मरण दिलाये देता हूँ, यदि कल प्रातः तुम भगवान् को साथ लेकर न आये तो फिर मुझे जीवित न पाओगे।"

हनुमान् जी ने कहा—"प्रभो! आप निश्चिन्त रहे। प्रातः भगवान् आपको अपने सभी साथियो सहित प्रेम पूर्वक देखेंगे स्नेह पूर्वक कन्ठ से लगायेंगे।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इस प्रकार आश्वासन देकर हनुमान् जी आकाश मार्ग द्वारा उडकर भगवान् के समीप चले गये। भरत जो भगवान् के स्वागत की तैयारियाँ करने लगे। प्रातःकाल होते ही अपने सचिव, मन्त्री, पुरोहित तथा पुरवासियो को साथ लेकर भगवान् की चरणपादुका को शिर पर रखकर अगवानी के लिये चले।"

छप्पय

निरखि भरत की दशा वायु सुत अति हरषाये।
बोले—"हे नरदेव! अवधिपति अब ई आये॥
सुनत सुखद शुभ बचन सुधा रसमहँ साने जनु।
व्यापो अङ्ग अङ्ग हरष भैयो पुलकित सबरो तनु॥
सुनि रघुपति को आगमन, भरत मुदित मन महँ भये।
समाधान सब भाँति करि, पवनतनय प्रभुढिँग गये॥

श्रीराम और भरत का मिलाप

पारमेष्ठ्यान्युपादाय पण्यान्युच्चावचानि च ।
पादयोर्न्यपतत् प्रेम्णा प्रक्लिन्नहृदयेक्षणः ॥

पादुके न्यस्य पुरतः प्राञ्जलिर्बाष्पलोचनः ।
तमाश्लिष्य चिरं दोर्भ्यां स्नापयन् नेत्रजैर्जलैः ॥ *
(श्री भाग० ६ स्क० १० अ०, ३६ ४० श्लो०)

छप्पय

इत सजिकें सब साज भरत स्वागत हित धाये ।
बाल वृद्ध नर नारि चले उठि सुनि प्रभु आये ॥
चलें पढ़त द्विज वेद गीत ललना शुभ गावत ।
वाहन चढ़ि-चढ़ि चले हरषि हय वीर नचावत ॥
रामपादुका शीश धरि, राम चरन महँ रोवते ।
परे लकुट सम भरतजी, अँसुअनि भूमि भिगोवते ॥

प्रिय स्मरण, प्रिय दर्शन, प्रिय मिलन, प्यारे के साथ सम्भाषण प्रिय की सन्निधि में निवास और प्रिय की पल-पल की प्रतीक्षा इन सब में प्रतीक्षा ही श्रेष्ठ है। मिलन तो उसका फल है। प्रतीक्षा बीज है। उत्कंठा से वह सींची जा सकती है। चिरकाल तक सींचते-सींचते जब उसमें मिलन का मधुर फल लग जाता है तो तृप्ति होती है। जिस जीवन में प्रतीक्षा नहीं उत्कंठा नहीं, मिलन के लिये व्याकुलता नहीं, दर्शनों के लिये

* श्री शुकदेव जी कहते हैं—"राजन्! महाराजों के योग्य छोटी बड़ी सभी सामग्री लेकर भरतजी रामजी की ओर चले और प्रेम से गद्‌गद हृदय होकर नीर-भरे नयनों से भगवान् के पैरों में पड़ गये भगवान् की चरण पादुका उनके सम्मुख रखकर अञ्जलि बाँधे हुए वाष्पपूर्ण लोचनों से उनके सम्मुख खड़े हो गये। भगवान् ने भी उन्हें चिरकाल तक गाढ़ालिंगन करके अपने नेत्रों के जल से भिगो दिया।"

छटपटाहट नही। हृदय से हृदय सटाकर बाहुपाश मे बाँधने के लिये सिहरन नही, वह जीवन-जीवन नहीं। वह तो जडता है उत्कंठा ही साधन है, प्रतीक्षा मे ही समय की सार्थकता है। प्रतीक्षा मे स्फूर्ति है, मिलन मे शिथिलता है।'

सूतजी कहते है—'मुनियो! भगवान् का सदेश सुनाकर समीरसुत हनुमान्‌जी भगवान् के समीप प्रयागस्थ भरद्वाज आश्रम मे लौट गये। अब भरत की दशा कुछ न पूछिये नेत्रो से निद्रा निकल कर बिना पूछे ही राम दर्शनो के लिये भाग गई उन्होंने अपने सचिव, सैनिक तथा साथियो को इस शुभ समाचार की सूचना दे दी। सभी इस सुखद सवाद को सुनकर परम प्रमुदित हुए। सभी स्वामी के स्वागत के लिये तैयारियाँ करने लगे। भरतजी तो अपने आपे को ही भूल गये। कुछ करना चाहते थे, कुछ करने लगते थे। कुछ कहना चाहते थे, कुछ मुँह मे निकल जाता था। निरन्तर राम-राम रटते रहने से तथा श्रीराम का ही चिंतन स्मरण करने से उनकी दृष्टि राम रूप मे रग गई थी। स्नान करके उन्होंने अरुणोदय के पूर्व ही समस्त चतुरंगिणी सेना को तैयार होने की आज्ञा दे दी। जिस मार्ग से श्रीराम आने वाले थे, उसे विविध भाँति से सजाया। सुगधित जल से पवित्र छिडकन कराया गया। किनारे-किनारे तोरण वन्दनवार बाँधे गये। सुन्दर सुगन्धित खिले हुए पुष्पो की मालायें लटकाईं गईं स्थान-स्थान पर सुन्दर फाटक बनवाये गये जिनमे मोतियो की झालरे बाँधी गई। रग बिरगे रेशमी वस्त्रो से वे ढँके गये। राजपथ के दोनो ओर सुन्दर सुसज्जित सभ्य कुलीन तथा आज्ञाकारी स्वामि-भक्त प्रहरी खड़े हुए थे। अरुणोदय की लालिमा जभी नभ मंडल मे दिखाई दी, तभी भ्रातृस्नेही भरत, श्रीरामचन्द्रजी की चरण-पादुकाओ को सिर

पर रख कर उनके स्वागत के निमित्ति चले। उनके इधर-उधर तथा पीछे वेदज्ञ ब्राह्मण ब्रह्मघोष करते जाते थे। गुरु वशिष्ठ उनके आगे-आगे चल रहे थे। सभी हित के कार्यो मे पुरस्सर रहना आगे-आगे चलना यही तो पुरोहित का कार्य है। वेद-ध्वनि से दशो दिशायें गूज रही थी। नन्दिग्राम से वे उस ओर चले जिस ओर से राघव आने वाले थे। उनके मत्री पुरोहित तथा अन्यान्य प्रधान-प्रधान कर्मचारी उनका अनुगमन कर रहे थे। रग विरंगे ध्वजा पताकाओ को लिये हुए सेवक साथ चल रहे थे। वे ध्वजायें सुन्दर चटकीले रग की बनी हुई थी। उन पर सुनहरे तारो से बेल बूटे बनाये गये थे। वेदपाठी ब्राह्मणो के पीछे विविध भाँति के बाजे बजाने वाले बहुमूल्य वस्त्राभूषणों से अलकृत होकर ताल स्वर से वाद्यो को बजाते हुए चल रहे थे। उनके साथ पैदल सैनिक थे। उनके पीछे सुनहरी साजो से सजे हुए, सुन्दर घोडो पर चढे हुए अश्वारोही सैनिक चल रहे थे। उनके पीछे गजारोही और तदनतर रथो की पक्तियाँ थी। सभी उच्च स्वर से "राजारामचन्द्र की जय" बोल रहे थे। बहुत से सेवक महाराजाओ की पूजा के योग्य समस्त सामग्रियो के थाल लिये हुए थे।। हाथो मे सुन्दर सुगन्धित पुष्प थे, कोई सुन्दर सुहावने हार लिये हुए थे। कोई दधि, अक्षत, लावा, अकुर, सरसो, दूध, घृत, शर्करा, मधु लिये हुए थे। कोई इक्षुदंड, सुन्दर स्वादिष्ट फल, चन्दन, अगुरु, कपूर, रेशमी वस्त्र, विविध भाँति के आभूषण लिये थे कुमारी कन्यायें पूजा आरती की थाली लिये हुए आगे चल रही थी। भरतजी आगे-आगे लडखडाते हुए चल रहे थे। उन्हे अपनी शरीर की सुधि-बुधि नही थी। सिर पर चरणपादुका रखे यन्त्र की भाँति, अस्त-व्यस्त भाव से स्खलित गति से गमन कर रहे थे। निरन्तर अश्रु बहने के कारण

नयनो से कपोलो तक एक काली नाली-सी बन गई थी। श्रीराम के वन गमन का उनके उपर अत्यधिक प्रभाव पडा था। वे सूख-कर कांटा हो गये थे। उन्हे यह दुख क्षण-क्षण मे पीना दिया करता था कि श्रीराम मेरे ही कारण वनवासी बने है। जब वे सोचते—"नंगे पैरो सुकुमार शरीर वाले श्रीराघव कटकाकीर्ण अवनि पर पैदल ही एक वन से दूसरे वन मे डोल रहे होंगे, तो उनका हृदय फटने लगता। वे सोचते थे जिस कोमलांगी सुकुमारी सीता के सुन्दर शरीर मे सुमनो की पंखुडियां तक गडती थी, आज वे मेरे ही कारण कठिन भूमि पर सो रही होगी। इन बातो के स्मरण होते ही उनकी आंखें भर आती और वे रोते रहते। उनके कपोल पिचक गये थे, नेत्र निकल आये थे। प्रातः-काल उठते ही वे हाथ जोडकर सूर्य की प्रार्थना करते—"हे पाप पुण्यो के साक्षी सविता देवता! मेरे पापो को हर लो। तुम मेरे पूर्वज हो। मेरे कुल के आदि देवता हो, मुझे राम से मिला दो मुझे मेरे भाई के चरणो क दर्शन करा दो।"

भरतजी से कोई कुछ पूछता, कोई कुछ कहता, तो वे नेत्र मे जल भर दीनता के स्वर मे रोते-रोते कहते—"मुझ अभागे से यह क्यो पूछते हो, मैं तो ससार को मुख दिखाने के भी योग्य नही।" इस प्रकार निरन्तर आत्मग्लानि-युक्त जीवन विताने से कारण उनके शरीर मे केवल अस्थिमात्र ही शेष रह गई थी। आज न जाने उन सूखी मुट्ठी भर हड्डियो मे इतना बल कहाँ से आया। वे लडखडाते हुए दौड रहे थे। नन्दिग्राम के समीप वे सुन्दर सर के समीप खडे हो गये और बार-बार दक्षिण दिशा की ओर देखते। जब बहुत देर हो गई तो उनकी अधीरता बढने लगी। कही हनुमान ने वानरी चपलता तो नही की। मुझे मरने से बचाने के लिये तो षडयन्त्र नही रचा। क्या, राघव मुझ जैसे

पापी को दर्शन देंगे। मेरे कारण उन्हे वनो मे भाँति-भाँति के क्लेश उठाने पडे, जिस सीता माता को स्वेच्छा से सूय भी नही देख सकते थे, जिसके कारण वनवासी कोल भीलो के सम्मुख उन्हे घूमना पडा, माँग-माँग कर कसैले, तिक्त, नीरस कन्दमूल फलो पर निर्वाह करना पडा, उस पापात्मा को प्रभु राम के दर्शन कैसे हो सकते है। अवश्य ही हनुमान ने मुझे फँसाये रखने को यह समाचार दिया है अथवा सत्य भी हो, क्योकि राम तो पतित पावन है, शरणागतवत्सल हैं, वे अपने सेवको के अवगुणो की ओर ध्यान नही देते, वे करुणा के सागर प्रणत प्रतिपालक हैं आते ही होगे, भरद्वाज मुनि ने उन्हे देर में आज्ञा दी होगी।'

भरतजी इस प्रकार सकल्प विकल्प कर ही रहे थे, कि इतने मे ही प्राची दिशा से ससार के तिमिर को नाश करते हुए भगवान् भुवन भास्कर उदित हुए। जहाँ उसकी प्रथम किरण पृथ्वी के पदार्थो पर पडी वही भरतजी ऊपर क्या देखते हैं, कि दक्षिण दिशा से भी एक नवीन सूर्य उदित हो रहा है। रविकुल तिलक श्रीरघुनन्दन को पुष्पक विमान पर आते हुए सभी ने निहारा। पुष्पक विमान को देखकर सभी आनन्द से जय जयकार करने लगे। जन-समूह रूप समुद्र मे मानो ज्वार भाटा आ गया हो। बाजे तुमुल ध्वनि से बजने लगे, जयजयकारो के शब्द से दिशायें गूजने लगी। पारिजात के पुष्प सभी के ऊपर गिरने लगे। शनै शनैः पुष्पक नन्दिग्राम के सर के समीप उतरा। दूर से ही श्रीराम ने कृशतनु क्षीणकाय भरत जी को वल्कल और कोपीन धारण किये हुये पैदल ही अपनी ओर आते देखा। उनके काले-काले अति मनोहर घु घराले बालो को बिना तेल डाले जटायें बन गयी थी, निरन्तर उनके नयनो से नेह का नीर बह रहा था। उन्हीं के समान उनके सभी मन्त्री

भी दुखित थे। सभी जटा वल्कल धारण किये हुये तपस्वियों के समान प्रतीत होते थे। चक्रवर्ती महाराज दशरथ के पुत्र श्रीराम अपने छोटे भाई भरत की ऐसी दशा देखकर रोने लगे। वे बार-बार लम्बी साँसें लेकर समीप में बैठे हुये विभीषण, सुग्रीव तथा हनुमान् आदि समस्त सुहृदों से कहने लगे—"भाइयो! तुम मेरे तपस्वी छोटे भाई भरत को देख रहे हो। यह मुझे प्राणों से भी अधिक प्रिय है। मैंने तो वन में कुछ भी क्लेश नहीं उठाये। तुम सुहृदों की सहायता से मुझे तो सभी सुविधा प्राप्त थी, किन्तु राज्य पाट करते हुए मेरे भाई भरत ने जैसे क्लेश उठाए वैसे अन्य कोई राजा नहीं उठा सकता। तुम देखते नहीं हो, इसका तनु कितना कृश हो गया है। मुझमें इसका कितना अनुराग है, मेरे आगमन का समाचार सुनते ही अपने मन्त्रियों सैनिक और सेवकों के सहित मुझे लेने आगे आ रहा है।" भगवान् की ऐसी बातें सुनकर और भरत जी की ऐसी दशा देखकर सभी रोने लगे। सीताजी भरत की ओर देख न सकीं। वे श्रीराम के वक्ष से मुख ढाँक कर रोने लगीं। लक्ष्मण आँसू बारम्बार पोंछ रहे थे। उसी समय पुष्पक पृथ्वी के समीप आ गया। भरत को निकट देख कर भगवान् का हृदय विरह से कातर हो उठा। वे शीघ्रता से विमान से कूद पड़े और भैया! भैया! भरत! तुम कहाँ हो? कहाँ हो? कहते हुए भरत का आलिंगन करने दौड़े। श्री रामचन्द्र जी के पीछे-पीछे उनके साथी सहायक भी उतर पड़े। वेग से श्रीराम को अपनी ओर आते देख कर भरत जी दंड के समान भूमि पर पड़ गये।"

भरत को भूमि पर पड़ा देखकर श्री रामचन्द्र उन्हें बार-बार उठाने लगे, किन्तु वे प्रयत्न करने पर भी नहीं उठते थे। दोनों हाथों से उन्होंने अपने भाई के चरण पकड़ लिये थे, वे उन्हें नेत्रों

के जल से धो रहे थे और पलकों से उनकी धूल को पोंछ रहे थे। वे सिसक-सिसक कर करुणा भरी वाणी में रुदन कर रहे थे। वे बार-बार कहते थे—"जब इन कोमल चरणों को सीता माता अपने कमल से भी कोमल करों से दबातीं थीं, तो ये और अधिक रक्तवर्ण के बन जाते थे, आज ही ये चरण कठोर अवनि पर मुझ दुष्ट पापी के कारण पैदल ही परिभ्रमण कर रहे हैं। मुझसे अधिक हतभाग्य इस संसार में कौन होगा। कृपा के सागर प्रभो! मुझ हीन मति मलीन अधम पर कृपा करो।"

इस प्रकार भरत जी ने अपनी मर्मान्तिक वेदना और वाणी अश्रुओं द्वारा भगवान् के चरणों में निवेदन की। भगवान् की चरण-पादुकाओं को सम्मुख रखकर वे नयनों से नीर बहाते हुए खड़े हो गये। करुणाकर श्री रामचन्द्रजी ने उन्हें अपने हृदय से चिपटा लिया। जैसे रोता हुआ अबोध बालक शरीर को शिथिल करके माँ की छाती से चिपट जाता है, उसी प्रकार भरतजी बड़ी देर तक भगवान् की छाती से चिपटे रहे। प्रेम का वेग कम होने पर श्री रामचन्द्र जी ने सम्मुख खड़े हुए अपने कुलगुरु भगवान् वशिष्ठ को देखा। वे तुरन्त आगे बढ़ कर उनके पैरों में पड़ गये। वशिष्ठ जी ने अपने पैरों में पड़े श्री राघव को उठाकर उनका आलिंगन किया। फिर क्रमशः सभी पूजनीय ब्राह्मणों को भगवान् ने प्रणाम किया। समस्त पुरवासी सेवक सचिवों ने आकर भगवान् की चरण-वन्दना की। इधर भरत जी ने भी जाकर सीता माता के पैर पकड़े। लक्ष्मण जी ने भरत जी को प्रणाम किया। अपने छोटे भाई को प्रणाम करते देख दौड़ कर भरत जी ने उन्हें उठा लिया और रोते-रोते बो "हैं हैं भैया! तुम यह क्या करते हो, तुम तो मेरे ही नह के प्रणम्य हो, जीवन का लाभ तो तुमने ही लिया। जन

तो माता सुमित्रा ने ही सार्थक किया। पुत्रवती कहलाने योग्य तो भगवती सुमित्रा ही हैं। भैया ! तुम तो मेरे ऊपर कृपा करो। कभी जन्म जन्मातर में मुझे भी तुम्हारी जैसी भक्ति प्राप्त हो।" लक्ष्मण अपने दुबले पतले भाई भरत की ऐसी वाणी सुन कर कुछ भी न बोले। वे रोते-रोते उनके पैरों को सुहलाने लगे। विभीषण, सुग्रीव अंगद, हनुमान् तथा अन्यान्य वानर रो रहे थे। रोते-रोते इन सब ने भरत जी को प्रणाम किया। भरत जी ने उन सब का लक्ष्मण की भाँति आदर किया और प्रेम पूर्वक आलिंगन किया।"

प्रजा के लोगों के हर्ष का पारावार नहीं था। वे जय-जयकार बोल रहे थे। खील बतासों और पुष्पों की वर्षा कर रहे थे। आनन्द से नाचते हुए अपने-अपने दुपट्टों को हिला रहे थे। श्रीराम के प्रति अपना प्रेम प्रदर्शित कर रहे थे, अपनी हार्दिक भक्ति जता रहे थे। श्रीरामचन्द्र के प्रणाम करने के अनन्तर सीताजी और लक्ष्मण ने भी पूजनीय विप्रों की चरण-वन्दना की।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! इस प्रकार चिरकाल के अनन्तर भरत जी अपने भाई के दर्शनों से परम प्रमुदित हुए। जब सभी आपस में मिल भेंट लिये तो श्री रामचन्द्र जी भरत जी को साथ लेकर पुष्पक विमान पर चढ़े।"

छप्पय

लखे भरत कृशगात राम रघुनायक रोये।
आलिंगन करि नयन नीर तैं चीर भिगोये॥
भरत राम को मिलन निरखि उपमा सकुचावे।
करुणा हू है द्रवित नयन तैं नीर बहावे॥
सीता लछिमन सहित प्रभु, मिलि सब तैं पुष्पक चढ़े।
ह्वैके सत्कृत सबनि तैं, विनय सुनत आगे बढ़े॥

पुष्पकारूढ़ श्रीराम

पुष्पकस्थोऽन्वितः स्त्रीभिः स्तूयमानश्च वन्दिभिः।
विरेजे भगवान् राजन् ग्रहैश्चन्द्र इवोदितः॥
(श्री भा० ६ स्क०, १० अ०, ४५ श्लो०)

छप्पय

नर नारिनि तें घिरे राम पुष्पक महँ आजें।
मनहु महनि के बीच पूर्ण शशि नभ महँ राजें॥
भरत पादुका लिये विभीषण चँवर डुलावें।
श्वेतछत्र हनुमान व्यजन सुग्रीव हिलावें॥
- धनु रिपुसूदन तीर्थजल, सीय लिये अगद खड्ग।
ढाल भालुपति ले खड़े, जनुशोभित शचिपति स्वरग॥

इष्ट की पृथक्-पृथक् क्रीडाओं की पृथक्-पृथक् मुद्रायें होती हैं। उन सबका दर्शन अत्यन्त ही अन्तरग और सर्वथा सन्निकट रहने वाले ही कर सकते हैं। सर्वसाधारण पर कृपा करने के निमित्त, सबको झाँकी कराने के लिये जो छटा बनाई

---

* श्री शुकदेव जी राजा परीक्षित से कहते हैं—"हे राजन्! भरत मिलाप के अनन्तर पुष्पक विमान मे विराजमान तथा सुन्दरी स्त्रियो से घिरे हुए तथा बन्दियो द्वारा जिनकी विरदावली गाई जा रही है ऐसे श्रीराम आकाश में उसी प्रकार सुशोभित हुए जिस प्रकार नक्षत्र मडल के मध्य म उदित हुए चन्द्रमा सुशोभित होते हैं।"

जाती है उससे सब की तृप्ति होती है। ध्यान करने की झाँकी अपूर्व होती है। अपने अयुधों से युक्त पार्षदों से घिरे हुये इष्टदेव की अलौकिक दर्शनीय छटा को निहार कर किस सहृदय पुरुष का मनमुकुर न खिल उठेगा। चिरकाल में दिव्य झाँकी प्राप्त हो तो उससे किसकी तृप्ति न होगी।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! प्रयाग से प्रभु अपने भरत की तपोभूमि नन्दिग्राम की कुटी पर उतरे। वहाँ भरत ने उनकी चरण-वन्दना की। श्रीराम चिरकाल में अपने भाई भरत को पाकर परम प्रमुदित हुए। श्रीराम को तो अपने पिता की पावन पुरी में जाना है। १४ वर्ष पूरे होने पर आज ही अन्त पुर में प्रवेश करना है। अतः उन्होंने अपने दोनों भाइयों भरत और शत्रुघ्न को पुष्पक विमान पर चढ़ा लिया। रात्रि में ही बुद्धिमान मन्त्रियों ने पहुँच कर अयोध्यापुरी को विविध भाँति से सजाया था। प्रोषितभर्तृका नायिका का पति के आगमन पर सखियाँ सजाती हैं, वैसे ही अवधपति के आगमन पर अवध की राजधानी सजाई गयी थी। ऐसी सजी सजाई नगरी की ओर श्रीराम जी दिव्य पुष्पक विमान में अपने प्रिय पार्षदों और सेवक अनुचरों के सहित बैठ कर आकाश मार्ग से चले। उस समय की उनकी झाँकी दर्शनीय थी। ध्यान करने योग्य थी। रामरूप के अनुरागी उस पुष्पारूढ़ राम की मनोहर मूर्ति का ध्यान करें।

सजे सजाये दिव्य पुष्पकविमान के बीच में रत्नजटित मणि *माणिक्यों से युक्त दिव्य सुवर्ण का सिंहासन विराजमान है। उस* पर वैदेही के सहित श्रीरामजी विराजमान हैं। अभी राघव ने वही बनवासी वेष बना रखा है। छोटी-छोटी जटायें वायुवेग से कमल के समान सदा प्रसन्न मुख पर झुककर झूमकर बिथुर रही

हैं। बड़ी-बड़ी जटाओं को एकत्रित करके उनका मुकुट-सा बनाया गया है। वह जटाओं का मुकुट नील कमल के सदृश मुख पर ऐसा ही प्रतीत होता है मानों बहुत से भ्रमर एक साथ ही कमल पर बैठे हों। बड़े-बड़े नरस विकसित नेत्रों से चकित-चकित दृष्टि से विस्मय और अनुराग भरी चितवन से, भगवान् इधर-उधर निहार रहे हैं। सुन्दर गोल-गोल लोल कपोल मद-मद मुसकराहट के कारण कुछ उभरे हुए उठे से ऐसे प्रतीत होते हैं मानो दो मकरन्द भरे अरविन्दों के नीचे अक्षय सुधा की भरी दो दिव्य डिबियाँ चमक रही हों। नुकीली नासिकाओं के छिद्रों से निकली हुई दिव्य सुगंधित हुई वायु विश्व में शांतिका प्रसार कर रही है। कानों के कुसुम कपोलों की आभा से फीके-फीके से प्रतीत होते हैं। अधर और ओष्ठ की लालिमा से स्वच्छ और शुभ्र दाँतों की पक्तियाँ दाडिम के दानों के सदृश कुछ लालिमा-सी लिये प्रतीत होती हैं। कम्बुकण्ठ में पुष्पों की माला स्वय ही शोभित हो रही हैं। एक विशाल बाहु जनकनंदिनी के कन्धे पर रखा है। चीर वसन कुछ अस्त व्यस्त भाव से इधर-उधर हो रहे है। वाम चरण को दक्षिण चरण की जघा पर रखे हुए हैं। श्री सीता जी सुंदर पीले रगकी रेशमी साडी पहिने हुए है। वे दिव्यवस्त्राभूषणों से सुशोभित हैं। सिर पर की चन्द्रिका चचल सी हो रही है। कर में क्रीडा कमल अपनी स्वभाविकी गति से स्वत ही हिल रहा है, वे अपने प्राणनाथ प्रियतम से सटी हुई बैठी है। भगवान् की चरण पादुकाओं को लिये हुये भरत जी भगवान् से अत्यन्त आग्रह से उनके चरणों के समीप बैठे-बैठे अनिमेष दृष्टि से रामचन्द्र के मनोहर मुख को निरन्तर निहार रहे है। सिंहासन के पीछे मनुष्य रूप रखकर राक्षसराज विभीषण और वानरराज सुग्रीव खड़े है। विभीषणजी के हाथ में सुंदर सुवर्ण की मूंठ

वाला दिव्य चँवर है। सुग्रीव जी व्यजन लिये हुए उसे सावधानी के सहित हिला रहे हैं। सौ सुवर्ण की तानो वाले श्वेत छत्र को पवन तनय महावीर हनुमान ताने हुए हैं, जिसमे लटकती हुई मोतियो की झालरें हिल-हिल कर सगुण सच्चिदानन्द के सौन्दर्य का समर्थन-सा कर रही हैं। शत्रुघ्नजी भगवान् के दिव्य आयुध धनुष और तरकश लिये हुये पार्श्व मे खड़े हैं। जगज्जननी भगवती सीता जो के एक कर मे तो कमनीय क्रीड़ा कमल है, दूसरे मे वे विविध तीर्थों के जलो से पूर्ण कमडल थामे हुए हैं, जो कन्यायें स्वागत् सत्कार के लिये लाई गई थी वे रामरूप मे पगी हुई इधर-उधर बैठी हुई हैं। वानरो की स्त्रियाँ मनुष्य वेश बनाये पुरजन परिजनो के अलौकिक प्रेम से अत्यन्त ही प्रभावित बनी चुपचाप श्रीराम की रूपमाधुरी का पान कर रही हैं। सम्मुख वदीजन स्तुति कर रहे है। वे वैदेही हृदयधन, भरताग्रज राघव की विरुदावली का गान कर रहे हैं। पुष्पक विमान विना हिले डुले आकाश मे उड रहा है। उसके ऊपर आकाश से देवता पुष्प वृष्टि कर रहे है। ऐसी मनोहर झाँकी को देख कर सभी पुरवासो नगरवासो नर नारी परम प्रमुदित हो रहे हैं। पुष्पक शनः-शनैः इस प्रकार उड़ रहा है, कि नीचे वाले सभी नर नारी चिरकाल से लौटते हुए कौशल्यानन्दनवर्धन, जानकी जीवन, प्रजा के प्राण श्रीराम के दर्शन कर लें। जहाँ-जहाँ से विमान उड़कर जाता, वहाँ-वहाँ के पथ पुष्पो से भर जाते। नीचे खड़े हुए सभी स्त्री पुरुष मुक्तकठ से कह रहे थे—"रघुनदन आपकी जय हो! कौशल्यानन्दवर्धन राघव, आपकी जय हो! दशरथनन्दन प्रभो, आप की जय हो! सूर्य कुलभूषण श्रीराम, आपकी जय हो!"

इस प्रकार जनता के जयजयकारो को सुनते हुए, सभी को प्रेम-भरी दृष्टि से निहारते हुए, सभी के नेत्रो को सफल करते हुए

श्रीरामचन्द्रजी अपने प्रिय पार्षदो से घिरे हुए अवध की ओर जा रहे थे। कुछ ही काल के अनन्तर उन्हे नववधू के समान सजी सजाई अपने पिता की राजधानी दिखाई दी। शत्रुघ्न की आज्ञा से आज पुरी विविध प्रकार से सजाई गई थी। नगरवासियों को स्वय ही राम आगमन के कारण अत्यधिक उत्साह था। अत बिना कहे ही सभी ने सर्वत्र सजावट की थी। ऐसा कोई घर नही था जहाँ केले के खम्भे न गडे हो। जहाँ सुगन्धित धूप न जलाई गई हो चौराहो पर पुष्प बखेरे गये थे। मालायें लटकाई गई थी। सभी सडकें स्वच्छ करके सुदरता के साथ सजाई गई थी। सभी आबाल वृद्ध नर-नारी राम दर्शनो की अभिलाषा से राज-पथ के दोनो ओर खडे थे। कुलवन्ती स्त्रियाँ अपनी-अपनी अटारियो पर चढी झरोखा और गवाक्षो से झाँक रही थी। उससे ऐसा प्रतीत होता था मानो सभी भवन सजीव होकर सहस्र-सहस्र नेत्रो से भगवान् के दर्शन कर रहे हो। राम दर्शनो के लिए समुत्सुक जनता के उत्साह का वर्णन असम्भव है। बच्चे उचक-उचक कर बार बार आकाश की ओर निहार रहे थे जहाँ से भी पुष्पक विमान निकल जाता वही के लोग पीछे पीछे दौडने लगते। इस प्रकार पुरी के समीप पहुँचते-पहुँचते भीड मर्यादा का उल्लङ्घन कर गई। उस अपार भीड मे किसी का कुछ सूझता ही नही था। छोटे-छोटे बच्चो को भली-भाँति भगवान् के दर्शन नही होते थे। भक्तवत्सल भगवान् सबकी विवशता समझ गये। उन्होने विमान को उतरने की आज्ञा दी। तुरन्त विमान नीचे उतारा गया। अब वे सीताजी और लक्ष्मणजी के सहित खुली पालकी मे विराज, जिससे सभी को भली भाँति दर्शन हो सकें समस्त वानर मनुष्य वेष बनाकर बडे-बडे हाथियो पर बैठे। वे अयोध्या की शोभा और जनता के प्रेम को देखकर चकित-चकित नेत्रो से इधर-उधर

निहार रहे थे।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इस प्रकार पुष्पकारूढ राम अब शिविकारूढ होकर नगर के राजपथ से अन्तःपुर की ओर बढ़ने लगे।"

छप्पय

बोलें नर अरु नारि मुदित मन जय जय मिलि सब।
सबकूँ दरशन देत चले पुष्पक तैं राघव॥
अटा अटारी चढी सुमन सब तिय बरसावैं।
राम दरश हित बाल वृद्ध इत तैं उत धावैं॥
तजि पुष्पक शिविका चढ़े, जन-समूह अति राम लखि।
नयन नीर सबके भरे, मुनि—गन युत रामहिँ निरखि॥

अन्तः पुर में श्रीराम

भ्रातृभिर्नन्दितः सोऽपि सोत्सवां प्राविशत् पुरीम् ।
प्रविश्य राजभवनं गुरुपत्नीः स्वमातरम् ॥
गुरून् वयस्यावरजान् पूजितः प्रत्यपूजयत् ।
वैदेही लक्ष्मणश्चैव यथावत् समुपेयतुः ॥❀

(श्री भा० ९ स्क० १० अ० ४६, ४७ श्लो०)

छप्पय

करि सबको सम्मान मातु महलनि प्रभु आये ।
सबतैं पहिले भरत मातु चरननि सिर नाये ॥
झेंप छुडाइ हँसाय सुमित्रा के पद पकरे ।
कौशल्या रघुनाथ मिलन लखि रोये सबरे ॥
चूमे चाटें प्रेम तैं, धेनुवत्स अति लघुहि लखि ।
कौशल्या प्रमुदित भई, त्यों रघुनन्दन कूं निरखि ॥

❀ श्री शुकदेवजी कहते हैं—' राजन ! इस प्रकार अपन भाइयो से सत्कृत हुए भगवान् उत्सवपूर्ण अयोध्या पुरी म प्रविष्ट हुए । राजभवन में पहुँचकर उन्होंने माता का तथा गुरु पत्नियों का गुरुओ तथा बराबर वालों का स्वागत सत्कार किया । छोटो के द्वारा स्वय सम्मानित हुए । इसी प्रकार उनके ही समान सबसे व्यवहार करते हुए लक्ष्मण और सीताजी ने भी उनके साथ प्रवेश किया ।"

जो हमारे साथ उपकार करे, उसके प्रति कृतज्ञ होना तो स्वाभाविक ही है। जो उपकारी के प्रति कृतज्ञता प्रकट नहीं करते वे तो कृतघ्न तथा अधम कहलाते हैं, किन्तु जो अपकारियों के प्रति भी प्रेम प्रदर्शित करे और उनके अपकारों की ओर ध्यान ही न दें वे ही महान है। महापुरुष सदा अपकारी का सम्मान करते हैं। वे सोचते हैं, मेरे कारण इसे दुख न हो। इसलिये वे उसका अधिक ध्यान रखते हैं। वास्तव में देखा जाय तो कौन किसका अपकार या उपकार कर सकता है। जैसे अपकारी अपकार करने को विवश है वैसे ही उपकारी उपकार करने के लिये बाध्य है। साधुओं से किसी का दुख सहा ही नहीं जाता। अपने कारण कोई सकुचित न हो इस कारण वे हँस कर प्रेम प्रदर्शित करके उसके सकोच को छुडा देते हैं।

सूतजी कहते है—मुनियो! वन से लौटे हुए श्री राम पुष्पक से उतर कर शिविका पर आ विराजे जिससे सभी भली भाँति उनके दर्शन कर ले। भगवान् की भोली भाली मधुर मूर्ति के दर्शन करके सभी नर नारी अपने आप को भूल गये। सती सीता अपने पति के समीप बैठी थी। उन्हे देखकर स्त्रियाँ परस्पर कहने लगी—"देखो स्त्री होने का परम लाभ तो इन विदेह-नन्दनी को ही प्राप्त हुआ है जो लोकाभिराम श्रीराम के मनोहर मुख चन्द्र को चातकी की भाँति निरन्तर निहारती रहती हैं ये परम सौभाग्यवती भगवती कितनी भाग्यशालिनी है कि जिनकी कृपा कटाक्ष के लिये बडे-बडे ब्रह्मादिक देवता तरसते है। उनकी ये कठमाल हैं। कौशल्यानन्दवर्धन रघुनन्दन इन्हे प्राणो से भी अधिक प्यार करते हैं इनके बिना वे जीवित रहना नहीं चाहते तुमने सुना नहीं, जानकी के हरण पर ये कितने दुखित हुये थे।

भालु वानरों की सेना सजाकर ये लका पर चढ गये और रावण को मारकर जानकी को छुडाकर ही लौटे।

दूसरी कहती—"सखि! सीता के सौभाग्य के सम्बन्ध मे तो कहना ही क्या। हम तो कोल-भील तथा जगली जाति वनवासिनी कन्याओ को भी अत्यन्त बडभागिनी समझती है, जिन्होने शारदीयचन्द्र के समान विकसित रामचन्द्र के मुखारविन्द मकरन्द का निर्निमेष दृष्टि से अपने बडे-बडे लजीले भ्रमर के समान लोचनो की कोरो से तृप्त होकर पान किया है। कमल की सुषमा को भी तिरस्कृत करने वाला इनका मधुर मुख मन्द-मन्द हास्य से सदायुक्त ही रहता है। नेत्रो की सार्थकता इस अद्भुत अनुपम आनन को निहारने मे ही है। बन्धूक पुष्प की आभा को भी तिरस्कृत करने वाले इनके रस-भरे कोमल अधर जिस आनन पर भी प्रेम चिन्ह अंकित करने होगे उस आनन के भाग्य की तुलना त्रैलोक्य मे कहाँ मिल सकती है। आज हम सब भी भाग्यवती बन गई जो १४ वर्ष के अनन्तर वनवास से लौटे हुए जानकीजीवन सौमित्र-सर्वस्व कौशल्यानन्दन भरताग्रज श्रीराम का स्नेह दर्शन कर रही हैं।" इस प्रकार-स्नेह मे पगली-सी हुई आत्मविस्मृत हुई, अवध की रमणियाँ परस्पर मे श्रीरामचन्द्र की प्रशंसा करने लगी। कोई ऊपर पुष्प बरसाती, कोई धूप जलाती, कोई मगल द्रव्य चढाती। राजपथ के उभयपार्श्वों मे खडे हुए आबालवृद्ध पुरुष जयजयकार करते। उन सबके स्वागत सत्कार के प्रति सम्मान प्रदर्शित करते हुए सदा प्रसन्न राम शिविका मे विराजे अन्त.पुर की ओर बढ रहे थे। राम-दर्शनो के लिये पुरुष अत्यन्त ही पिपासित प्रतीत होते थे। श्रीराम उन सबको अपनी स्नेहमयी मधुमयी दृष्टि से ही सन्तुष्ट करते हुए जा रहे थे।

शिविकावाहक अपने भाग्य की सराहना करते हुए उन्हें जीवन की अमूल्य निधि समझकर ले जा रहे थे। वे माता कौशल्या के महलो की ओर ज्योही बढे–त्योही राजीव–लोचन रघुनन्दन ने अपने कोकिल-कूजित कमनीयकठ मे स्नेह-पूर्वक कहा—"बन्धुओ! सर्वप्रथम मैं अपनी मझली माता भगवती कैकेयी देवी के दर्शन करना चाहता हूँ। तुम सब उनके ही महलों मे मुझे ले चलो।"

भगवान् का सकेत पाकर शिविका वाहक सेवक उसी ओर बढे। सभी नर नारी अन्त.पुर के द्वार के बाहर ही रुक गये। लक्ष्मण सीता सहित श्रीरामजी और भरत शत्रुघ्न ये ही उस ओर बढे माता के महल के द्वार पर दीन बन्धु राघव उतर पडे। पैदल ही उन्होने भीतर प्रवेश किया। दूर से ही दयासागर श्रीराम को देखकर कैकेयी के ऊपर तो मानो सहस्रो घडे पानी पड गया। वे लज्जा सकोच के कारण सम्मुख प्रणाम करते हुए श्रीरामचन्द्रजी को देखकर भी कुछ न बोल सकी। आत्मग्लानि दुख और श्रीराम की उदारता के भार से वह भूमि मे गडी जाती थी। लज्जा के कारण सिर उन्नत करने का भी उसका साहस नही होता था।

भरत की माता को इस प्रकार लज्जित देखकर ममता भरी मधुरवाणी में श्रीराघव बोले—"माँ! तुम मुझसे बोलती क्यों नही, मै वन से अवधि पूर्ण करके लौट आया हूँ। क्या माताजी आप मुझसे प्रसन्न नही है।"

कैकेयी ने आँसू पोछते हुए कहा—"राम! तुम निष्पाप हो। मैं अपने कुकृत्य के कारण लज्जित हूँ, मैं तुम्हे मुख दिखाने योग्य नही।"

अत्यन्त स्नेह से सनी वाणी से भरताग्रज बोले—"माँ! तुम

उन बातो को भूल जाओ। यह सब तो प्रारब्ध का खेल है। भाग्य की विडम्बना है, दैव की लीला है। उसमे आपका दोष नही है। इतना कहते-कहते राम माता से सट से गये। माता ने पश्चात्ताप के अश्रुओ से वनवासी वेषधारी राम की सम्पूर्ण जटा भिगो दी। गाढालिंगन करके उन्होने राम के प्रति प्रेम प्रदर्शित किया। पुन. सीता और लक्ष्मण को भी हृदय से लगा कर आशीर्वाद दिये।"

भगवान् राघवेन्द्र कैकेई के भवन से भगवती सुमित्रा के यहाँ गये। रामागमन को सुनकर पगली सी बनी माता द्वार की ओर दौडी और पैरो मे पडे हुय अपने पुत्रो को उठाकर उन्होने उनका आलिंगन किया। स्नह से सिर सूँघा और सीता को सदा सौभाग्यवती रहने का आशीर्वाद दिया। श्री रामचन्द्र जी ने स्नेह भरित वाणी मे कहा—"माँ, लक्ष्मण के कारण ही मेरे वनवास की अवधि पूर्ण हुई। यदि लक्ष्मण न होता, तो मेरे लिए तो ऐसे बीहड वनो मे सीता-सहित एक दिन भी रहना सम्भव नही था। लक्ष्मण ने जैसे सेवा की है, वैसी निष्कपट निर्व्यलीक सेवा कोई कर ही नहीं सकता। पग-पग पर इसने मुझे विपत्तियो से बचाया। वनो मे भी सभी प्रकार का सुख पहुँचाया। स्वय जाग-जाग कर मुझे सुख स सुलाया। मेरे सकल्पो को साकार बनाया। जब दुष्ट रावण अकेली पाकर जानकी को हर ले गया था, तो लक्ष्मण की ही सहायता से मैं उसे मारकर सीता को ला सका। लक्ष्मण के बिना मैं सीता को प्राप्त कर ही नही सकता था। लक्ष्मण के गुणो को प्रकट करने की मेरी शक्ति नही। देवी, तुम ऐसे पुत्ररत्न को प्रसव करके यथार्थ मे जननी बन गई। तुम ही वसुन्धरा हो। तुम ही रत्नगर्भा हो। तुम ही धारण पोषण करने वाली वास्तविक शक्ति हो" इन वचनो को

सुनकर सुमित्रा लज्जित हुई। उन्होने अपने पुत्रों और पुत्र-वधुओ को आशीर्वाद दिये उन्हे आगे करके वे कौशल्या जी के भवन की ओर वढी। श्रीराम अपनी जननी के दर्शन के लिये उत्कण्ठित हो रहे थे। माता के भवन की ओर आते हुए उनका हृदय भर रहा था।

माता ने जब राम का आगमन सुना तो वे लडखडाती हुई आगे वढी। अस्त व्यस्त भाव से माता को अपनी ओर आते देखकर वेग से दौडकर श्री रामचन्द्र जी माता के चरणो मे गिर गये। चिरकाल के अनन्तर अपने लाल को पाकर माता की प्रसन्नता का ठिकाना नही रहा। वे प्रेम के अश्रुओ से श्रीराम के वालो को भिगोती हुई वार-वार उनका सिर सूँघने लगी। गोदी मे बिठाकर अवोध शिशु की भाँति प्यार करने लगी। कठ गद्गद हो जाने से वे न कुछ वोल सकी और न कुछ समाचार ही पूछ सकी।

श्री रामचन्द्र जी ने देखा, माता मेरे वियोग से अत्यन्त कृश हो गई है, तो व वडे स्नेह से कहन लगे—"माँ! हमारे जीवन के ये १४ वर्ष आपकी बिना सेवा किये हुए व्यर्थ ही व्यतीत हुए। पुत्रो का प्रथम कर्तव्य यह है, कि माता-पिता की सेवा करें। जो पुत्र माता-पिता की सेवा नही करते, वे तो उदर मे उत्पन्न हुए अथवा वीर्य से उत्पन्न हुए कीड़े के समान है। पहिले तो मैं वच्चा ही था। तुम्हारे द्वारा ही पोष्य था, जब कुछ वडा हुआ, सेवा के योग्य हुआ तो पिता के आदेश से वन जाना पडा। जननी हमारे अपराधो की ओर ध्यान न देना। हम तो सदा आपके अपराधी हैं, यह सुकुमारी सीता तुम्हारे पादपद्मो मे प्रणाम कर रही है। इसने वन मे वडे-वडे क्लेश उठाये हैं।

अपनी पुत्रवधू को पैरो मे पडी देखकर माता ने उसे वल-

पूर्वक उठाया और अपने हृदय से बड़ी देर तक चिपकाये रही। फिर अत्यन्त स्नेह से कहने लगी—"अनिन्दिते सीते! तूने अपने जीवन को धन्य बना लिया। मेरी पवित्र स्वभाव वाली बहू! तुमने अपने चरित्र से पतिव्रत का परमोत्कृष्ट आदर्श उपस्थित कर दिया। जिस समय तू राम के पीछे-पीछे छाया की भाँति वन को जाने के लिए उद्यत हो रही थी, उस समय मेरी छाती फटी जा रही थी। मैं सोच रही थी, राम के लिये तो वन जाने की पिता की आज्ञा है, यह सुकुमारी सीता व्यर्थ वन क्यों जा रही है। यह रह जाती तो मेरे लिये एक अवलम्ब हो जाता। इसलिये मैंने तुझे बहुत समझाया, किन्तु तू नहीं मानी। पति का पीछा तूने नहीं छोड़ा। पति का पल्ला पकड़ कर प्रसन्नता-पूर्वक तू पैदल ही चल पड़ी। उस समय मुझे अच्छा नहीं लगा था। अब सोचती हूँ तूने अच्छा किया। यदि उस समय तू मेरी बात मानकर मोह वश ठहर जाती, तो शरीर को कुछ दिन का यत्किंचित् सुख भले ही मिल जाता, किन्तु इस प्रकार तेरा यश दिग्दिगन्तो मे व्याप्त न होता। तू इस प्रकार पतिव्रताओं में मुकुटमणि न समझी जाती। आज तूने अपनी कीर्ति से तीनो लोको को भर दिया बेटी! तूने अपने शीलस्वभाव से पितृ-वंश तथा पति-वंश दोनो ही वंशो को पावन बना दिया। वैदेही! तूने अपने पिता के नाम को अमर कर दिया। भगवान् करे तेरी कीर्ति सूर्य, गङ्गा, यमुना तथा हिमाचल की भाँति सदा व्याप्त रहे। जैसी तू वीर पत्नी है वैसी ही वीरप्रसविनी भी हो।" सिर झुकाये लज्जा मे सिकुड़ी अपनी सास के बाहुपाश मे आबद्ध सीता इन बातों को सुन कर सकुचित हो गई। उसने नेह के नीर से अपनी सास के सूखे कोमल कमल के समान पैरों को भिगो दिया।

तदनन्तर श्री रामचन्द्र जी ने कहा—"माँ तू सब आशीर्वादों

को अपनी बहू को ही दे डालेगी या कुछ मेरे लिये या इस भाई लक्ष्मण के लिए भी छोड़ेगी। देखो, यह राजसुख छोड़कर मेरे पीछे-पीछे वन गया था। पलक जैसे आँखों की रक्षा करते हैं, वैसे वन में रहकर इसने मेरी और सीता की सदा रक्षा की है। इसने कभी आलस्य नहीं किया, कभी अश्रद्धा के भाव प्रकट नहीं किये। जैसे प्राण शरीर का पोषण करते हैं वैसे यह हमारा पोषण करता रहा। यह कब से तुम्हारे पैरों मे पड़ा है।" इतना सुनते ही माता ने शीघ्रता पूर्वक लक्ष्मण को छाती से लगा लिया और बिलखती हुई बोली—"बेटा लक्ष्मण! मैं तुम्हें क्या आशीर्वाद दूँ। मैं सुनती हूँ भगवान् इस विश्व का भरण पोषण करते हैं किन्तु तुम भगवान् का भी भरण पोषण करने वाले हो इस सम्पूर्ण जगत को पृथ्वी ने धारण कर रखा है, उस पृथ्वी को भी धारण करने वाले तुम हो तुम्हें मैं क्या आशीर्वाद दूँ। बेटा! राम के ही समान ससार मे तुम्हारा चरित्र गाया जाय तुम राम के बिना न रह सको, राम तुम्हारे बिना न रहे। राम तुम्हारे रोम-रोम में रम जायँ, तुम राममय बन जाओ।" माता के इन हार्दिक आशीर्वादों को पाकर लक्ष्मण कृतार्थ हो गये। उन्होंने पुनः पुनः भगवती कौशल्या की चरण धूलि अपने मस्तक पर चढाई।

सबके स्वस्थ होकर बैठ जाने पर चीर वसन पहिने, हाथ जोड़े हुए कृश गात्र भरतजी खड़े हुए। वे नेत्रों से अश्रु बरसाते हुए गद्गद कंठ से बोले—"राघव ? मुझे अयोध्या का राज्य मेरे पिता ने नहीं दिया था। पिताजी तो मेरे पीछे ही परलोक प्रयाण कर गये थे। केवल माता को राज्य देने का अधिकार ही नहीं। मुझे आपने ही चित्रकूट मे अवध का राज्य दिया था। आपकी आज्ञा शिरोधार्य करके १४ वर्षों तक न्यास की भाँति मैंने इसकी

रक्षा की। चरणपादुकाओ को सिर पर रखकर उसके सम्मुख सब निवेदन करता रहा। अब आप आ गय है। अपनी धरोहर को सम्हालिय। प्रभो! मशक जैसे सुमेरु को नही सम्हाल सकता काक जसे हंस की चाल, नही चल सकता, उसी प्रकार मै इतने वडे राज्य का पालन नही कर सकता तथा इक्ष्वाकु, भरत भगीरथ ककुत्स्थ आदि अपने कुल क कीर्तिमान राजर्षियो के पथ का अनुसरण नही कर सकता। राज्य के अधिकारी तो आप हैं। इस भूमडल की तो बात ही क्या आप चराचर का पालन करने मे समर्थ है।'

भरतजी की बात सुनकर सभी परम प्रमुदित हुए। भरत के शील, स्वभाव, सदाचार की सभी भूरि भूरि प्रशसा करने लगे। माता कौशल्या न स्नेह भरी वाणी मे कहा— 'राम! मुझे तरी उतनी चिन्ता नही थी। मुझे तो रात दिन अपन बेटे भरत की ही चिन्ता लगी रहती थी। मै ता इसकी ओर देख भी नही सकती थी इसने जैसी तपस्या की वैसी तो कोई कर ही नही सकता। भैया! अब तुम इसकी इच्छा को पूर्ण करो। मै भरत को प्रसन्न देखना चाहती हूँ इन गत १४ वर्षो मे मैने भरत को कभी हँसते हुए नही देखा। तेरे वियोग मे सदा रोना ही रहा। इसके कारण हम सब तेरी चिन्ता भूल गये। भरत की ही चिन्ता हमे लगी रही। अब यह जो भी कहे, उसे बिना ननु नच के तू मान ले।''

माता के इन वचनो को सुनकर रुक रुक कर अवरुद्ध कठ से श्रीराम बोले—''माँ! भरत के सम्मुख अब में उसके सम्बन्ध में क्या कहूँ छोटो की उनके मुख पर प्रशसा करने से उनकी आयु क्षीण होती है, ऐसा 'शास्त्रों का मत है, किन्तु मै प्रशसा के लिये नही, यथार्थ बात कह रहा हूँ। भरत के समान भाई ससार में मिलना दुर्लभ है। मै भरत के ही कारण इतनी दूर से दौड

कर पुष्पक विमान से उड़कर—यहाँ आया हूँ। भरत जिस कार्य से भी प्रसन्न हों, उसे ही करने को तैयार हूँ।"

सूतजी कहते हैं— 'मुनियो ! श्रीरामचन्द्रजी की यह बात सुनकर सभी को अत्यन्त हर्ष हुआ भगवान् वशिष्ठ तथा अन्यान्य ज्योतिष विद्या के पारगत ब्राह्मण गण बुलाये गये। उसी समय रामराज्याभिषेक का मुहूर्त पूछा गया। सबने बताया शुभकार्य का हृदय का उत्साह देखकर शीघ्रातिशीघ्र कर लेना चाहिए। इसलिय कल ही शुभ मुहूर्त है, कल ही यह कार्य सम्पन्न हो।" देवज्ञो के मुख से यह बात सुनकर सब बड़े प्रसन्न हुए और राज्याभिषेक की तैयारियाँ करने लगे।"

छप्पय

राम मातु कृश गात निरखि बालक सम रोये।
सिकुड़े अति सुकुमार चरन अँसुअनि तैं धोये॥
सीय लखन प्रति प्यार कर्यो मो आशिष दीन्हीं।
तबहिँ सुअवसर पाइ भरत यह विनती कीन्हीं॥
राम सम्हारें राजकूँ, हम सब मिलि सेवा करहिँ।
पावें प्राणी परमपद, बिनु प्रयास सब भव तरहिँ॥

रामराज्याभिषेक

[६६०]

जटा निर्मुच्य विधिवत् कुलवृद्धैः समं गुरुः ।
अभ्यषिञ्चद् यथैवेन्द्रं चतुःसिन्धुजलादिभिः ॥*

(श्री भाग० ६ स्क० १० अ० ४६ श्लो)

छप्पय

भरत विनय सुनि सचिव सहित सब जन हरषाये ।
निरखि राम रुख तुरत पुरोहित विप्र बुलाये ॥
विधिवत् चौर कराइ वस्त्र आभूषन पहिने ।
सासुनि सीय न्हवाइ दिव्य पहिनाये गहने ॥
सप्तद्वीप अंकित करे, बाघम्बर पै विप्रगन ।
शुभ सिंहासन सजि गयो, आइ विराजे सुखसदन ॥

वृक्षों की सार्थकता फल-फूलों से है, स्त्रियों की सार्थकता पुत्रों से है, धन की सार्थकता दान से है, विद्या की सार्थकता विनय से है, औषधि की सार्थकता रोग-निवृत्ति से है, इसी प्रकार ज्येष्ठ युवराज की सार्थकता राज्याभिषेक है। राज्य का उत्तराधिकारी

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! रघुकुल के गुरु भगवान् वशिष्ठजी ने अन्य कुलवृद्धों के सहित भगवान् की जटाओं को उतरवाकर उनका चारों समुद्रों के जल से उसी प्रकार अभिषेक किया जिस प्रकार देव गुरु बृहस्पति शतक्रतु इन्द्र का अभिषेक करते हैं।"

तथा सुयोग्य होने पर भी जिस राजकुमार का राज्याभिषेक नहीं होता, जो छत्र चँवर धारण करके राज्यसिंहासन पर नही बैठता, वह उसी प्रकार है जैसे बडी आशा से फलवान् वृक्ष की सेवा करते रहने पर भी फल के समय उसकी कलियाँ गिर जायँ, फूल की पत्तियाँ नष्ट हो जायँ। वृक्ष से सबन्ध रखने वालो को जिस प्रकार उस वृक्ष के लिये दु.ख होता है, उसी प्रकार अयोध्यावासियो का श्रीरामचन्द्र के राज्याभिषेक टल जाने और बन जाने से हुआ था। जब श्रीरामचन्द्रजी १४ वर्ष के पश्चात् वन से लौटकर पुरी मे आ गये और सबको विश्वास हो गया कि अब उनका पुन. अवध के सिंहासन पर अभिषेक होगा, तो नर नारियो के हर्ष का ठिकाना नही रहा।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! देवी कौशल्या के भवन मे भरतजी न श्रीराम के राज्याभिषेक का प्रस्ताव किया। सभी पुरजन परिजन मन्त्री, अमात्य पुरोहित तथा वेदज्ञ ब्राह्मणो ने सहर्ष इस बात का अनुमोदन समर्थन किया। गुरुदेव तथा माताओं की आज्ञा से श्रीरामचन्द्रजी ने भी इसे स्वीकार कर लिया। श्रीरामचन्द्रजी ने साथ मे आये हुए भालु वानरो को यथास्थान टिकाया। विभीषणजी तथा सुग्रीव को स्नेह-वश भगवान् ने अपने भवन मे रहने की आज्ञा दी। भरत जी की आज्ञा से क्षौर कर्म मे अत्यन्त निपुण नापित बुलाये गये, जो इस काम मे परम चतुर थे, जिनके हाथ हलके थे, जो अत्यन्त ही सुखपूर्वक बाल बनाते थे। यहाँ तक कि वे बाल बनाते-बनाते बनवाने वाले को सुला देते थे। भगवान् की जटाय उतार कर सम्हाली गई। अन्य लोगो की भी दाढी मूछें तथा जटायें बनाई गई।

सुग्रीव की आज्ञा से अत्यन्त शीघ्र वायु के समान उडने वाले जाम्बवान्, हनुमान, वेगदर्शी तथा ऋषभ ये चार वानर चारो

दिशाओं के समुद्रों का जल लेने भेजे गये। ये चारों ही अपनी-अपनी दिशा के समुद्र से जल लेकर तुरन्त लौट आये। समस्त तीर्थों का जल तो भगवती सीता के कमण्डलु ही में था। विधि पूर्वक श्रीरामचन्द्रजी का महौषधि दिव्यौषधि समुद्र नदी, तीर्थ तथा अन्यान्य पवित्र जलों से स्नान कराया गया। पहिले वेद मन्त्रों से ऋत्विजों ने स्नान कराया। तदनतर अन्य वेदज्ञ ब्राह्मणों ने फिर कुमारी कन्याओं ने मन्त्रियों ने, सैनिकों ने तथा विविध जाति के मुख्य मुख्य गणनायकों ने श्रीराम का अभिषेक कराया। श्रीरामचन्द्रजी के स्नान के अन तर सभा ने स्नान किये। भरतजी ने श्रीराम लक्ष्मण के शृङ्गार कराये। वस्त्राभूषण पहिनाकर विविध भाँति की सुगन्धित मालायें पहिनाईं वशिष्ठ, विजय जाबालि कश्यप कात्यायन गौतम तथा वामदेव आदि बड़े बड़े ऋषि महर्षि वेद मन्त्र पढ़ रहे थे राज्याभिषेक के समस्त कार्यों को कर रहे थे। एक रत्न मय दिव्य पीठ पर सुवर्णमय रत्न-जटित दिव्य किरीट रखा गया यह वही किरीट था जिससे लोक पितामह ब्रह्माजी ने भगवान् मनु का अभिषेक किया था। तब से मनुवंश में जितने भी राजा होते आये थे सभी का राज्या भिषेक इसी किरीट के द्वारा होता था। भरतजी ने इस दिव्य किरीट को धारण नहीं किया। आज उसकी भगवान् वशिष्ठ ने ऋत्विजों और ब्राह्मणों के साथ विधिवत् पूजा की। फिर वह वेद मन्त्रों के साथ विविध भाँति के वाद्यों की तुमुल ध्वनि के बीच में कुलपुरोहित वशिष्ठजी ने श्रीरामचन्द्रजी के सिर पर पहिनाया उसे पहिन कर श्रीरामचन्द्रजी की अपार शोभा हुई। महाराज दशरथ की रानियों ने सीताजी का शृङ्गार किया था। आज वस्त्राभूषणों से सजी पति के पार्श्व में बैठी भगवती जानकी साक्षात् लक्ष्मी के समान प्रतीत होती थी।

सीता के सहित श्रीरामचन्द्रजी उस सुदर सिंहासन पर बैठ गये जिस पर बडा व्याघ्रचर्म बिछा था। उसके ऊपर सप्तद्वीपवती वसुमती का मान चित्र बनाया गया था। जो विविध भाँति के मणिमुक्ता तथा रत्नो से सजाया गया था। कुलपुरोहित के किरीट मुकुट पहिनाने के अनन्तर शत्रुघ्नजी सफेद छत्र लेकर उनके पीछे खडे हो गये। इधर-उधर दोनो पार्श्वो मे गगा यमुनी चँवर लेकर राक्षसराज विभीषण तथा वानर-राज सुग्रीव खडे हो गयेवायुदेव ने सुवर्ण की एक दिव्य माला स्वय लाकर रघुनन्दन के कंठ मे पहिनाई। उस समय देवता आकाश से पुष्पो की वर्षा कर रहे थे, गन्धर्व गीत गा रहे थे, अप्सरायें विविध भाँति के हाव-भाव कटाक्ष दिखाकर नृत्य कर रही थी। वीणा, पणव, शख, तूर्य, मृदग तथा अन्यान्य बाजे बज रहे थे। सर्वत्र जयघोष हो रहा था। आनन्द का सागर ही उमड रहा था।

भगवती सीता के कन्धे पर रखे, हाथ सिंहासनारूढ श्रीरामचन्द्रजी की उस समय की शोभा दर्शनीय थी। ससार मे उन्ही लोगो का जन्म सार्थक है, जिन्होने सिंहासनारूढ राम के दर्शन किये हैं। नेत्र उन्हीं के सफल हैं, जिन्होने सीता सहित श्रीराम को राज्याभिषेक के समय निहारा है। अहा! उस समय की झाँकी कैसी अद्भुत है। पाठक चित्त को एकाग्र करके मनोयोग के सहित उस दिव्य झाँकी का ध्यान करें। भगवान् के कारे-कारे घुंघराले सुगधित तैलादिक डालकर काढे गये बालो के ऊपर रघुवश का वश-परम्परागत प्राचीन मुकुट शोभा दे रहा है। उसमे लगे हुए मणिमाणिक्य झलमल-झलमल करके चमक रहे हैं कानों के कमनीय कुण्डल अपनी आभा से कपोलो की द्युति बढा रहे हैं। नासिका मेका बुलाक हिलने से झोटा खा रहा है। कठ मे गौर, विजयन, तगडी, मोतिया का हार, चन्द्रहार तथा आपाद

लंबिनी वनमाला शोभा दे रही है। नील वदन के ऊपर सुवर्ण के वर्ण को भी तिरस्कृत करने वाला पीताबर वायु के कारण फहरा रहा है। व्यजन और चमरों के हिलने से वह चंचल-सा प्रतीत होता है, उसमें से छन-छन कर श्रीरामतन की आभा दशों दिशाओं में छिटक रही है, बाहुओं में बाजू-बन्द शोभित हो रहे हैं। करों में कंकण और उँगलियो में अगुलीय सुशोभित हैं। कटि देश में पीताम्बर के ऊपर कर्धनी अत्यन्त ही भली मालूम पडती है। भगवान् की सुदर सुचिक्कण जंघायें पीताम्बर से ढकी हैं। चरणों में कड़े और नूपुर हैं। धनुषबाण धारण किये वाम हस्त को जगज्जननी जानकी अंगदेश में रखे हैं।

आज माता कौशल्या ने १४ वर्ष के पश्चात् अपनी प्यारी दुलारी बहू को स्वयं अपने हाथों स्नान कराके उसका शृङ्गार किया है। यद्यपि सुकुमारी सीता को स्त्रियों के पहिनने योग्य इतने आभूषण रुचिकर नही और वे इतने आभूषणों के भार सहन करने में समर्थ नही, फिर भी सास के सम्मुख कह ही क्या सकती थी। आज उन्हे सर्व-प्रथम ही तो पति के साथ राज-सिंहासन पर बैठना था। राजसिंहासन पर जो वस्त्राभूषण पहिन कर साम्राज्ञी बैठती होगी वे सब उन्हें आज विवश होकर पहिनने ही पड़ेंगे। महारानी कौशल्या जिन वस्त्र और आभूषणों को पहिन कर महाराज दशरथ के साथ सिंहासन पर बैठती थी वे सब ही स्वच्छ करके उन्होने अपनी पुत्र-वधू को पहिनाये थे। माता जानकी के चरण स्वयं ही प्रवाल के समान रक्तवर्ण के थे। उस पर महावर लगाया गया था, जिसमे चरणो की लालिमा मे महावर की लालिमा दब गई थी। उनके छोटे-छोटे गोल गोल मेहदी से रचे हुए चरणों के नख लाल मणि के समान चमक रहे थे। अँगूठे मे अनवट और दोनों उँगलियों में बजने बिछुए

शोभित हो रहे थे। छोटी उंगलियों में छल्ली और ऊपर में कमांड सुकड़-सी रही थी। प्रपद पर पर्णपान की लड़ियाँ इधर-उधर बिखर रही थी और पान के समान सुवर्ण के उन आभूषण से, उतार चढ़ाव के कारण चरण पराक्रम कभी-कभी वह खिसक जाता था। गुल्फ अथवा टखनों के ऊपर कड़े, छड़े, भाँझन, पाइल पाइजेब, रमझोल, रेशमपट्टी, अनोखे, छैलचूड़ी, लच्छे आदि आभूषण एक दूसरे को अपनी आभा से म्लान बना रहे थे। वंशपरम्परा से प्राप्त सैकड़ों गज के घूम घुमारे लहँगे को पहिनने में यद्यपि माता को कष्ट होता होगा, क्योंकि वे तो एक साड़ी पहिनकर वन-वन में घूमने वाली हैं। पर सम्राज्ञी होने का दंड भी तो भोगना ही है। इसलिये तपे हुए सुवर्ण के समान, चम्पाकी कली के समान शरीर पर लाल रंग का लहँगा अत्यंत ही खिल रहा था। उस पर सर्वत्र सुवर्ण का सच्चा कामहो रहा था। उसमें लगे हुए हीरे अँधेरे भवन को भी प्रकाशित कर देते थे। उसके ऊपर मेखला चमक रही थी। कौशल्या देवी ने जानकी जी को एक नीले रंग की चोली पहिनाकर उसके ऊपर नीले रंग का दूसरा वस्त्र पहिना दिया था जिसमें से सुवर्ण-बिन्दु दमदमा रहे थे। कंठ में हँमली हार हमेल, मोहन-माला, जौमाला, ठुसी चम्पाकली, पचलड़ी तथा चन्द्रहार आदि शोभा दे रहे थे। कमल की कलियों के समान करों की चिकनी सुकोमल पंकज पंखड़ियों के समान पतली-पतली उँगलियाँ आभूषणों से भरी रहने के कारण चित्र-विचित्र सुवर्ण कमल के समान प्रतीत होती थीं। अँगूठे की आरसी मणिमाणिक्यों की दीवालों पर अपना प्रतिबिम्ब जब डालती तो ऐसा प्रतीत होता था, मानो भीत से चन्द्र उदित हो रहा है। छोटे छोटे छल्लों से पतली पतली उँगलियाँ शोभित होने पर भी संकुचित-सी दिखाई देती थीं। कनी उँगली की अँगूठा

का नग अपनी किरणों को श्रीरामचन्द्रजी के आनन पर डाल रहा था जो मुकुट की मणियों में मिलकर इन्द्रधनुष की आभा को उदित कर रहा था। हथफूलों में लगी सुवर्ण की लड़ियाँ उँगलियों के छल्लों में उसी प्रकार मिल रही थीं जैसे नदियाँ गंगाजी में आकर मिलती है। जनकनन्दिनी की कोमल कलाई पर सुवर्ण गोलियों से बना हुआ गजरा उनके अङ्ग के रङ्ग में मिलकर फीका सा दिखाई देता था। गजरे के पश्चात् कड़े और कड़े के पश्चात् चार चूड़ियाँ चम-चम करती हुई चमक रही थीं। चार चूड़ियों के पश्चात् बंगली और फिर चार-चार चूड़ी। उन चमकदार चार-चार चूड़ियों के बीच में गोल गोल गिलकों की बनी बंगली ऐसी ही शोभित होती थी मानो चार-चार सखियों के बीच में सखियाँ बैठी हों। बंगली के आगे अप्सरावन्द तब कँगन और अन्त में इन सब आभूषणों को व्यवस्था में रखने के लिये माता कौशल्या ने दुए पहिना दिये थे। कोहनी पर घराया टड्डे पहिने हुए थे जिन्हें बीच बीच में सीताजी अपने कोमल करों से कभी-कभी खिसकाती जाती थीं। उनके ऊपर बाजूबंद चमक रहे थे। जिनकी गुठी में लटके नूपुर हाथ हिलाते ही छम्म-छम्म करके बज उठते थे ठोढ़ी पर चिपकाया गया हरा हीरा किरण की एक लम्बी लकीर बनाये हुए था। कपोलों पर सुन्दर पत्रावली बनाई गई थी नासिका में नकबेसर बुलाक हिल रहा था। अर्ध पतली जंजीर से बाँधकर कपोल की ओर इस प्रकार कस दी गई थी कि वह स्वयं तो हिलती नहीं थी पर उसमें के पड़े मोती निरंतर हिल रहे थे। कानों के कर्णफूल अपनी आभा से चुंदरी में ढके रहने पर भी स्पष्ट प्रतीत होते थे। बारी, बिचकनी, झुमके ये सभी कानों को कुछ नत किये हुए थे। भाल का तिलक और खौर दोनों ही युक्तिपूर्वक बाँधे गये थे। सिर में झूमर, चार दानों की

ओढनी से ढँके थे। पचरंगी महीन साडी मे से ये सब शिरोभूषण स्पष्ट तो दिखाई नही देते थे किन्तु अपनी आभा के कारण अपने अस्तित्त्व को प्रकट कर रहे थे उत्सुकता को बढा रहे थे। अङ्गो की शोभा उनके कारण नही बढी थी किन्तु अङ्गो के सौन्दर्य से वे ही सुन्दर बन गये थे।

जगज्जनी का एक कोमल कर भगवान् के श्री अङ्ग से सटा हुआ था। द्वितीय कर से वे क्रीडाकमल को घुमाती हुई ससारा पदार्थो की अनित्यता जता रही थी और जीवो को अपनी शरण मे आने का सकेत कर रही थी।

राज्याभिषेक हो चुका। विप्रो ने वेद घोष बन्द कर दिया अन्य बाजे भी बजने बद हो गये। राज्याभिषेक के उपलक्ष्य में अन्न, वस्त्र आभूषण, सुवर्णमुद्रायें हीरा-मोती मणिमणिक्य हाथी, घोडा, रथ तथा विविध वाहन, ब्राह्मणो, याचको और आश्रितो को दिये गये। उस समय जिसने जो माँगा, उसे वही वस्तु दी गई। भगवान् रामचन्द्रजी ने सूर्य-किरण के समान अत्यत चमकीली मणियो की बनी एक दिव्य सुवर्ण की माला स्वय अपने कर कमलो से उठाकर बानरराज सुग्रीव को दी। एक ऐसा दिव्य अङ्गद जिसमे वैदूर्य मणि जडी हुई थी और जो चन्द्रमा की किरणो के समान प्रतीत होता था। उसे उठाकर भगवान् ने अङ्गदजी के बाजू मे स्वय पहिना दिया। उस बाजूबन्द को पहिन कर अङ्गद की ऐसी ही शोभा हुई मानो पर्वत प्रान्त से चतुर्थी का चन्द्र उदित हुआ हो।

एक अत्यत मूल्यवान् हार लेकर श्रीरामचन्द्रजी ने जगज्जननी भगवती सीताजी का देकर कहा—"देवि, तुम इस हार को जिसे चाहो दे दो।"

लजाते हुए भगवती सीता ने कहा—"प्राणनाथ, मेरे तो सभी

पुत्र समान हैं। इस एक को मै किस-किस को दूँ।"

भगवान् ने कहा—"समान तो सब हैं ही, किन्तु गुणों के कारण, श्रद्धा-भक्ति के कारण, एक से पुत्र होने पर भी उनमे तारतम्य तो हो जाता है। जिसे तुम सबसे गुणी, सबसे अधिक भक्त समझती हो, उसे दे दो। सकोच मत करो।"

भगवान् की ऐसी बात सुनकर सभी को बडी उत्सुकता हुई। विभीषण चाहते थे माताजी इस उपहार को हमे दे। सुग्रीव उसे पाने को लालायित थे, अङ्गदजी को भी इच्छा थी। साराश, सभी की उस पर दृष्टि लगी थी। उन मणियो के लोभ से नहीं। सम्मान और स्नेह के कारण सब चाहते थे। वस्तु मे गुण नही होता, उसके द्वारा जो ख्याति और प्रसिद्धि होती है उसी का मूल्य है। इसीलिये तो कहावत है—"मान का पान भी भला।"

जनकनन्दिनी उस हार को लिए कुछ देर इधर-उधर देखती रही। उन्होंने देखा हनुमान् निर्निमेष दृष्टि से श्री राघव की ही ओर देख रहे हैं। उनके मन मे किसी प्रकार की स्पृहा ही नही। भगवती सीता ने सोचा—"इस हनुमान् मे तेज धैर्य, यश, दक्षता सामर्थ्य, विनय, नय, पौरुष विक्रम और बुद्धि ये दश गुण सदा विद्यमान रहते हैं। श्री रामचन्द्र जी ने गुणी और भक्त के लिये देने को कहा है। इनके गुण तो प्रसिद्ध ही है। इनकी भक्ति भी विश्व विख्यात है। फिर भी इनकी भक्ति का महत्व लोग समझें—इसलिए यह हार मैं इन्ही को दूँ।" ऐसा सोच-कर माता जी ने हनुमान् जी को बुलाया और हाथ बढाकर उन्हे वह हार दिया। भिक्षुक जैसे आदर से लेता है, वैसे ही बड़े सत्कार से माता जी का दिया हुआ वह हार हनुमान् जी ने ग्रहण किया। उस चन्द्र किरणों के समान उज्वल चन्द्रहार को पहिन कर हनुमान् जी उसी प्रकार शोभित हुए जैसे सुमेरु

स्वच्छ मेघ से शोभित होता है ।

उस हार को पहिन कर वे श्री रामचन्द्र जी के चरणों के निकट जा बैठे। हार बहुत चमक रहा। इसलिए उसकी एक मणि लेकर हनुमान् जी ने दाढ़ के नीचे दबाई और फट से उसके दो टुकड़े कर दिए। फिर उन दोनों टुकड़ों को बड़े ध्यान से देखते रहे। देखकर उन्हें फेंक दिया। फिर दूसरी तोड़ी और उसी प्रकार देखकर फेंक दिया। तीसरी ज्यों ही फिर तोड़ने लगे तो विभीषण जी से नहीं रहा गया। वे कड़क कर बोले—हनुमान् जी, लोग कहते हैं लोकोक्ति सत्य ही है, कि बन्दर क्या जाने अदरख का स्वाद। कैसा बहुमूल्य हार है इसकी कैसी दिव्य-दिव्य मणियाँ हैं। फिर जगज्जननी भगवती जननी का दिया हुआ उपहार है। तुम इस बहुमूल्य हार को ऐसे नष्ट क्यों कर रहे हो।"

हनुमान् जी ने सरलता से कहा—'भैया! मैं यही तो देख रहा हूँ कि माता जी ने अत्यन्त प्रसन्न होकर जो मुझे यह दिव्य माला दी है इसकी मणियों का मूल्य क्या है ?"

हँसकर विभीषण जी बोले—'मूल्य ऐसे देखा जाता है? तुम तो नष्ट कर रहे हो। इन्हें तोड़ ताड़ कर क्या देख रहे हो ?'

हनुमान जी ने कहा—'मैं यह देख रहा हूँ कि मेरे इष्ट श्री सीताराम जी की मधुर मूर्ति इन मणियों में है या नहीं। जिन वस्तुओं में सीताराम जी की मूर्ति नहीं वे सब दो कौड़ी की भी वस्तु नहीं।"

हँसकर व्यङ्ग के स्वर में विभीषण जी ने कहा—"इन मणियों में तो तुम अपने इष्ट की मूर्ति खोज रहे हो, और जो इस हाड़ मांस के इतने बड़े शरीर को लिए फिरते हो क्या इसमें

तुम्हारे इष्ट श्री सीताराम जी की मूर्ति खिच रही है क्या ?"

यह सुनते ही हनुमान् जी की आँखें लाल हो गई । वे बोले— 'राक्षस राज ! तुम मेरे ऊपर व्यङ्ग करते हो। जिस शरीर में श्रीराम की मूर्ति न हो मैं उसे एक क्षण भी नही रख सकता । देखो, मेरे भीतर राम की मूर्ति है या नहीं ।"

यह कहकर हनुमान् जी ने अपने बडे-बडे नखो से अपना हृदय फाड डाला। सभी ने देखा कि उनके रोम-रोम मे श्री-सीताराम की मूर्ति अकित है। उनके हृदय पटल पर प्रत्यक्ष श्री जानकी-जीवन धन का चित्र अकित है। सभी अनुपम भक्ति की प्रशसा करने लगे। सभी को उनका महत्व मालूम हो गया। सीतारामजी को यही तो इष्ट था। श्रीरामचन्द्रजी ने उन्हे हृदय से लगाया। भगवान् के स्पर्श मात्र से हनुमान जी का शरीर पुन ज्यो का त्यो हो गया।

सूतजी कहते है—' मुनियो ! इस प्रकार बडी ही धूम धाम से श्रीरामचन्द्रजी का राज्याभिषेक हुआ। श्रीराम के राजा होने पर देवता, यक्ष गन्धर्व, राक्षस, गुह्यक, विद्याधर, किंपुरुष, नाग, किन्नर, भूत प्रेत पिशाच मनुष्य पशु पक्षी, जड चेतन सभी प्रसन्न हुए। ब्राह्मणो को इतनी दक्षिणा मिली कि उठा न सके। इतनी गौओ का दान हुआ कि जिनकी गणना भी नही की जा सकती। याचक-अयाचक धन गये। दरिद्र धनी हो गये। रोगियो के रोग दूर हो गये। निर्बल सबल हो गये दुखी जीव सुखी हुए। साराश सभा के दुख दूर हो गये। सभी की चिन्तायें मिट गई । सभी निश्चिन्त होकर रामरूप का निरन्तर चिन्तन करने लगे। नदियो के जल स्वच्छ हो गये। ससार मे सुख शाति का साम्राज्य हो गया। बोल दे रामचन्द्रजी की जय।"

छप्पय

सीय सहित रघुनाथ राजसिंहासन राजें।
शोभा अमित अपार काम रति संग लखि लाजें॥
करि नख शिख शृङ्गार विराजें सिय निज पियसँग।
झाँकी करि नर नारि समावें नहिँ फूले अँग॥
गुरु वशिष्ठ मन्त्री सचिव, प्रजा सहित प्रमुदित भये।
धन आभूषन अश्व, गज, हय पट पुर विप्रनि दये॥

राजा राम

[६६१]

प्रजाः स्वधर्मनिरता वर्णाश्रमगुणान्विताः ।
जुगोप पितृवद् रामो मेनिरे पितरं च तम् ॥
त्रेतायां वर्तमानायां कालः कृतसमोऽभवत् ।
रामे राजनि धर्मज्ञे सर्वभूतसुखावहे ॥*

(श्री भाग० ९ स्क० १० अ०, ५१, ५२ श्लोक)

छप्पय

जब तें राजा राम भये सब सुख जग माहीं ।
आधि, व्याधि, भय, शोक जरा, दुख, श्रम कछु नाहीं ॥
जोते बोये बिना अवनि ओषधि देवे अब ।
वन, पर्वत, नद, नदी, द्वीप सागर सुखकर सब ॥
भये विटप सुर द्रुम सरिस, चिन्तामनि सम भूमिकन ।
भई अवनि पावन परम, परहिँ जहाँ रघुवर चरन ॥

---

*श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! राज्याभिषेक होने पर श्रीरामचन्द्र जी अपने धर्म में निरत वर्णाश्रमी समस्त प्रजा का पुत्र की भाँति पालन करने लगे और प्रजा के लोग भी उन्हें पिता की भाँति मानने लगे। यद्यपि उस समय त्रेता युग वर्तमान था, किन्तु रामराज्य के प्रभाव से त्रेतायुग सत्ययुग के समान हो गया।"

प्रजा का रजन करने से तथा स्वय अपनी कीर्ति द्वारा शोभित होने से नृपति अथवा भूपति को राजा कहा गया है राजा प्रजा के पाप पुण्य का प्रतीक है। जैसा राजा होगा वैसी ही प्रजा हो जायगी। कलि के आरम्भ म सदा राजाओ की नष्ट हो जाती है। वे साधारण मनुष्यो की भाँति परमुखापेक्षी बन जाते हैं। कलि की वृद्धि होन पर शनै शनै राजा नष्ट हो जाते हैं। जो अधिक वाकदूक कूटनीतिज्ञ तथा प्रपचीं होता है वही अधिपति बन जाता है। कुछ काल मे कोई, उससे भी बढ़ धूर्त आ जाता है। वह जन-मत की आड लेकर उसे हटा कर स्वय अधिनायक बन जाता है। इसमें धर्म भावना नही ग्राहकर्ता नही, परमार्थ का भय नही, कतव्य के प्रति निष्ठा नहीं केवल पद प्रतिष्ठा तथा विषयो की लोलुपता से यह सब होते हैं। प्राचीन काल मे तो जैसे माता को पुत्र के पालन पोषण करने का व्यसन होता है वैसे ही राजाओ को अपनी प्रजा के रजन का व्यसन होता था प्रजा की प्रसन्नता के निमित्त व सब करने को तत्पर रहते थे। प्रजा को सुखी बनाने के लिये सब बलिदान करने को उद्यत रहते थे। तभी तो राजा को नरेश नरपति, भूपति प्रजेश तथा पालक कहते थे। त्रिदेवो मे पालन करना विष्णु का कार्य है। इसीलिये सभी राजाओं हम विष्णु का अश मानते थे। भगवान् की भाँति उनकी प्रतिष्ठा करते थे, तथा उनके सुख के लिये सर्वस्व समर्पित क को उत्सुक रहते थे। प्रजा के ये भाव तो सर्वसाधारण र के प्रति थे। फिर जब साक्षात् परब्रह्म परमात्मा ही राजा कर अवनि पर अवतरित हो अपनी महालक्ष्मी के सहित ही सिंहासन पर विराजमान होकर प्रजा का रंजन करता तो, उसके न्याय, धर्म सदाचार तथा प्रभाव आदि के विषय

तो कहा ही क्या जा सकता है। राम-राज्य तथा राजाराम इन शब्दों में कितनी पवित्रता, कितनी लोकप्रियता कितनी धार्मिकता सन्निहित है। इसे राम विमुख प्राणी कभी अनुभव कर ही नहीं सकते। ये शब्द अपने अर्थों को पूर्णतया प्रकट करने मे सर्वथा असमर्थ है। इनका भाव तो भावना से ही अनुभव किया जा सकता है।

सूतजी कहते है—"मुनियो! जब से वन से लौटकर मनुवंश राजसिंहासन पर राजाधिराज महाराज अवधकुल-मंडन कौशल्यानन्दवर्धन भरताग्रज जानकी-जीवन श्री रामचन्द्र जी सीता सहित विराजमान हुए, तब से सर्वत्र आनन्द ही आनन्द छा गया। प्रजा के सभी लोग सुखी हुए। किसी को न शारीरिक पीड़ा होती थी, न मानसिक। क्योंकि सभी पीडाओं को हरने वाले प्रणत वत्सल श्रीराम उनके राजा थे। जैसे चोरों को चाँदनी रात्रि प्रिय नहीं वैसे ही दम्भी धर्महीन दस्युओं को रामराज्य प्रिय नहीं था। क्योंकि राम के राज्य में दम्भियों की दाल नहीं गलती थी। राम-राज्य मे चोरों के दर्शन दुर्लभ थे। कोई किसी की वस्तु को मन से भी उठाने का संकल्प नहीं करता था। मनुष्यों की तो बात ही क्या, वायुदेव भी किसी वस्तु को अस्त-व्यस्त नहीं कर सकते थे। मनुष्य छिप कर अधर्म करता है, किन्तु सब लोग राम की सत्ता सभी सर्वत्र सर्वदा सत्य भाव से स्वीकार करते थे। इसीलिये रामराज्य में सभी धार्मिक थे। सभी वर्णाश्रम धर्म में निरत होकर अपने अपने अधिकार के अनुसार श्रद्धासहित कर्म करते थे। पिता जैसे पुत्रों का प्रेम पूर्वक पालन पोषण करते हैं, उसी प्रकार सुपुत्र की भाँति श्री रामचन्द्र जी समस्त प्रजा का पालन करते थे। सब के वे पालक थे, प्रभु थे, स्वामी थे, सखा थे सुहृद थे। कहाँ तक कहें वे

सर्वस्व थे। समस्त प्रजा भी पिता की भाँति प्रभु से प्यार करती थी। उस समय जडो ने जडता छोड दी। वे चैतन्यो की भाँति आचरण करने लगे। वनो मे यथेष्ट कन्द, मूल फल स्वत ही होते थे। उन स्वेच्छा से उत्पन्न होने वाले स्वभाविक पदार्थो को खाकर ऋषि मुनि अपने जीवन को सुखपूर्वक बिताते तथा निश्शक होकर भजन पूजन करते। नदियाँ अमृतोपम जल को बहाती, सभी को सुख पहुँचाती-दुग्ध की धारायें प्रकट करती। पर्वत अपनी कन्दराओ मे नाना प्रकार के मणिमुक्ता उत्पन्न करते, अपने वृक्षा को पल्लवित पुष्पित तथा फलवान् रखते। प्रपात तथा स्रोत स्वच्छ, सुन्दर स्वादिष्ट सलिल बहाते। स्थान स्थान पर सोने चांदी की खाने निकलती। वृक्ष इच्छित पदार्थों को देते। सकल्प मात्र से वे वस्त्र आभूपण तथा भोज्य पदार्थो को प्रदान करते। वसुन्धरा के सातो द्वीप सुखी थे। उन द्वीपो मे रहने वाली प्रजा परम सन्तुष्ट थी। सभी द्वीपो के सभी वर्ष समृद्धशाली तथा उन्नत थे। कभी किसी को ज्वर, श्लेष्मा तथा अन्यान्य शारीरिक रोग नही होते। मानसिक चिन्ता करने का तो कोई काम ही नही था।

प्राणियो को सबसे अधिक दुखदायी वृद्धावस्था है वृद्धावस्था मे सभी इन्द्रियाँ शिथिल हो जाती हैं भोग की इच्छा तो प्रबल हो जाती है। किन्तु भोग्य वस्तुओ के भोगने की शक्ति क्षीण हो जाती है। जीवन की आशा बलवती बन जाती है। इसलिये वृद्धावस्था प्राणियो के लिये कष्ट कर है। राम-राज्य मे कभी कोई वृद्ध होता ही नही था। सभी सदा युवावस्था सम्पन्न बने रहते थे जब तक चाहते तब तक पृथ्वी पर रह कर भी दिव्य भोगो को भागते। जब इच्छा होती यहाँ, से स्वर्ग को चले जाते। विना इच्छा के कभी किसी की मृत्यु होती ही नही थी।

सभी इच्छानुसार जीते थे। सभी वस्तुएँ सुन्दर सुखकर थी। सभी सब से स्नेह करते थे। इसलिये किसी के मन मे किसी वस्तु के प्रति कभी ग्लानि की भावना उदित नही होती थी। दुख का तो केवल पुस्तको मे ही अस्तित्व था। उस समय कोई जानता ही नही था दु ख क्या वस्त होती है।'

प्राणियो को मृत्यु पर शोक सन्ताप होता है। राम-राज्य मे तो कोई मरता ही नही था। सभी देवताओ की भाँति अमर से थे। जब मृत्यु ही नही तब शोक सन्ताप का क्या काम। इसलिये कोई कही शोक मग्न दिखाई नहीं देता था। जब परस्पर मे किसी का किसी से द्वेष होता है या लोभ बढ जाता है तो उसे दूसरे से भय हो जाता है। राम-राज्य मे तो सभी एक दूसरे को अपना सगा, सम्बन्धी सुहृद समझते थे। जब सब अपने ही हैं, दूसरा कोई है ही नही, तो फिर भय किससे हो, द्वैधीभाव मे भय होता है एकत्व मे अद्वैत मे—भय कहाँ राजा राम की प्रजा के समस्त प्राणी निर्भय थे। लोभ, अविश्वास तथा मिथ्या मान मर्यादा के लिये प्राणी प्राणो का पण लगाकर परिश्रम करता है, उससे उसे श्रम होता है, श्रम से स्वेद बिन्दु निकलते हैं, देह मे पीडा होती है, चित्त उदासीन होता है, राम-राज्य मे श्रम का अभाव था। सभी पत्नियाँ पतियो से प्रेम करती। कोई किसी भी दशा मे परपुरुष की मन से इच्छा न करती। पुरुष अपनी ही पत्नियो से सन्तुष्ट रहते। रामराज्य मे चोरी जारी केवल शब्द ही शेष थे व्यवहार मे इनका अभाव था।

राजाधिराज श्री रामचन्द्र जी स्वय ही पवित्र चरित्र वाले थे। वे राजर्षियो के समान आचरण करने वाले एक पत्निव्रत धारी थे। वे जो कहते थे, उसका आचरण स्वय करते थे।

केवल पर-उपदेश-कुशल ही नहीं थे। ऐसी ही उनकी अर्धांगिनी नित्य शक्ति जगज्जननी जानकी जी भी थीं। वे पति के भावों को, उनकी चेष्टाओं और इंगितों को भली भाँति समझती थीं। श्रीराम के विरुद्ध आचरण वे स्वप्न में भी नहीं करती थीं। वे विनय से सदा अवनत रहतीं। अपनी माता पृथ्वी की भाँति वे सहनशील और क्षमावती थीं। सती-शिरोमणि सीता जी अपने सुन्दर स्वभाव, सराहनीय शील, अनुपम प्रेम और अकथनीय सेवा के द्वारा पति को सदा प्रसन्न रखतीं। उन्होंने अपने मन्द मन्द लज्जायुक्त स्मित हास्य द्वारा श्री रामचन्द्र जी के चित्त को चुरा लिया था।

लक्ष्मण जी एक साधारण सेवक की भाँति सदा सेवा में सलग्न बने रहते। वे अपने शारीरिक सुखों को भूल कर सदा राम की आज्ञा में तत्पर रहते। श्रीराम उनके द्वारा प्रजाओं के सभी दुखों को दूर कराते रहते। भरत जी तो विनय के अवतार ही थे। शत्रुघ्न के सहित वे राम के मुख को देखते रहते। श्रीराम की इच्छा को वे बिना कहे ही जान लेते।

सारांश यह है कि घर में बाहर नगर में, राज्य में, सर्वत्र सुख ही सुख था। कोई किसी से द्वेष नहीं करता, सभी हिल मिल कर रहते। गौएँ यथेष्ट दूध देतीं, बैल पुष्ट होते। ब्राह्मण सब सयमी तथा वेदपाठी होते, क्षत्रिय शूर वीरता में प्रसिद्धि प्राप्त करते वैश्य सदा सत्यता से व्यापार करके उस धन को दान धर्म में लगाते। सभी नगर के सुन्दर होते, सभी सदा शृंगार किये सजे सजाये बाहर निकलते और सुन्दर उपवनों में स्त्रियों के सहित विहार करते। वृक्षों की जड़ें दृढ़ होतीं। वृक्ष फूलते फलते रहते जिस समय जो चाहो वही फल ले लो। सब फल खाने में स्वादिष्ट-मधुर तथा अमृतोपम होते। पृथ्वी बिना

जोते बोये अन्न देती। जल सर्वत्र मधुर होते, सूर्य की किरणें कभी तीक्ष्ण नही होती वे सदा सुखकर ही प्रतीत होती। वायु सदा मन्द-मन्द सुन्दर सुगन्धियो को लिये हुए सब ऋतुओ मे अनुकूल बहती। आकाश मे ताराग्रह सभी अनुकूल और शुभ ही विचरण करते। उस समय सभी सुलक्षण थे, सभी सुन्दर थे, सभी सुखी थे, सभी सज्जन थे।

सूतजी कहते है—मुनियो। रामराज्य के विषय मे जो भी कुछ कहा जाय थोडा है। जब साक्षात् राम ही राजा थे तब तो सुख की सीमा नापी नही जा सकती। असीम सुख था अनुपम आनन्द था। इसी प्रकार दश सहस्र वर्षो तक राजाराम ने राज्य किया।

छप्पय

क्षमा दया विश्वास शील-तप-संयम शम दम।
ब्रह्मचर्य नय विनय राम महँ राज ऋषिनि सम॥
भरत शत्रुहन लखन सदा सेवा महँ तत्पर।
रहे प्रजा सब सुखी करे नहिँ कोई मत्सर॥
हरहिँ चित्त रघुनाथ को, नारी सुलभ विलास तेँ।
सती सिरोमनि जानकी, विनय हास परिहास तेँ॥

यज्ञकर्ता भोक्ता श्रीराम

[६६२]

भगवानात्मनाऽऽत्मानं राम उत्तमकल्पकैः ।
सर्वदेवमयं देवमीज आचार्यवान् मखैः ॥*
(श्री भा० ६ स्क० ११ अ० १ श्लोक)

छप्पय

रामराजमहँ परम मुदित जड़ चेतन प्रानी।
लखि तृन तोरें मातु राम राजा सिय रानी ॥
लौकिक गति दरसाइ राम ने यज्ञ रचाये।
वेदविज्ञ आचार्य, विप्र, ऋषि मुनि बुलवाये ॥
उत्तम सामग्री सहित, सहस यज्ञ रघुपति करे।
सरबसु दीन्हों दानमहँ, धन रत्ननि द्विज घर भरे ॥

श्री भगवान् जब जैसा रूप बनाते हैं, तब तैसी ही लीला करते है। जब वे देवशरीर में अवतरित होते है तो देवताओ के से कार्य करते हैं और मनुष्यशरीर मे मनुष्यो जैसे। पशु-पक्षी किसी भी शरीर को धारण क्यो न करें, उसी शरीर के अनुरूप

---

* श्री शुकदेव जी कहते हैं—"राजन ! सर्वदेवमय तथा प्रकाश स्वरूप भगवान् श्री रामचन्द्र जी ने अपने आचार्य भगवान् वशिष्ठ के अधीन होकर उत्तम कल्पो वाले यज्ञो द्वारा स्वयं अपना ही यजन किया अर्थात् अपने आप अपनी ही यज्ञरूप से पूजा की ॥

आचरण करते हैं। फिर भी उनकी भगवत्ता छिपी नहीं रहती। अपने लोकोत्तर आलौकिक कार्यों से वे प्रकट हो ही जाते हैं। जिस शरीर को भी धारण करते हैं उसमे एक आदर्श उपस्थित कर देते हैं। भूपवेष मे अवतरित होकर भगवान् ने राजाओ के लिये एक आदर्श उपस्थित कर दिया कि राज्यकाज करते हुए लोक रजन कैसे करन चाहिये। धर्म की मर्यादा को बनाये रखने के लिये कैसे-कैसे प्रयत्न करने चाहिये।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! श्रीराम के राजा होने से समस्त भूमण्डल पर शान्ति का साम्राज्य छा गया। सभी चराचर प्राणी सुखी हुए। श्री रामचन्द्र जी कर्तव्य बुद्धि से समस्त राज्य के कार्यों को देखते। वे धर्मानुकूल काम भी उपभोग करते और धर्मानुसार अर्थ भी सचय करते। रामराज्य मे मोक्ष तो अत्यन्त सुलभ था। भगवान् अपने सरस प्रेम युक्त व्यवहार से जानकी जी को सदा प्रसन्न रखते। उनके साथ सुख पूर्वक आनन्द-विहार करते।

एक दिन भगवान् राज सभा मे विराजमान थे। समीप सुवण के उस सिहासन पर कुल गुरु भगवान् विराजमान थे। भरत, लखन तथा शत्रुघ्न सेवा मे समुपस्थित थे। सुग्रीव हनुमान् विभीषण तथा अगदादि श्रेष्ठ वानर मनुष्यरूप रखकर रघुनाथ जी की उपासना कर रहे थे, कि उस समय प्रहरी ने हाथ जोड कर, मस्तक झुका कर निवेदन किया— 'प्रभो! बाहर द्वार पर भगवान् अगस्त्य को आगे करके विश्वामित्र, यवक्रीत, गाव्य, मालव, कण्व, आत्रेय अत्रि, सुमुख, धौम्य, कौशेय, कश्यप, जमदग्नि तथा भरद्वाज आदि बहुत से राजर्षि द्वार पर रघुनन्दन के दर्शनो के लिये खडे है। उनके लिये क्या आज्ञा होती है।'

एक साथ महर्षियो का आगमन सुनकर रघुकुल-तिलक श्री-

रामजी के हर्ष का ठिकाना नही रहा। शीघ्रता के साथ सिंहा सन से उतर पडे और पुरोहित तथा वेदज्ञ विप्रो को आगे करे ऋषियो के स्वागत के लिये द्वार पर आये। द्वार पर आ भगवान् ने यथायोग्य सब मुनियों की पूजन की। अर्घ्य दक गोदान करके सत्कार पूर्वक उन्हे राज सभा मे लाये। सभी के बैठने को सुन्दर-सुन्दर आसन दिये गये। जब सभी सुख पूर्वक सुन्दर आसनो पर बैठ गये तब श्री राम ने अत्यन्त ही मधुर वाणी मे पूछा—'मुनियो! आप का तप निर्विघ्न होता है न? आप के यज्ञ की अग्नि सावधानी से सुरक्षित तो है? आपके आश्रम के खग मृग, वृक्ष तथा शिष्य प्रशिष्य सुखपूर्वक तो हैं न? आज आपने अपने देव दुर्लभ दर्शन देकर मुझ दीन-हीन को कृतार्थ कर दिया। ऋषियो! एक ही साधु के दर्शनों से सभी पाप कट जाते हैं, सो आप तो समस्त विश्व के वन्दनीय इतने-इतने बडे ब्रह्मर्षि और राजर्षि एक साथ ही मुझे दर्शन देने पधारे हैं। आज मेरा जन्म सफल हुआ। मेरे पितर तर गये मेरे जप, तप, अग्नि होत्र तथा अन्यान्य धर्मकार्यो की सार्थकता आज ही हुई। कृपा करके मेरे उद्धार का उपाय आप बतावें।"

यह सुनकर महामुनि अगस्त बोले—"रघुनन्दन! आप तो जगदुद्धारक है। आप तो साक्षात् नारायण हैं, ये आपकी बगल मे बैठी हुई भगवती जानकी जगदम्बा लक्ष्मी हैं। आप तो हम सब का कृतार्थ करने के निमित्त ही अवनि पर अवतरित हुए हैं। प्रभो! हम सब ऋषियो को रावण तथा अन्यान्य राक्षसों के कारण अत्यन्त ही क्लेश था। रावण कुम्भकर्ण तथा उसके अन्यान्य वीर राक्षसो को मारकर आपने बडा पुण्य कार्य किया। समस्त भूमण्डल का भार आपने उतार दिया। हमारे तप को निष्कटक बना दिया। लक्ष्मण जी ने इन्द्र जीत को मार

कर बड़ा ही अद्भुत कार्य किया। रावण कुम्भकर्ण का मारना बहुत महत्व का नही है। इन्द्रजीत को मारना अत्यन्त कठिन था। उसे कोई मार ही नही सकता था। आपके छोटे भाई लक्ष्मण ने अत्यन्त ही प्रशसनीय कार्य किया। इसके लिये हम सुमित्रानन्दवर्धन लक्ष्मण को कोटि-कोटि धन्यवाद देते है और उनकी भूरि भूरि प्रशसा करते हैं।'

श्री रामचन्द्र जी ने कहा—'भगवन् आप रावण कुम्भकर्ण को छोडकर इन्द्रजीत की ही इतनी प्रशसा क्यो करते हैं ? उसमे ऐसी क्या विशेषता थी ?''

इस पर अगस्त्य जी बोले—"राघव, रावणपुत्र मेघनाद का वल, ऐसा ही था। प्रभो, वह वरदान प्राप्त राक्षस अवध्य था। रावण जब स्वर्ग मे इन्द्र से युद्ध करने गया था तब इन्द्र ने रावण को हरा दिया था। उस समय पराजित रावण श्रीहीन और अत्यन्त घबराया हुआ प्रतीत होता था। तत्काल ही मेघनाद ने जाकर इन्द्र को परास्त किया अपने पिता को उसने देवराज के पजे से छुडाया और इन्द्र को वन्दी बनाकर लका मे ले आया। उसी समय ब्रह्मा जी ने लका मैं जाकर मेघनाद को "इन्द्रजित" की उपाधि दी और उसे युद्ध के उपयुक्त जय होम कर लेने पर अपराजित होने का वरदान भी दिया। इसी से उसका मारा जाना अत्यन्त असम्भव था। वह ऐसा मायावी था कि वह युद्ध मे सब को देखता था पर उस कोई भी नही देख सकता था। लक्ष्मण ने अपने तप तेज और आपके आशीर्वाद से उसे मारकर ससार का बडा भारी कल्याण किया। अब आप निष्कटक राज्य करें और समस्त प्राणियो का अपने त्रैलोक्य-पावन दर्शनो से कृतार्थ करें।"

श्री रामचन्द्र जी न कहा—'ब्राह्मन्। मेरे कुल मे 'सदा

ब्राह्मणो की पूजा होती आई है। रावण कैसा भी क्यों नहीं था तो भी ब्राह्मण ही था। उसके मारने से मुझे पाप तो लगा ही है। इसके प्रायश्चित का आप कोई उपाय बतावें।"

हँसकर अगस्त मुनि ने कहा—"राघव आप का नाम ही समस्त पापो का क्षय करने मे समर्थ है। फिर भला आपको पाप कैसे लग सकता है। आप तो लोकवत् लीला कर रहे हैं। जनता का उद्वेग पहुँचाने वाले प्राणियो को पीडा देने वाला पापी कोई भी क्यो न हो, उसे मारने मे पाप नही, परम पुण्य है। फिर भी आप लोकसंग्रह के लिये कुछ करना ही चाहते है तो अश्वमेध द्वारा आप अपना ही पूजन करें। विधिवत् किया हुआ अश्वमेधयज्ञ चराचर के वध के पाप को भी नाश करने मे समर्थ है, फिर इस पापात्मा के वध की तो बात ही क्या है।"

यह सुनकर श्रीराम जी ने उन सभी ऋषियो को अपने यज्ञ के लिये वरण किया। सीताजी के सहित भगवान् ने यज्ञ की दीक्षा ली मृग का शृंग हाथ मे लेकर सीता सहित यज्ञ में दीक्षित भगवान् साक्षात् तप के ही समान प्रतीत होते थे। विधि पूर्वक यज्ञीय घोडा छोडा गया। शत्रुघ्न उसकी रक्षा के लिये चतुरगिनी सेना लकर पीछे-पीछे चले। स्वच्छन्द गति से घोडा सम्पूर्ण पृथ्वी पर पर्यटन करने लगा। श्रीराम के यज्ञ का घोडा है, इस बात को सुनकर किसी का भी उस घोडे को पकडने का साहस नही हुआ जिन्होने उस घोडे को पकडा भी उसके साथ शत्रुघ्न जी ने युद्ध किया और उससे घोडा छुडा कर पूजा लेकर आगे बढे। इस प्रकार घोडा सम्पूर्ण भूमण्डल पर घूमकर पुन. अवधपुरी मे आ गया।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो, इस प्रकार यज्ञ याग करके श्री रामचन्द्र जी ने वैदिक वर्णाश्रम धर्म की पृथ्वी पर स्थापना की

भौर आगे के राजाओं के लिये मर्यादा बांध दी। श्री रामचन्द्र जी ने दान धर्म तथा यज्ञ यागों का एक अपूर्व आदर्श उपस्थित किया।"

छप्पय

ह्वैके अति सन्तुष्ट द्विजनि आशिष मिलि दीन्हीं।
इष्ट देव सम राम सबनि की पूजा कीन्हीं॥
यों महत्व तप योग यज्ञ को राम जतायो।
गृही धर्म करि स्वयं लोक कूँ पाठ पढ़ायो॥
श्रेष्ठ करें जिहि कर्म कूँ, अनुवर्तन सब नर करें।
जावें जा पथ महत् जन, तिहि पथ सब रज सिर धरें॥

सर्वस्वदानी राम

(६६३)

नमो ब्रह्मण्यदेवाय रामायाकुण्ठमेधसे।
उत्तमश्लोकधुर्याय न्यस्तदण्डार्पिताङ्घ्रये ॥*

(श्रीभा० ६ स्क० ११ अ० ७ श्लो०)

छप्पय

भूमि दान सब करी कोष धन धान लुटाये।
चारिहुँ दिशि दै दई दान करि परम सिहाये॥
विप्र वासना हीन परा विद्या जे जानें।
दानपान तें श्रेष्ठ राम यह मनमहँ मानें॥
त्याग प्रेम, अरु दाम लखि, गद्‌गद ह्वै के विप्रगन।
राजपाट लौटाइ के, प्रेम सहित बोले बचन॥

दान धर्म का अग है। दान और दक्षिणा दोनो मे प्रधान कारण श्रद्धा है। श्रद्धाहीन होकर कोई भी काम क्यो न करो, वह निष्फल ही होगा। श्रद्धा प्रेम के बिना चाहे कोई कितनी ही

---

* भगवान् की ब्रह्मण्यता से सन्तुष्ट विप्रगण कह रहे हैं—'हे, प्रभो आप ब्राह्मणो को ही देवता मानने वाले हैं, आप सब मे रमण करने वाले हैं। आपकी बुद्धि अकुण्ठित है आप पुण्यश्लोकशिरोमणि हैं। आपने अपने चरण कमलो को त्यागियो के लिये अर्पित कर रखा है, आपको नमस्कार है।"

स्तु दे दे, अमृत तक पिला दे सब व्यर्थ है, सब निष्फल है। न्तु मानपूर्वक चाहें पान ही क्यों न दिया, श्रद्धा के साथ जो ी कुछ दिया जाय, राम उसे बहुत मान लेते हैं। राम बड़े दार हैं। जिस पर प्रसन्न हो जायँ उसे स्वर्ग अपवर्ग यहाँ तक कि अपने आपे को भी वे देते हैं। राम दानियों में श्रेष्ठ हैं। जो भी देते हैं प्रेम सहित देते हैं। उनके यहाँ दुराव नहीं, म्भ नहीं, कपट नहीं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! श्री रामचन्द्र जी के यज्ञ का घोड़ा दशों दिशाओं में घूमकर पुनः अयोध्या पुरी में आ गया। दुग्ध वर्ण के समान उस शुभ्र अश्व को देख कर सभी प्रमुदित हुए, सभी ने उसका स्वागत सत्कार किया। वसिष्ठ जी ने श्री रामचन्द्र जी से कहा—"राघव अश्व को स्नान कराने के लिये, सरयू जी से पवित्र जल लाओ। अपने सगे सम्बन्धियों के सहित वेदमन्त्र से अभिमन्त्रित सरयू जल को आप सीता सहित स्वय जाकर लावें।"

गुरु की आज्ञा पाकर सीताजी सहित श्रीरामचन्द्र सुवर्ण का कलश लेकर स्वयं ब्राह्मणों से घिरकर उनके पीछे ६४ अन्य नृपति गण अपनी पत्नियों सहित चल रहे थे। सरयू जी में पहुँचकर ब्राह्मणों की आज्ञा से वेदमन्त्रों के सहित पवित्र जल घड़ों में भरा गया। उसे बड़ी धूमधाम के सहित लेकर श्री रामचन्द्र यज्ञ स्थल में पधारे। वहाँ आकर उन्होंने वेद की विधि से यज्ञीय अश्व को स्नान कराया। श्री रामचन्द्र जी ने विनय की कि—"हे अश्व तुम मुझे पवित्र करो।" इसे सुनकर सभी ऋषि मुनि परस्पर कहने लगे—"देखो, श्रीराम कैसा नरनाट्य कर रहे हैं। जिनका सुमधुर परम पावन नाम त्रैलोक्य को पावन करने वाला है उन्हें भला यज्ञीय पशु क्या पावन करेगा। फिर

भी मर्यादा पुरुषोत्तम प्राकृत पुरुषो की भाँति व्यवहार क
रहे हैं।

ऋषि महर्षि परस्पर मे ऐसी बातें कर ही रहे थे कि भगवा
के करकमल का स्पर्श पाते ही अश्व, पशुयोनि को त्याग
स्वर्गीय दिव्य पुरुष बन गया। श्री रामचन्द्र जी ने सभी
सम्मुख उसका वृत्त पूछा—तुम पशु से दिव्य पुरुष क्यो हुए ?"

उस दिव्य पुरुष ने कहा—"प्रभो, आप तो सर्वज्ञ हैं, सबके
घट-घट को जानने वाले हैं। फिर भी आप लोकदृष्टि से मुझ
अनजान की भाँति प्रश्न कर रहे हैं तो मैं आपकी आज्ञा से
आपके प्रश्न का उत्तर देता हूँ। प्रभो, पूर्वकाल मे मैं सरयू पा
रहने वाला बड़ा दम्भी विप्र था। दूसरो को ठगने को मौन धा
रखता, भाँति-भाँति के ढोग रचता। एक दिन दुर्वाशा मुनि ने
मुझे शाप दिया—"तू पशु हो जायगा। जब मैंने बहुत अनुन
विनय की। तब उन्होंने कहा—"अच्छी बात है, पशु तो तू होग
ही, किन्तु श्री रामचन्द्र जी के करकमलो के स्पर्श होते ही त
संसार बन्धन से विमुक्त हो जायगा। आज मुनि का वह शाप
वरदान के तुल्य हुआ। मेरे सब बन्धन कट गये। मैं संसार से
विमुक्त हो गया।

यज्ञीय, हय की ऐसी बातें सुन कर सभी परम विस्मित हुए।
तदन्तर भगवान् ने यज्ञ मे पधारे हुए देवताओ को उनका भाग
दिया। ब्राह्मणों को दक्षिणायें दी। उन्होंने यज्ञ मे होता का
काम करने वाले ब्राह्मण को पूर्व दिशा का राज्य दे दिया।
ब्रह्मा का कार्य करने वाले को दक्षिण दिशा का, अध्वर्यु का कृत्य
कराने वालो को पश्चिम दिशा का और उद्गाता का कृत्य
कराने वाले को उत्तर दिशा का राज्य अर्पण कर दिया।
चारो दिशाओ की मध्य की जितनी भूमि शेष थी, वह

यज्ञ मे आचार्य का काम कराने वाले भगवान् अगस्त्य को दे डाली । भूमि देने के अनन्तर उन्होने अपने कोपाध्यक्ष को बुलाया और पूछा—"तुम्हारे कोष मे कितना धन है ?"

हाथ जोडकर कोषाध्यक्ष ने कहा—"प्रभो ! कोष तो अनन्त है, उसकी गणना नही ।"

तब भगवान् बोले—"अच्छी बात है, कोषागार को खोल दो और सब को मुँह माँगा इच्छित धन दो जब तक कोष खाली न हो तब तक देते ही रहो ।

भगवान् की आज्ञा पालन की गई और सम्पूर्ण कोष का धन लुटा दिया गया । भगवान् ने अपने तथा सीता जी के शरीर के आभूषण भी दिये । केवल अपने राज चिह्न और सीता जी के सुहाग के चिह्न ही अवशेष रह गये ।

भगवान् की ऐसी ब्रह्मण्यता देख कर ब्राह्मण गद्गद हो गये उन्होने प्रेमार्द्र हृदय से स्नेह प्रकट करते हुए कहा—"हे ब्राह्मण देव आपकी प्रशसा हम किन शब्दो से कर सकते हैं। हे सर्व लोकेश्वर भगवान् आप ने हमे क्या नही दिया। यह धन रत्न तो साधारण वस्तुएँ हैं । आप तो हमारे अन्त.करण मे विराज कर हमारे अज्ञानान्धकार को दूर करते हैं। प्रभो हम तो अरण्य मे रहने वाले मुनि है । पृथ्वी पालन रूपी कार्य तो क्षत्रिय ही कर सकते हैं । हमारे वश की यह बात नही है । आपकी प्रसन्नता के लिये हमने भूमि की दक्षिणा स्वीकार कर ली है । अब हम प्रसाद रूप से आपको देते हैं। इस पृथ्वी को हमारी दी हुई समझ कर आप इसका पालन करें ।

भगवान् ने कहा—विप्रो ! दान दी हुई वस्तु को फिर लेना बडा दोष है, अतः अब, आप ही इस पृथ्वी के राज्य का उपभोग करें ।

इस पर ब्राह्मणो ने कहा—"हे लोकनाथ, दान दी हुई वस्तु को निष्क देकर क्रय किया जा सकता है। आप हमे कुश, मृगचर्म समिधा और अन्न देकर इस भूमि को ले लें। क्योंकि दान वही सार्थक है जिसकी पाने वाले को आवश्यकता होती है। हम भूमि लेकर क्या करेंगे। समिधा, अन्न तथा कुशाओं से तो हम अपने यज्ञ के कार्यों को पूर्ण करेंगे। इन जटाओं के ऊपर राज मुकुट क्या शोभा देगा। हमारा राज्य होने से लोक मे अराजकता फैल जायगी। इसलिये इस दान से पुण्य न होकर, दोष ही लगेगा। इसलिये भूमि का पालन आप ही करें।

ब्राह्मणो की ऐसी बातें सुनकर भगवान् ने उनकी आज्ञा सिर से स्वीकार की। उनको इच्छित पदार्थ दिये तदनन्तर पूर्णाहुति की। ब्राह्मणो और अभ्यागतो को सुन्दर स्वादिष्ट व्यजनों से भोजन कराया। तदनन्तर सीता जी को तथा समस्त राजाओं को साथ लेकर सरयू जी मे अवभृथ स्नान के लिये चले। उस समय समस्त प्रजा उनके साथ चल रही थी। लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न अन्यान्य समस्त राजा अपनी-अपनी पत्नियो के साथ भगवान् के पीछे-पीछे चले। नट नर्तक तथा नाना खेल के करने वाले भी साथ चले। सब लोग श्री रामचन्द्र जी की जय बोल रहे थे, भाँति-भाँति के बाजे बज रहे थे। सरयू मे पहुँच कर सभी नर नारी विविध प्रकार की जल क्रीडा करने लगे, श्रीरामचन्द्र जी जगज्जननी जानकी के साथ सरयू मे तैरते रहे और जल उछाल-उछाल कर उन्हे भिगोते रहे।

इस प्रकार बड़ी देर तक जल क्रीडा होती रही। तदनन्तर दान पुण्य करके घर लौट आये। यज्ञ करके भगवान् परम प्रमुदित हुए। ऐसे-ऐसे हजारो अश्वमेध यज्ञ भगवान् ने किये। इस यज्ञ के अनन्तर जो यज्ञ भगवान् ने किये वह सुवर्णमयी सीता

के सीता के साथ किये, क्योंकि पत्नी के बिना यज्ञ होता ही नहीं।"

यह सुन कर शौनक जी ने पूछा—सूतजी, साक्षात् सीता जी कहाँ चली गयी क्यों भगवान् को सुवर्ण की सीता बनानी पडी।

इस पर सूतजी बोले—मुनियो, इस लोकोत्तर महापुरुषों की लीला बडी विचित्र है। ये जितने ही सहृदय और कोमल हृदय के होते हैं उतने ही कठोर भी होते हैं। प्रजा को प्रसन्न करने के लिये निरापराध सीताजी को श्री रामचन्द्र जी ने त्याग दिया था। इस कथा को मैं आगे कहूँगा। आप दत्तचित्त होकर श्रवण करें।'

छप्पय

प्रभो! कहा नहिं दियो हमें तुम सरवसु दाता।
करहु मोह तम नाश तिमिरहर भवभयत्राता॥
हम नित तप महँ निरत राज को काज न जानें।
तुमहि विश्वपति सकल जगत को पालक मानें॥
पुण्यश्लोक शिरोमणे, हे विश्म्भर जगतपति।
देहिँ दया करि दान यह, तव चरननि महँ होहिँ रति॥

प्रजापालक राम

[६६४]

कदाचिल्लोकजिज्ञासुर्गूढो रात्र्यामलक्षितः।
चरन् वाचोऽशृणोद् रामो भार्यामुद्दिश्य कस्यचित् ॥*

(श्री भा० ६ स्क ११ अ० ८ श्लोक)

छप्पय

बन्धु पुरोहित सचिव प्रभुहिँ श्रद्धायुत सेवे।
राजधर्म महँ निरत राम सबकूँ सुख देवे॥
दुख सुख सबको सुनहि सतत सतोष सिखावे।
सदाचार करि स्व सबनिते नित करावे॥
पिता करहिँ जस सुतनि की, त चिन्ता रघुपति करहिँ।
वेष बदलि के निशामहँ, गुप्तरूप पुरमहँ फिरहिँ॥

जिनके प्रति हमारा प्रेम होता है उनकी सुविधाओ के लिये हमें सदा चिन्ता बनी रहती है। इसी स माता पिता अपने पुत्र पुत्रियो से अत्यधिक प्यार करत है उन्हे अत्यन्त लाड चाव से पालते पोसते हैं उनकी सुविधाओ और मनोगत भावो को जानने के लिय सदा समुत्सुक रहते हैं। बहुत सा बातें हैं जिन्हें

---

* श्री शुकदेवजी कहत हैं— राजन ! श्रीरामचन्द्र जी ने यह जानन के लिय कि लोग मरे सम्बन्ध मे क्या विचार रखते हैं किसी समय गुप्त रूप स वेष बदल कर घूमते हुए सीताजी के सम्बन्ध मे अपनी भार्या स कहते हुए किसी के मुख स ऐसी शंकायुक्त बाते सुनी।'

ाज्जा तथा सकोच के कारण हम अपने गुरुजनो तथा पूज्य रुषो के सम्मुख साक्षात् प्रकट नहो कर सकते। वयस्क पुत्र त्रियो के विवाह के लिये माता-पिता स्वय तो चिन्तित रहते ही , साथ ही वे उनके स्नेहियो साथी-सगियो, सखी सहेलियो के ारा यह जानने की चेष्टा भी करते हैं, कि इनका झुकाव किस ोर है। हमारे मत स सहमत है या नही। इस प्रकार वे अपने ाश्रितो को सुख भी पहुँचाते हैं और आत्मसमीक्षा भी करते हते हैं।

राजाओ के पास प्रजा क मनोगत भावो को जानने का एक- ात्र साधन चर ही हैं। सेवको और गुप्तचरों के द्वारा ही वे ाजा के भावो को जानकर कार्य करते है। किन्तु जो सदाचारी ाज्जन राजा प्रजा के प्रति अत्यधिक अनुराग रखते हैं उन्हें केवल ारों की बातो से सतोप नही होता। वे स्वय भो छिपकर, वेप ादल कर, प्रजा के लोगो मे घुल मिलकर उनके मनोगत भावो ो जान लेते है। उनके भावा को जानकर वे उनकी समीक्षा करत है और उसके अनुसार अपने कार्यो मे सशोधन परिवर्तन था परिवर्धन करत है। ऐसे राजा विरले ही होते हैं वे ही प्रजा के सच्चे पिता हैं वे ही यथार्थ पालक हैं वे ही प्रजावत्सल हैं। जिस के हाथ मे अनेक का सुख दुख जीवन मरण निर्भर है, उसे इस बात की चिन्ता रखनी चाहिये, कि लोगो के मेरे प्रति क्या भाव हैं। लोग मेरे किन कामो को अच्छा समझते हैं। किन कार्यो के कारण उनकी मेरे प्रति अश्रद्धा है। उन्हे सुनकर समझ कर आग्रह और मोह छोडकर जो अपना सुधार करते हैं, अपने सुख का छोडकर दूसरो को सुखी करने मे प्रयत्नशील रहते हैं वे ही आदर्श हैं वे ही वन्दनीय, पूजनीय, तथा अमर यश वाले पुण्य- श्लोक पुरुष हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! आपने जगज्जननी जा परित्याग को कथा पूछो । उसे मैं आप सब को सुनाता हूँ । क्षमाओ, यह कथा इतनी करुणापूर्ण है, कि बिना हृदय के से थामे आप इसे सुन न सकेंगे । मैं भी बीच में कंठ भर ज कारण रुक जाया करूँ तो आप धैर्य धारण किये रहें।"

हाँ तो वन से लौट कर रघुनन्दन राजा हो गये। वे सिंहासन पर बैठकर राज-काज करने लगे । वे सदा इसी बा चेष्टा करते रहते थे, कि मेरे कारण किसी प्राणी को कष्ट मेरे किसी भी आचरण का जनता पर बुरा प्रभाव न पड़े किसी भी व्यवहार में लोग कदाचार में प्रवृत्त न हो ।

राजाओं के यहाँ सदा से गुप्तचर रहते आये हैं। रा के गुप्तचर ही कान है उनके द्वारा वे प्रजा के मनोगत भाव जानते हैं। श्रीरामचन्द्र ने गुप्तचरो की संख्या और भी बढ़ सब को आदेश कर दिया, कि जनता के मनोगत भावो को आकर मुझसे कहो । विशेषकर लोग मेरे सम्बन्ध में क्या कहते मेरे प्रति उनके क्या भाव हैं इन बातो को बताओ।'

भगवान् की आज्ञा पाकर गुप्तचर विविध रूप बना राज्य में विचरण करने लगे । कोई ज्योतिषी का वेष बना प्रजाओं के भावो को जानता, कोई वैद्य बनकर जनता में ! मिल जाता, कोई साधु महात्मा का वेष बनाकर लोगों अपना विश्वास जमाता, कोई पागल बनकर इधर-उधर घूम कोई यात्री बनकर गाँव-गाँव में लोगो के घर ठहरता। क मदारी बनकर भालुओं को नचाता, कोई नट बनकर खेल करता कोई प्रहरी बनकर रात्रि में घूमता कोई, भिक्षुक बनकर घर घ भिक्षा माँगता । कोई कन्या के विवाह का बहाना बनाकर लो के यहाँ वर देखने जाता । कोई मण्डली बनाकर नाटक क

फिरता। कोई रसायन बनाने वाला बनकर लोगो को सुवर्ण बनाने का प्रलोभन देता। कोई साग-भाजी बेचना, कोई बच्चों के छोटे-छोटे खिलौने लेकर घर-घर बेचने जाता। कोई चूडी बेचने वाला बनकर घर-घर चूडी पहिनाने के बहाने सब का पता लगा आता। कोई सुरमा बेंदी मिस्सी बेचता। कोई सुनार की दुकान लगाकर घर-घर आभूषण बनाने और बेचने जाता। सारांश यह कि जीवनोपयोगी जितने कार्य हैं जिनके द्वारा जनता मे अधिकाधिक ससर्ग हो सकता है, उन सभी कामो को सत्यता से करते हुए वे चर श्रीरामचन्द्रजी को जनता के मनोगत भावो से परिचित कराते रहते। उनके द्वारा श्रीरामचन्द्रजी सुधार और परिवर्तन किया करते।

भगवान् ने एक समय नियुक्त कर रखा था जिस समय वे सभी गुप्तचरो की बातें सुना करते थे। राज्य मे चोरी जारी व्यभिचार, पापाचार, परनिन्दा परद्रव्यापहरण ये सब बातें तो थी ही नही। सभी सुखी थे सभी समृद्ध थे। राजद्वार मे मिथ्या अभियोग भी नही चलते थे। राज सभा मे धर्म की चर्चा होती थी। गुप्तचर केवल इसी बात का पता लगाया करते थे कि श्रीराम के सम्बन्ध मे लोगो के क्या विचार हैं।"

कोई गुप्तचर आकर कहता— प्रभो! कल रात्रि मे छिपकर एक घर मे गया। वहाँ एक सुन्दरी अपने फूल से सुदर सुकुमार मनोहर शिशु को दूध पिलाती हुई कह रही थी—'बेटा! तुझे मेरा मधुर दूध जितना पीना हो पेट भर के पीले। यह तेरे जीवन में माता का अन्तिम पय पान है। जो श्रीरामचन्द्रजी के मुखकमल का दर्शन कर लेता है, उसे फिर इस ससार के दर्शन नही करने पडते। जिस सरयू मे श्रीरामजी अपने चरण कमलो से प्रवेश करते हैं, उस सरयू पय को जो प्रेम से पान करते है उसे माता के पय का

पुनः पान नहीं करना पड़ता। तू लोकाभिराम श्रीराम के दर्शन करके संसार-सागर से सदा के लिये पार हो जायगा। न जाने तैने कितने जन्मों तप, योग, समाधि का अभ्यास किया है, जिसके फलस्वरूप तुझे अवधपुरी में जन्म लेने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। जहाँ के राजा श्रीराम हैं जो स्वयं साक्षात सच्चिदानन्दघन परमात्मा हैं। प्रभो! वह माता आपके गुणों का गान करती हुई गद्गद होकर अश्रु बहा रही थी। आपकी कीर्ति का कीर्तन करते करते वह अघाती नहीं थी।"

कोई आकर कहता—"कृपानाथ! कल मैं रात्रि को छिपकर एक धनी के घर में गया। पत्नी स्वर्गीय अप्सराओं से भी सुन्दरी थी। वह पलंग पर अपने पति के साथ बैठी हुई अत्यन्त ही स्नेह से उसके गले मे अपनी बाहु डालकर कह रही थी—"हे प्राणनाथ! आप मुझे देखने मे ऐसे लगते हैं। जैसे साक्षात् रघुनाथजी। आप गुणो मे, सौन्दर्य मे, स्नेह मे, उदारता मे, श्रीराम के ही सदृश हैं।"

यह सुनकर उसका पति आंखो में आँसू भरकर कहता—"प्रिये! तुम्हारे यह वचन सती-साध्वी स्त्रियो के अनुरूप ही हैं। पति चाहे मूर्ख हो, दीन, गुणहीन, कुरूप तथा जड ही क्यो न हो धर्म को जानने वाली पतिव्रता उसका परमेश्वर बुद्धि से ही पूजन करती है और उसी को सर्वस्व समझती है। उसी भाव से तुम कहती हो। नहीं तो कहाँ सर्वेश्वर श्रीराम, कहाँ अल्पमति क्षुद्रातिक्षुद्र मैं। कहाँ महा भाग्यशाली षडैश्वर्य सम्पन्न श्रीरघुनाथ जी कहाँ मन्दभागी मै। कहाँ ब्रह्मादिक देवताओ से भी वंदित श्रीराम कहाँ एक तुच्छ जीव मैं। कहाँ सूर्य के समान प्रकाशमान श्रीराम और कहाँ जुगनू के समान चमकने वाला मैं अधम कीट। कहाँ भुनगा और कहाँ गरुड। कहाँ अमृत और कहाँ विष। कहाँ मोतियों

कहाँ सडा पानी और कहाँ संसार-बन्धन को काटने वाला भगवती भागीरथी का जल। कहाँ गुड का सडा मल और कहाँ सुन्दर स्वादिष्ट ताजे रसगुल्ले। कहाँ सडा हुआ मांस और कहाँ अत्यन्त सुगन्धित इत्र! कहाँ आक का दूध और कहाँ कामधेनु का अमृतोपम स्वादिष्ट मधुर पय। कहाँ एरंड का वृक्ष और कहाँ सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्ण करने वाला स्वर्गीय कल्पवृक्ष कहाँ खाज और कुष्ट से दुखित श्वान और कहाँ देवताओं का राजा इन्द्र। कहाँ भूत भविष्य वर्तमान तीनों काल को जानने वाले निष्पाप ऋषि और कहाँ ब्रह्महत्यारा। कहाँ साक्षात् वृषभ का रूप बनाये हुए धर्म और कहाँ बोझ से पीडित गदहा। कहाँ वेदज्ञ ब्राह्मण और कहाँ परनिन्दा परापवाद में निरत पुल्कस। प्रिये! श्री रघुनन्दन की मेरे साथ बराबरी कैसे हो सकती है। उन्होंने अपने चरणों की धूलि से पाषाणमयी अहिल्या को क्षण भर में भुवन-मोहन सौन्दर्य से युक्त परम सुन्दरी ऋषि पत्नी बना दिया। जो अपने संकल्प-मात्र से ही इस चराचर विश्व को बना देते हैं, जिनके भ्रुकुटिविलास से यह सम्पूर्ण विश्व विलीन हो जाता है उनके सम्मुख मेरा अस्तित्व तो गूलर के वृक्ष में लगे हुए असंख्य गूलरों में से एक गूलर में रहने वाले अगणित भुनगों में से एक भुनगे के बराबर भी नहीं। राम सर्वज्ञ हैं, मैं अल्पज्ञ हूँ। राम ईश्वर है, मैं क्षुद्रातिक्षुद्र हूँ। इस प्रकार वे रात्रि भर प्रेम में विभोर हुए आपका गुणगान करते रहे। एक दिन नहीं जब-जब मैं उनके घर गया दोनों में इसी की चर्चा होती मिली।

कोई आकर कहता—'प्रभो! कल मैं एक कलाकार के घर गया। उसकी स्त्री का स्वर बडा ही मधुर था। वह गाने बजाने में बडी ही प्रवीण थी। वह अपने कोकिल कूजित कंठ से एक भजन गा रही थी। उसका स्वभाव यही था, कि अवधपुर में जन्म लेने

वाले नर नारी धन्य हैं जो श्रीरामचन्द्रजी के दर्शन करते हैं। रामचन्द्र जो जैसे-जैसे अलौकिक कार्य किये हैं ऐसे कार्यों को अब कौन कर सकता है। उन्होने इतने समृद्धिशाली अवध का राज त्याग दिया। लाखो राक्षसो को एक ही बाण से मार गिराया। खर-दूषण त्रिशिरा, कबंध, रावण, कुम्भकर्ण को मार दिया। बालि को मार कर सुग्रीव को राजा बनाया। समुद्र पर १०० योजन लम्बा सेतु बना दिया। विभीषण को लका का राज्य दिया। भरी सभा मे किसी से भी न उठने वाले धनुष के टुकड़े टुकड़े कर दिये।''

इस पर उसका पति बोला—''प्रिय ! तुम जो कुछ कह रही हो सब सत्य ही है। किन्तु रावण को मारना, समुद्र पर पुल बाँधना, राज्य त्याग देना, राक्षसो का संहार करना, ये सब श्रीरामचन्द्रजी के लिये कोई महत्व के कार्य नही है। जैसे किसी धनी से कहे कि तुम्हारे घर मे दस पैसे हैं, तो यह उसके लिये कोई महत्व की बात नही। जैसे शूरवीर के लिये चीटी को मार देना कोई वीरता का काम नही है, वैसे ही ब्रह्मादि देवो द्वारा जिनके चरण पूजित हैं उन प्रभु के लिये दुष्टो का संहार तथा शिष्टो का पालन कोई प्रशसनीय कार्य नही है। वे तो देवताओं की प्रार्थना से भूमि का भार उतारने के निमित्त नर रूप मे अवनि पर अवतरित हुए हैं। पृथ्वी-उद्धार उनका मुख्य कार्य नही है। यह तो गौण प्रासगिक कार्य है। उनके अवतार का मुख्य हेतु तो भक्तो को सुख पहुँचाना ही है। हम संसार मे परम सौभाग्यशाली हैं जो श्रीरामचन्द्र के मुखचन्द्र को सदा सतृष्ण भाव से निहारते हैं और अपलक भाव से उनके दर्शन करते हैं। श्रीराम नराकृति परब्रह्म हैं। इस प्रकार गाते-गाते वे आपका गुणगान कर रहे थे।''

कोई कहता है—"प्रभो, मैं एक उत्सव में गया। वहाँ एक वारांगना नृत्य कर रही थी। वह नृत्य करते समय आपके ही गुणों का गान करती थी। उसके पद का सारांश यही था कि स्त्रियों में जानकी ही परम सौभाग्यशालिनी हैं जो चकवी की भाँति श्रीरामचन्द्र के मुखचन्द्र की शोभा का निरन्तर अपलक भाव से पान करती रहती हैं। सीताजी के सौभाग्य की समता संसार में कौन कर सकता है जिनका मान-सम्मान जगत्पति करते हैं। उन्हें प्रसन्न रखने को भाँति-भाँति की क्रीडा करते हैं और एकान्त में घुल-घुल कर बातें करते हैं। इस प्रकार उसने जितने भी गीत गाये सब आपके ही यश से भरे हुए थे।"

कोई कहता—'मैं एक पंचायत में गया। वहाँ किसी बात का निर्णय हो रहा था। एक पंच चुप था। वह न हाँ करता था न ना। इस पर एक कह रहा था कि श्रीराम के राज्य में कोई अन्याय करने की मन से भी नहीं सोच सकता। सभा में जो पंच असत्य भाषण करता है, या युक्ति से बात करता है अथवा जान बूझकर भी कुछ नहीं बोलता, वह नरक का भागी होता है। सत्य बात को श्रीराम के राज्य में कोई छिपा ही नहीं सकता। इस प्रकार वहाँ न्याय में भी सब आपके शील स्वभाव और सदाचार की ही प्रशंसा कर रहे थे।"

कोई कहता—"प्रभो! लोग भरतजी की भक्ति की लक्ष्मण जी की अनुरक्ति की शत्रुघ्नजी की प्रशंसा करते थे। कोई कहता—"कौशल्या के भाग्य की, कैकेयी की कुमति की, सुमित्रा के सौभाग्य की लोग प्रशंसा करते थे। कोई आपके न्याय की कोई आपकी लोकप्रियता के गुण गान कर रहे थे।"

श्री रामचन्द्रजी सबकी बात सुनते और उन्हें अनसुनी कर देते। उन्हें अपनी प्रशंसा-प्रिय नहीं लगती थीं। फिर भी उनमें

से सम्भव है कोई प्रजा के हित की बात निकल आवें इसीलि खोद खोद कर पूछा करते थे।"

इस बीच मे भगवती सीताजी ने गर्भ धारण किया। गर्भि होने से अब सीताजी के समीप अधिक रहने, उन्हे प्रसन्न कर को वे भाँति भाँति के उपाय करने लगे। वे जिस वस्तु की इच्छा करती उसे श्रीराम तुरन्त मँगवा देते। वे सीताजी सखी सहेलियों और दासियों से सदा उनको इच्छित वस्तुओं लिये स्वयं पूछते रहते तथा पता लगाते रहते। अधिक सतत रहने से उनका सीताजी के प्रति अत्यधिक अनुराग बढ गया वे नहीं चाहते थे, सीताजी को छोड कर एक क्षण भी बाहर जाएँ किन्तु राज-काज के प्रति अपना कर्तव्य समझकर उन्हे जाना पडता। जानकी जी को गर्भिणी होने से श्रीरामचन्द्रजी का क्षण भर का भी वियोग असह्य हो जाता। वे सतृष्ण नेत्रों से श्रीराम चन्द्रजी की बाट जोहती रहती।

एक दिन श्रीरामचन्द्रजी ने सोचा—"ये गुप्तचर मेरी प्रशं तो अत्यधिक सुनते हैं। सीता के सम्बन्ध में लोगों का क्या म है, इसका विशेष विवरण नहीं बताते यह क्या बात है।" ऐ सोचकर अब श्रीराम चरों से बाहर यही पूछते—"लोग सीता सम्बन्ध मे क्या कहते हैं?" गुप्तचर भी कह देते—"प्रभो! सभी भगवती सीता देवी के भाग्य की सराहना करते हैं। यह सुनक भी श्रीराम को संतोष न होता, वे अनुभव करने लगे कि गुप्तच किसी बात को छिपाते हैं। उन्होने अधिकार के स्वर में गुप्तचरों से कहा—"तुम लोग किसी सत्य बात को छिपाते हो ऐसा अनुभव करता हूँ। तुम्हें मेरी शपथ है, तुम सत्य-सत्य बा बताओ। जानकी के सम्बन्ध मे जनता के क्या भाव हैं"।

गुप्तचर बात को बदल कर कहते—"कृपासिन्धो! देवी

कोइ बात नहीं, किन्तु जनता में तो भिन्न रुचि के लोग होते हैं। कभी कोई प्रज्ञ इसी बात पर शंका करता है कि सीताजी रावण के घर में अकेली कैसे रहीं।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इस बात के सुनते ही श्रीराम के के हृदय मे एक प्रकार की चोट सी लगी। अब उन्होंने स्वय ही जनता के भावों को जानने का निश्चय किया। वे रात्रि में वेष बदल कर स्वयं ही घूमने लगे।

छप्पय

जिनमहँ योगी रमें ज्ञानतें ज्ञानी जानें।
अन्तर्यामी राम भाव सबके पहिचानें॥
सीते को है दुखी उठी उतकंठा उर महँ।
नरलीला के हेतु फिरें छिपि छिपिके पुरमहँ॥
रजक एक दिन राति में, निज नारी के कच पकरि।
रही राति में कहाँ तू, पुनि-पुनि पूछे क्रोध करि॥

निन्दकों द्वारा सीताजी की निन्दा

[६६५]

नाह विभर्मि त्वां दुष्टामसतीं परवेश्मगाम् ।
स्त्रीलोभी बिभृयात् सीतां रामो नाहं भजे पुनः ॥*
(श्री भा० ६ स्क० ११ म०, ६ श्लोक)

छप्पय

दाँत पीसि यों कहें लाज कुलटा कहिँ तोकूँ ।
पर घर कैसे रही राम तू समुझे मोकूँ ॥
सीयरूपमहँ फँसे राम ने वही, लुगाई ।
रावण घर दस मास रही फिर तें अपनाई ॥
बड़े करें सो सत्य सब, छाजै सब ई राम कूँ ।
करूँ दूसरा ब्याह मैं, जा तू अपने गाम कूँ ॥

जगत् मे दुष्ट पुरुष न हों तो सज्जन पुरुषो का सज्जनता प्रकट ही न हो। दुष्ट पुरुषो का उसी प्रकार आवश्यकता है। जिस प्रकार परीक्षार्थियों के लिये परीक्षक की। जैसे कितना भी

---

* श्री शुकदेव जी कहते हैं—"राजन् ! निन्दक अपनी स्त्री को लक्ष्य करके कह रहा है—"अरी, पराये घर मे रहने वाली तुझ दुष्ट स्वभाव की स्त्री को अब मैं अपने घर मे नही रखूंगा। स्त्रीलोभी राम ने सीता को स्वीकार कर लिया है तो करें। मैं राम नहीं हूँ। मैं तुझे अब कभी स्वीकार न करूँगा।"

सुन्दर शरीर क्यो न हो, उसमे कितने भी सुगन्धित पदार्थ क्यो न लेप किये गये हो, मक्खी पहले उसी स्थान पर बैठेगी जहाँ घाव होगा, मवाद लगा होगा। मक्खी को दुगन्ध नही आती विष्ठा का कीडा विष्ठा मे ही रमण करता है। उसी प्रकार दुष्ट पुरुष सदा दूसरो के गुणो मे भी दोष ही देखा करते हैं। सन्त-पुरुषो को बात तो छाड दीजिये। नही तो जैसे लोक मे व्यवाय आमिष तथा इन्द्रिय सुखजन्य पदार्थो के प्रति स्वाभाविक झुकाव होता है, उसी प्रकार दूसरो के दोष देखन की प्रवृत्ति मनुष्यो मे स्वाभाविक है। यद्यपि हमे परचर्चा मे कुछ मिलता नही फिर भी न जाने क्यो वह ऐसा है, वह वैसा है, उसने ऐसा काम क्यो किया, उसे ऐसा न करना चाहिये इन बातो के करने मे मनुष्यो को रस आता है। जो नौकर स्वामी के सम्मुख झुक-झुक कर प्रणाम करता है, बात-बात पर श्रीमान्! अन्नदाता, माई बाप कहता है उसे ही पीछे देखिये, अपने स्वामी की कैसी आलोचना करेगा—"वे बडे होगे तो अपने घर के होगे। हमे उनके बडप्पन से क्या लेना। वे समझते हैं हमने इसे खरीद लिया है। पैसा-पैसा पर धर्म गंवाते फिरते है? मैं तो लाखो रुपयो पर पेशाब कर दूंगा। लोग कपडे तो सफेद पहिनते हैं, किन्तु उनका हृदय काला होता है, पैसे-पैसे को मरते हैं। दया-धर्म तो उनमे है ही नही।" इत्यादि-इत्यादि बहुत सी बुराई अपने स्वामी के पीठ पीछे करते हैं और सुख का गर्व का अनुभव करते हैं। बुद्धिमान पुरुष इन साधारण लोगो की बातें सुनकर हंसी मे टाल देते हैं, उपेक्षा कर देते हैं। इनकी बातो मे भी कोई ग्रहण करने योग्य बात होती है, तो उसे ग्रहण कर लेते हैं। गुणग्राही सर्वत्र गुण ही देखते हैं, और दोषदर्शियो को सब बातो मे दोष ही दोष दिखाई देते हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! एक दिन श्रीराम प्रहरी का वेप बनाकर नगर मे घूम रहे थे। उन्होंने किसी धनिक के घर मे अपने ही सम्बन्ध की कुछ बातें सुनी। श्रीराम वहाँ ठहर गये। उस श्रीमान् की पत्नी अपने पति से आग्रह कर रही थी—"प्राणनाथ, मेरी बहिन का विवाह है आप मुझे साथ लेकर चलें !"

पति कह रहा था—"प्रिये ! मुझे बहुत काम है, तू अकेली दास-दासियो को साथ लेकर चली जा।"

स्त्री आश्चर्य-चकित होकर कह रही थी—"आप यह कैसी बात कह रहे हैं। पति के बिना पत्नी का धर्म नही कि अकेली कही जाय।"

पति ने उत्तर दिया—"अपने पिता का घर पराया घर थोड़े हो है। स्त्री के लिये स्वतन्त्र रहने मे दोप बताया है। परन्तु पिता का घर और पति का घर एक ही है। यह तो जो लोग शंकाशील होते हैं वे ऐसी बात सोचते हैं। देखो, सीता जी रावण के घर १० महीने अकेली ही रही। श्रीराम का उनके प्रति अनुराग था, उन पर विश्वास था, इसलिये उन्होने कुछ नही कहा। उन्हे फिर अपनी पटरानी बना लिया।"

स्त्री ने उत्तर दिया—"हम लोग श्रीराम की बराबरी थोड़े ही कर सकते है। श्रीराम तो सर्वज्ञ हैं। जगत्-पिता हैं। जानकी जी जगज्जननी हैं। उनके लिये तो कोई दोप ही नही। यों स्त्रियों को पति के बिना स्वतन्त्र कही जाना दोप की बात है। जानकी जी तो विवश होकर-पराधीनता के कारण-रावण के घर रही। स्वेच्छा से वे कभी अपने प्राणनाथ से पृथक नही रह सकती।" यह सुनकर श्रीराम कुछ चिन्ता में पड़ गये। वे आगे बढे।

आगे उन्होने देखा कुछ लोग आपस मे उन्ही के सम्बन्ध में बातें कर रहे हैं। भगवान् वहाँ ठिठक गये। कोई कह रहा था—"देखो, लोग गुणो की ओर तो ध्यान देते नही। दूसरो के छिद्र देखते रहते हैं। वे पडित बूढे हो गये, किन्तु उनके नास्तिक-पने के भाव नही गये। कल कह रहे थे—अब श्रीराम चन्द्र जी ने मार्ग खोल दिया। स्त्रियाँ स्वच्छन्द होकर घूमेगी। उनके पति पूछेंगे—कहाँ गई थी, तो कह देगी श्रीराम जी ने दश महीने पर घर मे रहो सीता जी पर अविश्वास नही किया, आप हमे घर मे ही बन्द रखना चाहते है। राजा जो करता है प्रजा उसका अनुसरण करती है।" इस वात को सुनकर श्रीराम का बडा दुख हुआ। वे और भी आगे बढे।

कुछ दूर चलकर उन्हे कुछ कलह सी सुनाई दी। कोई पुरुष किसी पर क्रोध करके डाट रहा है। प्रहरी के भेप मे भगवान् उधर ही बढे जहाँ से लडाई की बात सुनाई दे रही थी। वह एक धोबी का घर था। भगवान् ने खिडकी से देखा कि धोबी अपनी स्त्री को डाँट रहा है। वह क्रोध में भरकर उसके जूडे को पकड कर पूछ रहा है—"तू कल रात में कहाँ रही थी।"

स्त्री रोते रोते कह रही थी—"आप वस्त्र लेकर गये थे, मेरी एक सहेली आई। उसके घर विवाह था। मुझे हठ पूर्वक अपने यहाँ ले गई। उसके यहाँ बहुत काम था। मैंने उससे बार-बार कहा—'मुझे जाने दो, जाने दो,' किन्तु वह मानी ही नही। मुझे विवश होकर रहना ही पडा। प्रात जब मे लौट कर आई तब तक आप घाट पर कपडे धोने चले गये थे।"

उसका पति क्रोध करके बोला—"दुष्टे! अब तू इतनी स्वतन्त्र हो गई है, तब तेरा मेरे घर मे क्या काम। उसी के घर

चली जा जिसके घर रात्रि मे रही थी, या अपने बाप के घर चली जा मैं तुझे अपने घर मे कभी नही रख सकता।"

वह हाथ जोडकर दीन वाणी मे कह रही थी—"प्राणनाथ, मुझसे अपराध तो अवश्य हो गया, किन्तु आप तो दयालु हैं, मैं आपकी दासी हूँ। अब के क्षमा कर दीजिये। फिर कभी आप की आज्ञा के बिना कभी न जाऊँगी।"

धोबी क्रोध करके उसे बाल पकड कर ढकेलते हुए कह रहा था—"चल, हट कुलटा कही की। दूसरे घर मे रात्रि बिताकर मुझसे क्षमा चाहती है। पर घर मे रहने वाली स्त्री को तो मैं तब रखूँ जब मुझे दूसरी स्त्री न मिलती हो। तेरी जैसी ३६० स्त्रियाँ मुझे मिल सकती हैं। मेरे नख-नख के विवाह हो सकते हैं।"

स्त्री कह रही थी—"मैं मना कब करती हूँ, आप भले ही दूसरा विवाह कर लें। दश विवाह कर लें मैं भी एक कोने मे रहूँगी। झाडू बुहारू देती रहूँगी। मेरा परित्याग न करें।"

क्रोध मे भर कर धोबी कह रहा था—'तू एक बार कह, चाहे लाख बार कह मैं तुझे नही रखूँगा। चाहे सूर्य पश्चिम में उदय हो जायँ चन्द्रमा अमावस्या को उदित हो जायँ किन्तु मैं तुझे अपने घर मैं नही रख सकता। मै राम थोडे ही हूँ जिन्होने १० महीने तक रावण के घर मे रही हुई सीता को फिर से अपनी पटरानी बना लिया। वे सीता के रूप पर आसक्त थे उन्हें वैसी दूसरी स्त्री न मिलती होगी, इसी लोभ से उन्होने बिना विचार किये सीता को रख लिया। मैं तो प्राण रहते ऐसा नही कर सकता। 'तू अभी मेरे घर से निकल जा।' यह कह कर उसने धक्का मार कर स्त्री को घर से बाहर कर दिया।।

धोबी की ये बातें सुनकर श्रीरामचन्द्र को बडी आत्मग्लानि

हुई। वे सोचने लगे—"मेरे राजा होने को धिकार जो मेरी प्यारी प्रजा के लोग ही मेरे सम्बन्ध में ऐसे शकायुक्त विचार रखते हैं। संसार में सबका रजन करना बडा कठिन है। वास्तव मे सीता निर्दोष है। उनने अग्नि मे प्रवेश करके अपनी निर्दोषता सिद्ध की है। फिर भी यह धोबी लका मे तो देखने गया हो नही था। अयोध्यापुरी का कोई भी वहाँ नही था। इसीलिये लोग मेरे चरित्र मे सन्देह कर रहे हैं। मुझे विष का घूंट पीना होगा, सीता का परित्याग करना होगा। बिना सीता के परित्याग किये गति नहीं, कल्याण नही।" ऐसा सोचकर श्रीराम ने सीताजी के त्याग का दृढ निश्चय कर लिया। खिन्नमन से घर लौट आये। इस पर शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! श्रीराम ने जगज्जननी सीताजी के त्याग का निश्चय क्यो किया? सीता तो सर्वथा दोषरहित थी।"

सूतजी बोले—"महाराज! सीताजी शुद्ध हैं। वे सर्वथा निर्दोष हैं, इस बात को श्रीरामचन्द्रजी जानते थे, किन्तु प्रजा के रजन के लिये, अपकीर्ति के भय से, श्रीरामचन्द्रजी ने सीता का त्याग करने का निश्चय किया।"

इस पर शौनकजी ने कहा—'नही, महाराज! ये बात उचित नही। एक अनपढ मूर्ख धोबी के कहने से अपनी प्राणो से भी प्यारी पत्नी का परित्याग करना मैं तो सर्वथा अनुचित ही समझता हूँ। श्रीराम के इस कार्य का समर्थन कोई भी बुद्धिमान् पुरुष न करेगा। यों एक-एक के कहने से राजा परित्याग करता फिरे तब तो वह एक दिन भी राज्य नहीं कर सकता। धर्मपूर्वक व्यवहार करने वाले राज कर्मचारियो और मन्त्री अमात्यों से प्राय. बहुत से लोग जलते रहते हैं। उनकी झूठी सच्ची शिकायतें भी करते है। ऐसे राजा साधारण लोगो के कहने से उन्हें

दिया करे तब तो कोई भी उसके यहाँ काम करने में उत्साह न दिखायेगा, कोई स्थाई न रहेगा।"

इतना सुनते ही सूतजी गम्भीर हो गये और बोले—"मुनियो ! इस बात को गम्भीरता के साथ सोचें। जहाँ सिद्धान्त को लेकर झगड़ा है, वहाँ तो जो सत्य हो उसी पर अड़े रहना चाहिये। जिसका सम्बन्ध सबसे हो, जो सार्वजनिक वस्तु हो वहाँ न्याय का और सभी के सुख का ध्यान रखना चाहिये, किन्तु व्यक्तिगत बातों में तो त्याग में सुख है। निन्दकों का मुख त्याग द्वारा ही बन्द किया जा सकता है। श्रीरामचन्द्र जी ने उसी आदर्श को उपस्थित किया। श्रीरामचन्द्रजी अवध के राज्य के पूर्ण अधिकारी थे। यदि दूसरा कोई राजा आकर अपना अधिकार उस पर जमाता, तो वह राज्य पाट को त्यागकर कभी वन न जाते। उससे युद्ध करते उसे परास्त करके अधिकार के साथ सिंहासन पर बैठते। किन्तु ऐसा नहीं हुआ। कैकेयी ने भरतजी को बीच में डालकर राजा से राज्याधिकार ले लिया। श्रीराम को १४ वर्ष के लिये वनवास दे दिया। यह अत्यन्त अनुचित तथा सभी को बुरा लगने वाली बात थी। उस समय जनता श्रीराम के अनुकूल थी चाहते तो बलपूर्वक राज्यसिंहासन पर बैठ जाते। राजा कुछ कहते तो उन्हें कैद कर सकते थे। महाराज दशरथ ने अत्यन्त दीनता से श्रीराम के सम्मुख यह सुझाव रखा भी था कि मैं स्त्रीजित हूँ, बूढ़ा हूँ, राज्य करने योग्य नहीं हूँ। धर्मपूर्वक तुम मुझे बाँधकर राजा बन जाओ। राम के राजा होने पर भरतजी भी प्रसन्न ही होते, न प्रसन्न होते तो भी लक्ष्मण उन्हें परास्त करने को कटिबद्ध थे ही। श्री राम का यह कार्य न्यायानुकूल भले ही होता, कुछ देर के लिये प्रजा के लोग प्रसन्न भले ही हो जाते किन्तु इससे श्रीराम की कीर्ति न होती, इसमें उनकी महत्ता न बढ़ती। ऐसा तो सभी करते

हैं अधिकारों के लिये तो सभी लडते हैं। प्रतिष्ठित बनने की, सुखी रहने की आकांक्षा सभी को है। जो कुल के कलह को मिटाने के लिये शारीरिक सुखों के ठुकराने के लिये महान् से महान् त्याग कर सकता है, वही महा पुरुष कहलाता है। श्रीराम यदि समझते कि भरत राज्य के सर्वथा अयोग्य है, भरत के राजा होने से समस्त प्रजा को क्लेश होगा, राज्य मे अराजकता फैल जायगी यज्ञ याग, दान धर्म आदि कार्य नष्ट हो जायंगे तब वे कभी वन को न जाते किन्तु जब उन्होने समझ लिया कि प्रजा का पालन तो भरत भी कर ही सकते है, मेरे राजा न होने से इतना ही होगा, कि मैं राज्यसुखो से वंचित रहूँगा, इसलिये माता-पिता धर्मरक्षा के लिये, कुल को कलह को शान्त करने के लिये मुझे राज्य का परित्याग ही कर देना चाहिये। लोग दुखी अवश्य होगे, किन्तु वह मेरे स्नेह से मेरे वियोग मे दुखी होगे। प्रेम के वियोग का दुख तो प्रेम को और बढाने वाला ही होता है। प्रतीक्षा से उत्कंठा से स्नेह और भी अभिवृद्धि को प्राप्त होता है। इसलिये राम राज्य को छोडकर चले गये। उस त्याग से उनकी कीर्ति अमर हो गई। उनकी कथा स्थाई हो गई। करुणा की धारा मे वह त्रैलोक्य पावनी सुरसरि के समान बन गई। जो व्यक्तिगत स्वार्थों को आत्यसुखो को सदा त्यागने को उद्यत होता है वही महान् है, वही पूजनीय, वन्दनीय और अनुकरणीय है। उसी का यश अमर होता है। उसी की कीर्ति ससार मे सदा के लिये छा जाती है त्याग ही चरित्र का महान् बनाता है।

यदि वशिष्ठजी की अज्ञ लोग झूठी निन्दा करते तो श्रीराम उसकी न केवल उपेक्षा ही करते अपितु निन्दक पर अभियोग चलाते और उसे दड देते। क्योंकि उनके बिना राज-काज धर्म-कर्म सब ही नष्ट हो, जायंगे। सीताजी ससार मे उनकी सबसे प्रिय वस्तु

थी। सीता का पृथक् अस्तित्व समझते ही नहीं थे। वे भली भाँति जानते थे, सीताजी मे कोई दोष नहीं, गगाजल के समान शु हैं, पतिव्रताओ मे शिरोमणि हैं, साथ ही समार में सबसे श्रे सुन्दरी और मेरी प्राणो से भी प्यारी है। उसके सानिध्य से मुझे स्वर्गीय सुख मिलता है। किन्तु ईर्ष्यालु लोग उस सुख को देखक जलते हैं। जनता मे अपवाद फैलाकर एक बुरा आदर्श उपस्थित कर रहे है। मेरे विशुद्ध आचरण की आड मे सदाचार और पापा चार का प्रचार कर रहे है। ऐसी दशा मे मुझे अपने श्रेष्ठ से श्रेष्ठ व्यक्तिगत सुख का परित्याग कर देना चाहिये। सीता मेरे हृदय मे वसी है। वन मे रहे या महल मे, मैं उसका हूँ, वह मेरी है। मेरा उसका सम्बन्ध ऐसा अटल है, कि वह देश काल के व्यवधान से शिथिल नहीं हो सकता। मुझे इस विषके घूंट को पीना ही होगा। सीता का साथ छोडना ही होगा। यदि मैं निंदकों को दड देता हूँ, इस बात को वधानिक रूप देकर दबाने की चेष्टा करता हूँ, तो ऐसी बातें दबाने से और भी महत्वपूर्ण बन जाती हैं और दबन के स्थान मे उनका और भी अधिक प्रचार हाता है। दमन से उनके प्रचार तथा प्रसार मे बल आ जाता है। सत्य बात तो कभी छिपती नहीं, वह तो कभी न कभी प्रकट हो ही जाती है। किन्तु त्याग से उसका गौरव और बढ जाता है। सीता के निर्वासित करने से राज्यकाज मे तो कोई बाधा आती नहीं। धर्मकार्यों मे पत्नी की आवश्यक्ता अवश्य है, उसका निर्वाह कुशा की या सुवर्ण की पत्नी बनाकर अभाव मे हो सकता है। मुझे प्रतिक्षण मर्मान्तिक कष्ट अवश्य होगा। उसे लोकरजन के लिये उत्तम आदर्श के लिय सहना पडेगा। इन्हीं सब बातो को सोचकर श्रीराम ने सीताजी के त्याग का निश्चय किया। उन्होने किसी अपराध पर सीताजी को नहीं निकाला। उन्होंन तो जान बूझ

र त्याग का आदर्श उपस्थित किया। इसलिये मेरी बुद्धि मे
सीता का परित्याग श्रीराम की सबसे बडी महत्ता है। सीताहरण
पर जब हम श्रीराम की दशा देखते हैं तो हमे ऐसा लगता है, कि
सीताजी के प्रति राम का प्राणो से भी अधिक अनुराग है। वे
सीता के पीछे चौदभुवनो को चराचर विश्व को, नष्ट करने के
लिये उद्यत हो जाते हैं। रोते-बिलखाते पागलो की भाँति एक वन
से दूसरे वन मे भटकते फिरते हैं। वृक्षो से मृगों से फूल पत्तो से
सीता का पता पूछते हैं। निर्वासित वानर के सामने घुटने टेककर
गिडगिडाते हैं। हम सुग्रीव की शरण मे आये हैं। हमारी पत्नी
का पता लगवा दो। सीता को किसी तरह खुजवा दो। उस समय
हमे ऐसा लगता है कि राम सीता के लिये सब कुछ कर सकते हैं।
प्राणो को छोड सकते हैं किन्तु सीता को नही छोड सकते। छोटे
भाई लक्ष्मण से सीता के वियोग मे ऐसी सरसश्रृंगार पूर्ण बातें
निर्भय होकर पागलो की भाँति कहते हैं कि छोटा भाई लज्जा के
कारण सिर नीचा कर लेता है। किन्तु राम को तो उस समय
उन्माद था। सीता के वियोग के कारण उनका हृदय छलनी हो
रहा था, उसमे से निरन्तर शोक बह रहा था। उन्ही राम को जब
देखते हैं कि सीता के बिना १० हजार वर्षो तक दृढता के साथ
राज काज करते रहते हैं तब उनके धैर्य का, त्याग का महत्ता का
अनुमान लगाया जा सकता है। महापुरुषो की यही तो महत्ता है।
वे जितनी ही दृढता से ग्रहण करने की शक्ति रखते हैं उतनी
ही दृढता से छोड भी सकते हैं। वे कुसुम कलिका से भी अधिक
कोमल हृदय के होते हैं और समय आने पर वज्र से भी अधिक
कठोर बन जाते हैं जिस दृढता से 'हाँ' करते है उसी दृढता से
ना भी कर सकते हैं। इसलिये उनके बालि वध आदि कार्यो के
सम्बन्ध मे तो मतभेद हो भी सकता है, किन्तु सीता निर्वासन के

सम्बन्ध में तो वे सत्य को स्थान ही नहीं। यह उनका महान् त्याग है। प्रत्यधिक सहिष्णुता का आदर्श है। प्रजारजन का अनूठा दृष्टान्त है। ससार में इतना बडा त्याग कौन कर सकता है। जो करता है वह राम है या रामका है।"

यह सुनकर शौनक जी ने कहा—"सूतजी! हाँ, श्रीराम का यह कार्य यथार्थ मे सर्वश्रेष्ठ त्याग है। सीता जैसी सती साध्वी पति परायणा प्राणो से भी अधिक प्रिय पत्नी का साधारण-सी बात पर सदा के लिये त्याग या तो राम के ही अनुरूप है या उन के। साधारण पुरुष ऐसा त्याग कभी नही कर सकते, किन्तु हमें एक बात का सदेह बना ही रहा। अयोध्या मे रहने वाले एक साधारण से धोबी को ऐसी बात कहने का साहस ही कैसे हुआ जिस राम-राज्य में सभी धर्मात्मा, क्रोधरहित, अमानी सर्वप्रिय मनुष्य थे उसमे ऐसा दुष्ट आ कहाँ से गया? उसकी जिह्वा सडकर गलकर उसी समय गिर क्यो नही गई। जगज्जननी जानकी के सम्बन्ध मे ऐसी बात उसके मन मे आई कैसे? कैसे उससे यह बात कही गई? फिर सर्वज्ञ श्रीराम भी उसी समय वहाँ पहुँच कैसे गये?"

यह सुनकर सूतजी सूखी हँसी हँसकर बोले—"मुनिवर! आप सर्वज्ञ होकर ऐसा प्रश्न कर रहे हैं। कौन किसकी निन्दा कर सकता है और कौन प्रशसा। यह प्राणी सभी क्रियायें स्वकर्म सूत्र मे बँधकर करता है। पूर्वजन्मो के सस्कार ही कहने करने को विवश करते है। जिससे पूर्वजन्म मे हमने प्यार किया होगा वह इस जन्म मे हमसे स्वतः ही प्यार करेगा। जिससे पूर्व जन्म में मनोमालिन्य रहा होगा, वह बिना परिचय के ही देखते द्वेष करने लगेगा। जिसका हमने पूर्वजन्म मे उपकार किया होगा वह इस जन्म मे हमारा भी उपकार करेगा। जिसका जान मे

नजान मे हमसे कोई अपकार हो गया होगा वह इस जन्म मे
का बदला आकर लेगा ही। बाल्यावस्था मे जनकनन्दिनी के
रा इस इस जीव को मर्मान्तिक क्लेश पहुँचा था। उसी का
दला लेने के लिये इसके मुख मे बिना जाने बूझे ऐसी बात निकल
ई। विधि का ऐसा विधान ही था, ऐसा निश्चित था। इसीलिये
ीराम वहाँ पहुँच गये। ऐसा हो गया।"

इस पर शौनकजी ने पूछा—'सूतजी! जगज्जननी जनक
न्दिनी से बाल्य-काल मे ऐसा कौन सा अपराध बन गया था,
सके कारण निपराध उन्हे पति से पृथक् रह कर जीवन
िताने के लिये विवश होना पडा। यह रजक पूर्व जन्म में कौन
ा? पहिले इस बात को सुनाइये तब आगे प्रसग कहिए।'

यह सुनकर सूतजी बोले— मुनियो! जगज्जननी भागवती
ता से अपराध ही क्या होना था। वे ता आदिशक्ति जगन्माता
। जब उन्हें क्रीडा करनी होती है, जीवों के उद्धार के लिये
रुण कथा रूपा सरिता बहानी होती है तो वे ऐसी लीलायें
चती हैं, जिन्हे पढ-पढ कर प्राणी रोवें जिससे उनके हृदय का
ल अश्रु बनकर नेत्रों द्वारा निकल जाय। इन करुण कथाओं को
ुनकर जिनकी आँखों मे आँसू नही आते, हृदय फटने नही लगता
ो परमार्थ पथ के अधिकारी नही। उन्हे तो अभी चिरकाल तक
इसी प्रकार ससार मे भटकना पडेगा। जगदम्बा की सभी चेष्टायें
न्तानों के हित के ही निमित्त होती है।

हाँ, तो जब जानकी छोटी ही थी तब बडी चचल थी। पिता
की अत्यन्त प्यारी थी। माता का उन पर अपार प्यार था। यद्यपि
वे हल की फाल से खोदी भूमि से निकली थी। अयोनिजा थीं—
फिर भी माता का इनके प्रति अत्यधिक अनुराग था। वे उन्हें

का मन उनमे फँस जायगा। बाल क्या होंगे जीवरूपी-मछलियों के फँसाने के जाल होंगे। उन पर बाँधा हुआ मुकुट मन को मत्त बना देने वाला होगा। राम का भाल विशाल और तिलक-युक्त होगा। उनका मुख कमल कली के समान कोमल, कमनीय और मनहर होगा। उनके नेत्र बड़े-बड़े विशाल, कानों तक लम्बे तथा खिले हुए कमल के समान डहडहे, सरस और सुन्दर होंगे। वे शान्त, गम्भीर लजीले कटीले तथा चुभने वाले होंगे। उनकी नासिका पतली, नुकीली उन्नत तथा मनोहारिणी होगी। भौंहें धनुष के समान टेढी, चढाव उतार की, मटी हुई सुन्दर और चित्ताकर्षक होगी। कान बड़े और कुण्डलों से युक्त होंगे। दाँत कान्ति युक्त, शुभ्र, घन छोटे और उज्वल होंगे। ओष्ठ कुंदरू के समान लाल गुदगुदे, पतले, सरस और मृदु होंगे। ठोढ़ी मनोहर, उठी हुई और गोल होगी। गरदन छोटी सुहावनी और शंख के समान होगी। बाहुएं विशाल, पुष्ट, बलवती और उतार चढाव की होंगी। छाती विशाल, स्पर्श मे परम सुखद, शोभा सम्पन्न और श्रीवत्स के चिह्न से चिह्नित होगी। उनका कटि प्रदेश कुछ भारी मासल, सुखद और दर्शनीय होगी। जाँघें चिकनी, गोल, पुष्ट और मनहर होगी। रघुनाथजी के चरणों की शोभा का वर्णन संसार मे कौन कर सकता है। वे तो भक्तों के सर्वस्व, जीवों के एकमात्र आश्रयदाता और मुक्ति के स्थान होंगे। श्रीराम का रूप कोटिकन्दर्पों से भी असख्यों गुणा श्रेष्ठ होगा। सहस्रों जिह्वा वाले शेषजी भी श्रीरामचन्द्र जी के रूप का वर्णन नहीं कर सकते। फिर मैं पक्षिजाति मे उत्पन्न हुई अधम सी उनके रूप का वर्णन कैसे कर सकती हूँ।''

इतना सुनते ही, जनकनन्दिनी का मुखचन्द्र खिल उठा। उनके कमल के समान बड़े-बड़े नेत्रों से प्रेम के अश्रु निकल पड़े। वे

बार-बार कहने लगीं—"श्रीराम के रूप का वर्णन करो। उनके गौरव युक्त गुणो का गान करो। अपनी सुमधुर वाणी से राम कथा सुनाओ।"

शुकी ने अत्यन्त ही प्रेम-पूर्वक पूछा— सुन्दरि! तुम कौन हो? तुम तो देवकन्या के समान प्रतीत होती हो। तुम अत्यत ही स्नेह, आदर, अनुराग और उत्कठा के साथ श्रीराम के सबन्ध मे पूछ रही हो। तुम्हारे भावो से ऐसा प्रतीत होता है, कि श्रीराम के प्रति तुम्हारा सहज स्नेह है, नैसर्गिक अनुराग है? यदि अनुचित न हो, तो तुम हमे अपना परिचय दो।'

सीताजी ने अत्यन्त स्नेह के साथ कहा— 'शुकी! जिन सीता के सम्बन्ध मे तुम कह रही हो मैं वही सीता हूँ। मेरे पिता मिथिलाधिप महाराज जनक मुझे प्राणो से भी अधिक प्यार करते है। तुमने मुझे अत्यन्त सुखद सम्वाद सुनाया है। इस कथा को सुनकर मेरा रोम-रोम खिल उठा। अब मैं तुम्हे छोड नही सकती। जब श्रीराम दूल्हा वेष मे आकर मेरा पाणिग्रहण करेंगे तभी मै तुम्हे छोड सकती हूँ।"

शुकी ने कहा— 'देवि! हमारा बडा सौभाग्य है, जो हमे आपके दर्शन हा गये। आपने अत्यन्त स्नेह से हमारे वचन सुने। अब आप हमे आज्ञा दें हम दोनो सुख से प्रेमपूर्वक विचरण करेंगे।"

सीताजी ने कहा—' शुकी। जगलो मे भटकने से क्या लाभ। तुम्हारा कठ बडा मधुर है। तुमने अपनी सुन्दर सरस कथा से मेरा चित्त अपनी ओर खीच लिया है, तुम्हे छोड नहीं सकती मेरे महलो मे सुख से तुम निवास करो। तुम्हे सुवर्ण के पिंजडे में रखूंगी। तुम जो भी वस्तु खाने को माँगोगी उसे ही मँगाकर

खिलाऊँगी, अपने हाथों तुम्हें हिलाऊँगी सेवा करूँगी, तुम मेरे पास ही रहो।''

शुकी ने कहा—'राजकुमारी! हम वन मे विचरण करने वाले अरण्य के पक्षी हैं हमे स्वच्छंद घूमना अत्यन्त ही सुखकर प्रतीत होता है। यह मैं जानती हूँ। तुम सब कुछ मुझे दे सकती हो किन्तु बन्धन तो बन्धन ही है। स्वतन्त्रता के समान कोई वस्तु नही। स्वतन्त्रतापूर्वक रूखा-सूखा आधा पेट भी आहार मिले तो वह अति उत्तम है और दासता मे रहकर चिकनी चुपडी भी मिले, ५६ प्रकार के व्यञ्जन ही क्यो न हो, तो भी वे सुखकर नही। हमे स्वच्छन्द होकर पेडो पर रहना जितना सुखकर है महलो का रहना प्रिय नही। तुम लोभ मत करो देखो, सौन्दर्य को देखकर ही सुखी होना चाहिये। जो सौन्दर्य को सीमा मे बाँधकर हठपूर्वक उसे अपनाना चाहता है, उसे सबकी दृष्टि से ओझल करके एकमात्र अपनी ही स्वत्व उस पर जमाना चाहता है, वह लोभी है। लोभ पाप का मूल है। प्रेम मे सुख है, मोह मे दुख है। तुम मुझे मेरी इच्छा के विरुद्ध बन्धन मे मत डालो। मेरे पति के साथ मुझे जाने दो। फिर मैं आऊंगी। फिर तुम्हें सुमधुर कथायें सुनाऊंगी।''

जानकीजी ने कहा—'देखो मेरा अनुराग तुम मे अत्यधिक हो गया। तुमने मेरे चित्त को फंसा दिया है। श्रीराम जब तक मुझे न मिलेंगे तब तक मै तुम्हारे द्वारा उनकी कथा ही सुनकर सन्तोष करूंगी। जब वे मुझे पत्नी-रूप मे वरण करलें, तब तुम भले ही चले जाना।''

शुकी बोली—'देवि! तुम अभी निरी बच्ची ही हो। पति के साथ पत्नी को एकान्त मे कितना सुख होता है उसे तुम नहीं जानती। मुझे तुम्हारे यहाँ सुख न होगा, प्रत्युत महान् क्लेश ही

होगा। फिर देखो, मैं गर्भिणी हूँ। शीघ्र मेरे प्रसव होने वाला है। मैं अपने पति के साथ जाऊंगी। मैंने एक सुंदर-सा घोसला बनाया है उसमे अंडे दूंगी। बच्चे जब बडे हो जायंगे तब मैं फिर तुम्हारे पास आऊंगी।"

सीता जी ने दृढता के स्वर मे कहा—'शुकी तू चाहे एक बार कह या लाख बार कह। मै तुझे न छोड़ूंगी, न छोड़ूंगी, किसी प्रकार भी न छोडंगी। हां, तेरे पति को छोड सकती हूँ।" यह कहकर जानकीजी ने शुक को छोड दिया। वह उडकर पास के पेड पर जा बैठा और रोता हुआ बोला—'राजकुमारो, यह बात अच्छी नही। किसी के जोडे को नष्ट करना उचित नही। यह पत्नी मुझे प्राणो से भी अधिक प्रिय है, तुम इसे छोड दो।"

सीता जी राजकन्या ठहरी। उन्हाने डांटकर कहा—"उड जाओ यहाँ से। मै इसे नही छोड सकती अथवा बैठे रहो मैं ही इसे लेकर महलो मे जाती हूँ।" यह कहकर वे पिंजडे को स्वयं उठाकर चलने को उद्यत हुई।

शुकी ने जब समझ लिया, यह हठीली राजकुमारी मुझे छोड़ेगी नही, मेरे पति से मुझे पृथक् कर ही देगी तो उसने क्रोध मे भरकर जानकी को शाप दिया—"अरी राजकुमारी! जिस प्रकार तू मुझे गर्भावस्था मे अपने पति से पृथक् कर रही है, उसी प्रकार तू भी अपने पति से गर्भावस्था मे पृथक् हो जायगी।" इस प्रकार कहकर दुःख और शोक के कारण उसने वहो अपने शरीर को त्याग दिया।

अपनी पत्नी की शोक सताप से मृत्यु होते देखकर शुक को परम दु.ख हुआ। उसने भी प्रिया के दुःख से दुखी होकर जानकी को लक्ष्य करके कहा—"देवि! तुम्हारा विवाह श्री रामचन्द्र के साथ तो हो ही जायगा। अयोध्याधिपकी रानी तो तुम बन ही

जाओगी। किन्तु मैं तुम्हे अधिक दिन तुम्हारे पति के समीप न रहने दूँगा। उस धन जन से भरी पूरी समृद्धशालिनी अयोध्या पुरी मे मै जन्म ग्रहण करके ऐसी-ऐसी बातें कहूँगा जिससे विवश होकर श्रीराम को तुम्हे त्यागना पडे।'

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! ऐसा कह कर उस पक्षी ने प्रतिहिंसा तथा क्रोध मे भर कर अत्यन्त दुख से वही प्राण त्याग दिये। जानकी जी दुखित होकर घर चली गई।"

कालान्तर मे वही शुक आकर आयोध्या मे रजक हुआ। क्रोध और हिंसा के भावो से अन्त मे इसने प्राणो का परित्याग किया, इसी से उसे ऐसी योनि मे जन्म लेना पडा। उसी पुराने बैर के कारण उसके मुख से सस्कारवश ऐसी बातें निकल पडी जिससे श्रीराम को अपनी प्राण प्रिया को छोडने के लिये विवश होना पडा।

शौनक जी ने पूछा—"हाँ तो सूतजी! फिर क्या हुआ।'

अत्यन्त ही करुणा के स्वर मे सूतजी ने कहा—"फिर महाराज जो होना था वही हुआ। श्रीराम लौटकर महलो मे आये। सयोग की बात कि इसके एक दिन पूर्व ही श्री रामचन्द्र जो ने सीता से पूछा था—"तुम क्या चाहती हो। शास्त्रकारो का कथन है, गर्भवती जो जो इच्छा करे, पति को चाहिये यथाशक्ति धर्म और सदाचार को रखते हुए उसी की इच्छाओं की पूर्ति करे। तुम्हारी क्या करने की इच्छा है? किस कार्य के करने से तुम्हें सन्तोष होगा?"

सीता जी ने अत्यन्त ही स्नेह से कहा—"प्राणनाथ, मेरी तो सभी इच्छाओं की आप पूर्ति करते ही हैं। फिर भी मेरी इच्छा ऐसी है कि जिन सती साध्वी ऋषि पत्नियो ने मुझे सौभाग्य शालिनी तथा पुत्रवती होने का आशीर्वाद दिया है। जिनकी

आशिष से मैं आपके साथ सम्राज्ञी होने का सुख उपभोग कर रही हूँ। उनका वन मे जाकर पूजन करूँ। वन देखे मुझे बहुत दिन हो गये। अब मैं जाकर भगवती लोपमुद्रा, अनसूया तथा अन्यान्य तपस्वी ऋषि पत्नियों की चरण वन्दना करूँ। उन्हे बहु-मूल्य सुन्दर वस्त्र आभूषण भेंट करूँ।

श्री रामचन्द्र जी ने उनकी बातो का अनुमोदन करते हुए कहा—"प्रिये! ऐसा ही होगा। मैं तुम्हे शीघ्र ही वन देखने भेजूँगा। तुम यथेष्ठ वस्त्राभूषण लें जाना, मनमाना दान देना, विधि पूर्वक मुनि पत्नियों की सेवा करना।"

श्रीरामचन्द्र जी के अनुमोदन से जानकी को अत्यन्त प्रसन्नता हुई।

जब यह घटना घट गई तब तो श्री रामचन्द्र जी सोच मे पड गये। उन्होने सोचा मैं प्रत्यक्ष जानकी से कैसे कहूँ, कि मैंने तुम्हारा परित्याग किया। यदि वह मुझसे रोकर पूछे कि मेरा क्या अपराध है, तो मैं उसे क्या कहूँगा। यह लोकरजन का ऐसा कार्य है कि इसमे हृदय के विरुद्ध कार्य करना पडता है। मैं अपने कर्तव्य पालन मे इतना बँधा हूँ कि स्वय राज्य छोड कर सीता के साथ वन मे भी नही जा सकता। राज्यपाट का परित्याग भी नही कर सकता। प्राणों को भी छोडना चाहूँ, तो यह भी अधर्म होगा। मेरे पीछे कितनों का सहार होगा। अब तो मुझे हृदय को पत्थर बना कर इस राजकाज को करना ही होगा। मर जीवा बनकर न ता मरना हा होगा, न भलो-भाँति जीना ही होगा जानका का विरह भीतर हा भीतर मेरे हृदय को नित्य उसी प्रकार खोखला करता रहेगा। जिस प्रकार घुन का कोडा भीतर ही भीतर लकडी को खोखला करता है। अन्त मे भगवान् ने निश्चय किया कि तपोवन दिखाने के बहाने से जानकी को

अपने राज्य से पृथक कर दूँगा। वन में उसका पातिव्रत्य ही उसकी रक्षा करेगा। चरित्र सर्वत्र प्राणी की रक्षा करता है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो, ऐसा सोचकर भगवान् ने सीता जी के परित्याग का दृढ निश्चय कर लिया।"

छप्पय

सुनि अपयश अति विकल भये रघुवर मन माँहीं।
सोचें-सेवा सरल सुखद यहि जग महँ नाहीं॥
कठिन हृदय करि त्यागि सती सीता को करिहौं।
मन ही निशि दिवस विरह ज्वाला महँ जरिहौं॥
दृढ़ निश्चय करि बात प्रभु, भरत शत्रुहन तैं कही।
तुरत सुनत विप सरिस बच, मूर्छा दोउनि कूँ भई॥

जानकी निर्वासन

[६६६]

इति लोकाद् बहुमुखाद् दुराराध्यादसंविदः ।
पत्या भीतेन सा त्यक्ता प्राप्ता प्राचेतसाश्रमम् ॥
(श्री भाग० ६ स्क० ११ म०, १० श्लो०)

छप्पय

तब निज तन की शपथ दई लछिमन समुझाये।
प्रभु आयसु सिर धारि सीय सँग बनहिँ सिधाये॥
सीय सिहावत जाइ तापसिनि के बन्दीं पद।
करिके सुरसरि पार लखन रोये ह्वै गद्गद॥
सुनि निर्वासन सहमि सिय, पति प्रति श्रद्धा प्रकट करि।
शून्य सरिस ससार लखि, बोलीं नयननि नीर भरि॥

हाय! यह ससार कैसा विचित्र है। इसमे विष और अमृत का अद्भुत ढङ्ग से सम्मिश्रण है। बहुत से अपने प्रेम से हमे खरीद लेते हैं। आत्म-समर्पण करके मन से मन और तन से तन मिलाकर एक हो जाते हैं। हमे अपने मे अन्तर्भूत कर लेते हैं। दो तन होने पर भी उनमे एक ही प्राण सचार करते हैं। इसके विपरीत कुछ ऐसे भी मिल जाते है, जिन्हे हमारा यह प्रेम अखरने लगता है। वे दो हृदयो को एक न मिलने देना नही चाहते। वे पयपानी के सदृश मिले हुए हमारे मन को कपट खटाई डालकर फाडने के प्रयत्न मे रहते हैं। हमारे सयोग-सुख को सहन न करके वियोग कराने का उद्योग करत रहते है। उन्हे पता नही वियोग मे समीपता और बढ जाती है। विरह मे अपना प्रियतम और भी निकट आ जाता है। विरह को स्वेच्छा से कौन चाहेगा? पर चाहे भलेही न चाहे किंतु जो प्रेम करेगा उसे

---

* श्री शुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! इस प्रकार भाँति-भाँति की व्यर्थ की बातें बनाने वाले बकवादी, हठी, अज्ञ पुरुषो मे भयभीत हुए अपने पति द्वारा परित्यक्ता जनकनन्दिनी भगवान वाल्मीकि के आश्रम पर आकर रहने लगी।"

विरह वेदना सहनी ही पडेगी। सयोग वियोग के ही लिये है। गर्भ धारण करने पर प्रसव-पीडा न उठानी पडे, यह असभव है। काजर की कोठरी मे प्रवेश करने पर कुछ कालिमा तो लगेगी ही। इसलिय प्रेम क पन्थ को छुरे को धार के समान बताया है। मोम के तुरग पर चढ कर अनल मे होकर जाने के समान है। जिस ससार मे परनिंदा, पर-चर्चा ईष्या, द्वेष घृणा, कलह दम्भ तथा पर पीडा पहुँचाने का ही प्राबल्य है उसमे किसी से क्या आशा की जाय। कौन प्रेम के रहस्य को समझेगा। ससार तो सबको अपने ही समान समझता है। आज तक ससार मे ऐसा कोई नही हुआ, जिसकी ससारी लोगो ने निन्दा न की हो, जिस पर झूठे सच्चे लाछन न लगाय हो। किन्तु प्रेमी इन बातो से डरते नही। वे तो निन्दा लाछन को अपने प्रेम मे सहायक समझत हैं। सत्य तो छिपता नही। वह तो कभी न कभी प्रकट हो ही जाता है। निंदक निन्दा न करें, दुर्जन लोग लाछन न लगावें, तो सत्य प्रेम की परीक्षा कैसे हो। सुवर्ण तो खरा तपाने से ही होता है। हीरे की चमक तो खराद पर रेतने स ही बढती है। पर-सुख असहिष्णु ईर्ष्यालु तथा निन्दक ससार म न हो तो करुणरस की अभिव्यक्ति कैसे हो। नवो रसो मे करुणरस ही तो प्रधान है। उसी रस से तो अन्य रस जीवन-स्फूर्ति पाते हैं। करुणा-रस का प्राकट्य दुख मे वियोग मे होता है। राम-चरित तो सुखद है, किन्तु सीय चरित तो करुण रस का जनक है। इसीलिये करुणरस के अमर कवि भगवान् वाल्मीकि जी ने रामचरित को प्राधान्य न देकर सीता के महत् चरित्र को ही प्रधानता दी है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! धोबी के मुख से सीता के सम्बन्ध की निन्दा पूर्ण बातें सुनकर श्रीराम तुरन्त ही लौट पडे"।

एक गुप्तचर प्रहरी ने प्रभु को प्रहरी के वेष मे भी पहिचान लिया किन्तु वह सम्मुख नही आया। जिन गुप्तचरो को सकेत था वह सकेत के निर्दिष्ट स्थान पर उपस्थित हुए। खिन्न मन से उन्होंने अपने राजसी वस्त्राभूषणो को धारण किया। वे रथ मे बैठकर अन्त पुर की ओर चले। वहाँ उन्होने देखा—'पलंग पर अस्त व्यस्त भाव से जानकी जी पडी है। उनके काले-काले घुंघराले बाल इधर-उधर टेढे मेढे अनियमित भाव से हिल रहे है, कुछ मुड रहे कुछ दब रहे हैं। केशपाशो मे लगी हुई मालती की माला म्लान-सी हो रही है। उनका मुखचन्द्र एक स्वाभाविक आभा के कारण सम्पूर्ण भवन को आलोकित कर रहा है। श्रीराम ने अनेको बार जानकी को देखा था, किन्तु आज उनका अनवद्य सौन्दर्य अद्भुत प्रतीत हुआ। इस समय उनका स्वाभाविक सौन्दर्य विकसित हो रहा था, उसमे कृत्रिमता की गध नही थी। उनकी स्वास से एक प्रकार की गध निकल रही थी, जो भगवान् के चित्त मे मादकता तथा चचलता उत्पन्न कर रही थी। सीताजी स्वप्न मे भी हा प्राणनाथ! हृदयधन ये ही शब्द कह रही थी और पति के कठ मे अपनी भुजायें डालने को बार-बार कोमल कर को बढा रही थी।

श्रीराम सीता के इस अद्भुत, अलौकिक, अनुपम अनवद्य सौन्दर्य को देख कर किंकर्तव्यविमूढ से बन गये। वे सोचने लगे—'हाय! इसी प्रतिप्राणा प्रियतमा का मुझे परित्याग करना होगा। निष्पाप जनकनन्दिना का निर्दयतापूर्वक निर्वासन करना होगा। हाय! मेरा हृदय फट नही जाता। इस वियोग के पूर्व ही मेरी मृत्यु क्यो नही हो जाती। कमा बीभत्स कार्य है, लोकरजन कितना क्रूर कठिन कार्य है। इसमे आत्मा का ही हनन नही करना पडता अपितु सर्वस्व बलिदान करना होता है। जो मोन

जागते, उठते बैठते सदा मेरा ही चिन्तन करती रहती है उस अनन्य प्राणा पतिव्रता पत्नी का, पापरहित होने पर भी, मुझ पामर को परित्याग करना होगा। ऐसी कीर्ति को ऐसे अमर यश को धिक्कार है। लोकापवाद करने वाले नहीं सोचते, जिनकी हम निन्दा कर रहे है उनके हृदय में इन बातों को सुनकर कितनी ठेस लगेगी।" श्रीराम मणिमय भित्ति के सहारे खड़े-खड़े यह सब सोच रहे थे, मणियों के प्रकाश में सीताजी का मुख अत्यत ही भला मालूम पड़ता था। उसी समय सीताजी को अंतरग परिचारिकाने आकर प्रभु को प्रणाम किया और अत्यन्त ही मद स्वर मे हाथ जोड़े हुए द्वार के समीप आकर कहा—'देव! महारानी जी प्रतीक्षा करते-करते अभी ही सोई हैं। कुछ क्षण पूर्व ही उनकी आँखें झपी हैं।"

भगवान् मुख पर उँगली रखते हुए कौशल से अश्रु पोछकर द्वार के बाहर निकल आये और शनैः-शनैः दासी से कहने लगे—"तुम्हारी स्वामिनी जब भी जागे, तभी कहना। आज मैं राजकार्य में अत्यन्त ही व्यस्त हूँ। मै कुछ एकान्त मे विश्राम चाहता हूँ। जब तक मै स्वयं न जागूं, तब तक मुझे न जगाया जाय।"

"जो आज्ञा" कह कर दासी ने सिर झुकाया। श्रीराम सीधे ही अपने ऐकान्तिक सदन में चले गये। वह भवन कलाकारों ने अत्यन्त ही सुन्दरता के साथ सजाया था। वह भवन न बहुत बड़ा था, न अत्यंत छोटा। उसमें की बातें कोई दूसरा सुन नहीं सकता था। उसके आस-पास सुदरं पुष्प और फलों से युक्त वृक्ष थे। दूर-दूर पर सावधानी के साथ संगीन लिये हुए प्रहरी घूम रहे थे। श्रीराम के अत्यन्त ही अन्तरङ्ग विश्वास पात्र स्वामी-भक्त सेवक वहाँ नियुक्त थे। भगवान् को उधर आते देखकर सेवक उनका

अनुगमन करने लगे। सब को लौट जाने की आज्ञा देकर भगवान् ने एकाकी ही भवन मे प्रवेश किया। वह परम प्रकाशवान् भवन आज प्रभु को अंधकारमय प्रतीत हुआ। आज से सब वस्तुओं मे शून्यता का सा अनुभव करने लगे, उनका चित्त चचल हो रहा था। व लबी-लबी सासें ले रहे थे। वे इधर से उधर बिना प्रयोजन के ही टहल रहे थे। फिर बिना सोचे ही सहसा पलँग पर पड गये। निद्रा का नाम नही। भावो के बवडर उठ उठ कर श्रीराम के चित्त को चचल कर रहे थे। भगवान् ने अपनी साकेतिक ध्वनि की। सहसा हाथ जोडे हुए प्रहरी ने प्रवेश किया। सम्मुख प्रणाम करते हुए प्रहरी को देखकर प्रभु बोले—"मेरे सखा प्रीतिवर्धन को बुला लाओ।"

जो आज्ञा—"कहकर प्रहरी तुरन्त गया और कुछ ही काल मे प्रतिवर्धन के सहित उसने पुन: प्रवेश किया। प्रीतिवर्धन भगवान् के अत्यन्त मुँह लगा हुआ था, वह उनका सखा था मत्री था, विदूषक था। आते ही उसने हँसकर कहा—"क्या आज मान-लीला हो रही है। देवी से खट-पट हो जाने के कारण यहाँ एकान्त मे खट पाटी लिए पडे हैं क्या महाराज!"

गभीरता पूर्वक श्रीराम ने कहा—"प्रतिवर्धन, हँसी विनोद छोडो। आज मैं अत्यन्त दुखी हूँ, तुम मेरे अन्तरङ्ग हो! आज मुझे बडी आन्तरिक अशान्ति है। तुम मुझे उचित सम्मति दो।'

श्रीराम के मुख से सहसा गभीर और अत्यन्त ही करुणा पूर्ण दुख-भरी वाणी सुनकर प्रीतिवर्धन सहम गया। वह भगवान् के अत्यन्त निकट पहुँचकर बोला—"प्रभो! आज यह अनहोनी बात कैसी? सदा प्रसन्न राम के मुख पर विषाद की रेखा किस लिए आपके नेत्रो से निरन्तर नीर क्यो निकल रहा है?"

भगवान् ने गद्गद कठ से कहा—"सखे! क्या बताऊँ।

राज मैं वेष बदलकर न.र मे लागो के आन्तरिक भावो को जानने के लिये गया था। वहाँ मैंन लागा के मुख से सीता के सम्बन्ध मे विलक्षण ही बातें सुनो ?'

"क्या सुनो प्रभो!" प्रीतिवधन न ममता भरी वाणी मे पूछा। श्रीराम ने कहा—'धोबी अपनी स्त्री स कह रहा था, तू रात्रि मे अन्यत्र क्यो रही। मैं राम नही हूँ, जा रावण के घर मे रही सीता को फिर से रख लिया, मैं एसा धम और सदाचार-विरुद्ध आचरण न करूँगा।"

प्रीतिवर्धन ने कहा—'प्रभो! अज्ञ पुरुषो की बातो पर ध्यान न देना चाहिये। निन्दको के मुख मे ता जो भी बात आ जाती है, बक देते हैं।"

श्रीराम ने कहा—"अकेले धोबी की ही बात नही और भी लोगो के मुख से मैंने सुना। अन्तर इतना ही था साक्षर लोग शिष्टता तथा कला कौशल के सहित निन्दा करते हैं। मूर्ख लोग बिना लगाव लपेट के सीधी बात कह देते है।"

सरलता के साथ प्रीतिवर्धन ने कहा—"महाराज! यह कोई नई बात थोडे ही है। यह चर्चा तो प्राय लोगो मे होती रहती है। मैंने भी बहुत सुनी थी, किन्तु महाराज से इसलिये नही कहा, कि मूर्खों की बातो को क्या कहना।"

चौंककर भगवान् ने पूछा—"तुमने क्या सुना। तुम भी सच-सच बताओ।"

प्रीतिवर्धन ने गम्भीर होकर कहा—"अजी महाराज! एक बात हो तो बतावें। जितने मुख उतनी बातें। टकासो जिह्वा हिलाने मे लगता ही क्या। सत्य बात की छान बीन कौन करता है। मूर्ख लोग तो सुनी सुनाई बातो मे अपनी ओर से नमक मिरच लगाकर बढा-चढा कर कह देते है।"

श्रीरामचन्द्र जी ने उत्सुकता के साथ कहा—"सुनें भी तं
तुमने सीता के सम्बन्ध मे क्या सुना ?"

प्रीतिवर्धन बोला—"अब महाराज ! क्या बताऊँ ? को
कहते हैं कि सीताजी को राम ने मोहवश रख लिया, कोई कह
है जिसे कभी रावण गोद में उठाकर ले गया और इतने दि
तक अपने वश मे रखा, उस जानकी का चरित्र पवित्र होने
सदेह है। कोई कहता है, अब श्रीरामजी ने मार्ग खोल दिया
अब स्त्रियाँ जहाँ चाहेगी वहाँ घूमेगी। जहाँ चाहेगी वह
स्वच्छन्द होकर रात्रि मे रहेगी। श्रीरामचन्द्रजी ने आदर्श
ऐसा उपस्थित कर दिया। 'यथा राजा तथा प्रजा।" इस प्रका
लोग भाँति-भाँति की बातें कहते हैं।"

अब तो श्रीरामचन्द्र जी की आँखें खुली। उन्होंने सोचा-
"अरे यह नई बात नही है। गुप्तचरो ने शील सकोच वश अना
वश्यक समझकर मुझे इन बातो को सूचना नही दी। इससे तो
प्रतीत होता है कि नगर मे राज्य मे, देश विदेशो मे, चिरकाल
से यह चर्चा है। उचित भी है, लोगो को तो दोष देखने मे ही
आनन्द आता है। लङ्का मे अवधपुरी का तो कोई था ही नहीं
जहाँ सीताजी की शुद्धि हुई थी। अग्नि मे तपाने पर भी वे विशुद्ध
ही सिद्ध हुई। अब तो मुझे सोता का त्याग अवश्य हो करना होगा।
इस कलक को त्याग द्वारा धोना होगा। इस अपयश का वियोग
के दुख से माजन करना होगा।" ससार मे जिसकी अपकीर्ति
फैली है वह जीवित ही मृतक के समान है। सत्य बात तो प्रकट
हो हो जायगी। तब लोग सीता का महत्व समझेंगे। फोडे के
पकने पर ही उत्तमता से चिकित्सा हो सकती है। कच्चे को
काटने से या दबाने से कोई लाभ नही। इस समय तो मुझे हृदय

कठोर करके सीता को छोडना ही पडेगा।' इस प्रकार श्रीराम-चन्द्र जी रात्रि भर चिन्ता मे ही मग्न रहे।

अरुणोदय के पूर्व ही श्रीराम ने अपने निजी दूत को बुलाकर कहा—"मेरे भरत को अभी तुरन्त मेरे समीप ले आओ।"

भगवान् की आज्ञा पाते ही दूत शीघ्रता के साथ राजकुमार भरत के भवन मे पहुँचा। प्रथम उसने भरतजी का जय जयकार किया और फिर महाराज रामचन्द्र की आज्ञा, सुनाते हुए कहा—'महाराज आपको अभी इसी समय देखना चाहते है।'

'आज आह्निक कृत्य किये ही बिना महाराज मुझे किस काम के लिये बुला रहे है ऐसी उत्कठा के साथ भरत जी पैदल ही श्रीरामचन्द्र जी के समीप पहुँचे श्रीराम के चरणो मे प्रणाम करके उनकी आज्ञा से बैठ गये और हाथ जोडकर विनीत भाव से बोले—"आर्य ने मुझे किस कार्य के लिये बुलाया है। आपका मुख कमल आज मुरझाया हुआ क्यो है। आपके नेत्रो से निरन्तर नीर क्यो बह रहा है? आपकी आँखें आज सूज क्यो रही है।"

भरत जी के इन ममता भरे वचनो को सुनकर आँसू पोछते हुए श्रीराम बोले—'भरत! तुम मुझे प्राणो से भी अधिक प्यारे हो। तुमसे मैं अपनी मानसिक व्यथा कहता हूँ। अयोध्यापुरी मे रहने वाले रजक के मुख मे जनकनन्दिनी के सम्बन्ध मे जो बातें आज मैंने सुनी है उनके कारण मै दो ही कार्य कर सकता हूँ। या तो जानकी का त्याग, अथवा अपने प्राणो का परित्याग।"

भरतजी ने कहा—"विभो! वह रजक कौन है? उसने ऐसी बात क्यो कही?"

श्रीरामचन्द्र जी ने कहा—"भैया! एक रजक की ही बात नही। इसकी तो राज्य भर मे चर्चा है। अब जानकी के परित्याग

के अतिरिक्त अपवाद के मार्जन का अन्य उपाय नही।"

दीनता के साथ भरतजी ने कहा—"प्रभो! जानकी ज नन्दिनी मनसावाचा कर्मणातिशुद्धा हैं। वे आपकी सहध है अयोनिजा है उनमे कोई दोष नही। लोगों को बकने दें उनका परित्याग न करें। हा! भगवती सीता आपके बिना जीवित रह सकेंगी। कैसे वे पति से परित्यक्त होने पर धारण कर सकेंगी। देव! अपने निश्चय पर पुनः विचार क ऐसी कठोर आज्ञा कभी न दे।"

श्रीरामचन्द्र जी ने दृढता के साथ कहा—"मेरा नि अटल है। उसमें कोई परिवर्तन नही। परिवर्धन न सशोधन नही। छूट नही। तुम अभी जाओ और जानकी जंगल में ले जाकर छोड आओ।"

इतना सुनते ही भरत जी अचेतन होकर भूमि पर गिर प उन्हें अपने शरीर की भी सुधि न रही तब तो श्रीरामचन्द्र सोचा। बात बिगडना चाहती है। तुरन्त उन्होने सेवक के शत्रुघ्नजी को बुलाया। उनको भी यही आज्ञा दी वे भी सु ही मूर्छित हो गये।

अब श्रीराम ने सोचा लक्ष्मण के अतिरिक्त इस कठिन क को करने में कोई भी समर्थ नही हो सकता। अतः उन्होने तु सुमित्रानन्दवर्धन लक्ष्मीसम्पन्न लक्ष्मण जी को बुलाया। भग की आज्ञा पाकर तुरन्त लक्ष्मण जी उनके समीप आये श्रीरा चन्द्रजी को अत्यन्त उदास रोते देखकर तथा भरत शत्रुघ्न मूर्छित देखकर लक्ष्मण जी दुखी हुये। वे इस महान् दुख का कारण ही न समझ सके। उन्होने विनीत भाव से अपने बड़े श्रीरामचन्द्र जी से पूछा—"आर्य! आज इतने उदास क्यो हैं! आपकी कान्ति मन्द क्यो पड़ रही हैं? आपका मुख कमल कुम्

लाया हुआ क्यो है ? ये मेरे दोनो भाई भरत शत्रुघ्न मूर्छित क्यो पड़े हैं ? मुझे अपने शोक का कारण बताइये ।''

अत्यन्त क्षीण स्वर विषण्णवदन श्रीरामचन्द्रजी ने आदि से अन्त तक अपवाद का वृत्तान्त बताया और अन्त मे कहा— 'भैया, यश ही जीवन है। ससार मे जिसका अपयश है जिसे सब लोग धिक्कारते हैं जिसको सब निन्दा करते हैं, जिस पर सब थूकते हैं उसका जीवन धिक्कार है। आज पृथ्वी पर मेरा अपयश हो रहा है। सभी मेरे चरित्र के सम्बन्ध म सन्देह करने लगे हैं। सभी को सीता के सती न होने मे शका है सदाचार से कलकित मे जीकर क्या करूँगा। आज विधाता मेरे विपरीत हो गया है। मेरा दुर्भाग्य तो देखो।'

जो भाई सदा मेरे अनुकुल रहते थे, आज वे मेरे प्रतिकूल आचरण कर रहे हैं। जो मेरी आज्ञा को कभी नही टालते थे वे आज मेरी बात नही मान रहे हैं। जब मनुष्य पर विपत्ति आती है तो अकेली नही आती। सभी बातें उसके विरुद्ध हो जाती हैं। अपने पराये बन जाते हैं।

यह सुनकर साहस के स्वर मे लक्ष्मणजी ने कहा—'स्वामिन्! आप चिन्ता का परित्याग करें, धैर्य को धारण करें। ससार तो बहुमुख है। सबको कोई प्रसन्न नही रख सकता। मै आपका सेवक उपस्थित हूँ ही, फिर आप चिन्ता क्यो करते है। मै उस धोबी को अभी बुलाता हूँ। प्रेमपूर्वक उससे अभी बातें पूछता हूँ। उसकी ऐसी धारणा हो कैसे गई। आपके राज्य मे तो छोटे से छोटे व्यक्ति को भी किसी प्रकार का कष्ट नही पहुँचाया जाता। आप तो सर्वप्रिय हैं। आपके सम्बन्ध मे उस रजक को ऐसी शका कैसे हुई ? जगज्जननी जानकी के सम्बन्ध मे कोई भी बुद्धिमान् व्यक्ति सन्देह नहीं कर सकता। उनके पातिव्रत के प्रभाव को

देवता तक स्वीकार करते है। मधुर वचनो से उस रजक को समझाऊँगा, उससे सब बातें पूछूँगा।"

श्रीराम ने दुखित चित्त से कहा—"भैया ! रजक को बुलाना व्यर्थ है। यदि तुम्हारा मेरे प्रति अनुराग है, यदि तुम मुझमे प्रेम करते हो। तो मेरी आज्ञा मानो। तुम्हे मेरी शरीर की शपथ है। तुम मेरी आज्ञा मे ननुनच मत करो। मैं लोकापवाद के पीछे अपने प्राणो का परित्याग कर सकता हूँ।' प्राणो मे भी प्यारे तुम भाइयो को छोड सकता हूँ, फिर सीता का छोडना तो कोई बात ही नही। तुमने यदि मेरी बात न मानो तो मैं तुम पर रुष्ट हूँगा। तुम्हे मेरे चरणो की शपथ है। मुझे समझाने की चेष्टा मत करो मेरी आज्ञा का पालन करो। आज ही, अभी ही, सीता को रथ पर चढाकर ले जाओ। गगाजी के उस पार भगवान् वाल्मीकि मुनि का आश्रम है। उधर ही अरण्य मे अकेली सीता को छोड आओ। किसी से कहना भी मत।"

श्रीरामचन्द्रजी की ऐसी कठोर आज्ञा सुनकर लक्ष्मणजी दुखी हुए। उन्होने हाथ जोडकर रुँधे हुए कठ से कहा— 'प्रभो ! मैने तो सदा के लिये आपको समर्पित कर दिया है। आपकी आज्ञा मे मुझे उचित अनुचित का विचार करना ही नही है आप जो भी करेंगे, उचित ही करेंगे। मै आपकी आज्ञानुसार देवी को वन मे ले जाऊँगा।"

श्रीरामचन्द्रजी ने कहा—"लक्ष्मण ! मुझे तुमसे ऐसे ही उत्तर की आशा थी। अब देर करने का काम नहीं। सुमन्त से कहकर शीघ्र ही मेरा सुन्दर रथ मँगवाओ, जिसमे अच्छी जाति के शीघ्र चलने वाले घोडे जुते हो। देखो, सीता को अभी मालूम न हो। परसो उसने मुझसे कहा था—"मैं,पुन. वन मे जाकर मुनियो के आश्रम देखना चाहती हूँ। वहाँ मै मुनि-पत्नियो की सुन्दर-

सुन्दर वस्त्राभूषणों से पूजा करूंगी। तुम उसे मुनि आश्रम दिखाने के ही व्याज से ले जाओ।'

'जो आज्ञा' कहकर लक्ष्मण खिन्न मन से चल दिये वे मार्ग मे सोचते जाते थे—'यह सेवक धर्म भी कैसा कठोर धर्म है इसमे कैसे-कैसे करुणापूर्ण कार्य करने पडते है। इन्ही हाथो ने लंका मे सीताजी को अग्नि मे तपाने के लिये आग दी थी। अब ये ही हाथ भगवती सीता को हिंसक जन्तुओ से भरे अरण्य मे छोडने जा रहे है। हाय! सेवक स्वेच्छा से मर भी नही सकता। स्वामी की आज्ञा कैसे टाली जा सकती है। परशुराम जी को पिता की आज्ञा से भाइयो तथा माता का वध करना पडा। मुझे भी निर-पराध सीता को जगलो मे छोडना होगा। इसी प्रकार की बातें सोचते-साचते वे भगवती सीता के भवन मे पहुँच गये। और उन्हे सिर से प्रणाम करके हाथ जोडकर बोले— देवि! महाराज ने मुझे आज्ञा दी है कि आपको मैं ऋषि मुनियो के आश्रमो मे गगा पार ले चलूं। आप शीघ्र ही तैयार हो जाय।"

सीताजी ने अत्यन्त ही उल्लास के साथ कहा—"लक्ष्मण! मै बडी भाग्यशालिनी हूँ, जो महाराज मेरी छोटी छोटी बातो का भी इतना ध्यान रखते हैं। उस दिन तो महाराज के भी साथ चलने की बात थी।"

कौशल से आंसू पोछते हुए लक्ष्मण ने कहा—"भाभी! महा-राज को लोकरंजन मे इतना अवकाश कहां? आजकल तो वे प्रजा को प्रसन्न करने पर ही कटिबद्ध हैं। मुझे आपको वन ले जाने की आज्ञा हुई है।"

प्रसन्नता प्रकट करते हुए जानकी जी ने कहा—"कोई बात नही है, राजकाज ऐसा ही होता है। प्रजा की प्रसन्नता के लिये राजाओं को सब कुछ करना होता है। अच्छी बात है, मै

ऋषि-पत्नियों को देने के लिये बहुत से बहुमूल्य वस्त्राभूषणों को भी साथ लेकर चलूँगी। तुम्हारे रथ मे इतना स्थान है न?"

लक्ष्मणजी ने कहा—"देवि! आपको ले जाने के लिये महाराज ने अपना निजी रथ भेजा है। उसमे आपको तनिक भी कष्ट न होगा। हाल न लगेगा। उसके पीछे स्थान है जिसमे आप चाहे जितनी सामग्री रख सकती हैं।"

यह सुनकर मिथिलेश-कुमारी बडी प्रसन्न हुई और बोली—'मुझ दासी का महाराज इतना सम्मान करते हैं। यह मेरा सौभाग्य है। लक्ष्मण! वह तुम्हारा रथ कहाँ खडा है,इन दासियों को उसे दिखाओ। मुनिपत्नियो की पूजा के लिये ये पेटियो भरे बहुमूल्य रेशमी वस्त्र, भाँति-भाँति के आभूषण, मोतियो की मालाओ के पिटारे चन्दन, कपूर, धूप आदि ये सब पूजन की वस्तुएँ य ले जाकर रथ मे रखें। मै भी वस्त्र बदल कर अभी आ रही हूँ "

लक्ष्मण जी ने सीता जी की आज्ञा का पालन किया। उन्होने सब वस्तुओ को यथास्थान रख दिया। सीताजी को बिठाकर स्वय भी रथ मे बैठ गये। सूत ने रथ हाँक दिया। जानकी जी ने कहा—"लक्ष्मण मै अपनी सासो की चरण वन्दना करलूँ।' लक्ष्मण जी यह सुनकर माताओ के महलो मे मैथिली को ले गये। सबसे मिल भेट कर सबकी वन्दना और प्रदक्षिणा करके सीताजी ने कहा—'तुम्हारे भाई कहाँ हैं?"

लक्ष्मणजी ने कहा—'देवि! वे आज किसी अत्यन्त गम्भीर राजकाज मे इतने व्यस्त है कि इस समय उनका दर्शन अत्यन्त ही कठिन है। रथ मे ही बिठाकर तुम्हे उनके भवन की प्रदक्षिणा कराये देता हूँ।"

सीताजी ने कहा—"हाँ ठीक है। आर्यपुत्र के कार्यों मे हमे

विक्षेप न करना चाहिये। शीघ्र ही तो हमे लौटना है। अच्छी बात है, उनके भवन की प्रदक्षिणा करते हुए चलो। लक्ष्मण जी ने ऐसा ही किया। सीताजी ने पति के पादपद्मो मे मनसे ही प्रणाम किया। तपस्विनियो के दर्शनो की प्रसन्नता मे इतनी आनन्द विभोर थी कि लक्ष्मण जी के भावो को न समझ सकी। लक्ष्मण जी अत्यत दुखी थे वे दृष्टि बचाकर अपने उमडते हुए अश्रुओ को पोछ लेते थे। सीताजी सोच रही थी। शीघ्र ही लौटकर मैं अयोध्या के वन उपवनो को पुन देखूँगी। लक्ष्मण सोच रहे थे कि देवी का यह अवध का अन्तिम दर्शन है। घोडे बडे कष्ट से चल रहे थे। गोमती नदी के समीप पहुँचते-पहुँचते भगवान् भुवन भास्कर ने दु ख और शोक के कारण अपना मुँह छिपा लिया। लक्ष्मण जी ने कहा— देखो! यही हम आज विश्राम करेंगे। यह कहकर वे अपने राजकीय भवन मे रथ को ले गये। सेवको ने सभी प्रबन्ध कर दिया। लक्ष्मण ने जब देखा जानकी जी बहुमूल्य वस्त्रो के भार से सम्राज्ञी के वेष मे अपने विश्राम भवन मे जा रही है तो वे ढाह मार कर रोने लगे। सीता जी ने अत्यन्त ही प्यार से कहा—'वत्स लक्ष्मण! तुम इतने अधीर क्यो हो रहे हो। मैं देखती हूँ अवध से ही तुम अत्यधिक अनमने से दिखाई देते हो। प्रतीत होता है, तुम अपने भाई के वियोग को सहन नही कर सकते। कोई बात नही। दो चार दिन मे लौटकर चलेंगे ही देखो मैं तो नही रोती हूँ। तुम्हारी भाँति मैं भी तो श्रीराम को प्यार करती हूँ। मेरा भी तो उनके प्रति अनुराग है।" इतना सुनते ही लक्ष्मण जी की हिचकियाँ बँध गई वे बालको की भाँति फूट पडे। वात्सल्यमयी जनकनन्दिनी ने उन्हे प्यार किया, पुचकारा, और शयन करने का आदेश देकर स्वय भी सो गई।

प्रातःकाल होते ही लक्ष्मण जी ने सारथी से कहा—रथ को शीघ्र जोतो। आज मैं भगवती भागीरथी में ही स्नान करूँगा। पतित-पावनी सुरसरिता के सलिल को सादर सिर पर चढ़ाकर ही मैं प्रा॰. मध्याह्न दोनो समय की सन्ध्याओं को साथ-साथ करूँगा।" लक्ष्मण जी के ऐसे वचन सुनकर सारथी ने शीघ्रता के साथ घोड़े खोले उन्हें इधर-उधर टहलाया, थपथपाया और फिर उनके दाने खाने के तोवडाओ को खोलकर रथ में जोत दिया। वायुवेग के समान रथ जा रहा था। सीता जी बालकों की भाँति रथ में से नद नदी, पर्वत झरने तथा वृक्षों को देखती जाती थी। और प्रसन्न होती जाती थी। कुछ दिन चढ़ते-चढ़ते वे कलिमलहारिणी भगवती भागीरथी के तट पर पहुँच गये। गङ्गाजी के दर्शन करके जानकी जी का हृदय खिल उठा। उन्होंने श्रद्धा भक्ति सहित सरिता प्रवरा जान्हवी के जल को सिर पर चढ़ाया। लक्ष्मणजी ने स्नान करके नित्य कृत्य किया। तब सीता जी ने कहा—'वत्स! लक्ष्मण! देखो मैं अयोध्या से तुम्हारे लिये प्रसाद बना कर लाई हूँ। तुम यहाँ गङ्गा जी के किनारे बैठकर जल पान कर लो। तब उस पार मुनियों के आश्रम में चलेंगे।"

रुँधे हुए कंठ से लक्ष्मणजी ने कहा—"देवि! मुझे अभी भूख नहीं। उस पार चल कर देखा जायगा। हमें शीघ्र उस पार चलना चाहिये। रथ इसी पार रहे। यह सुन्दर नौका पार करने को तैयार है।"

सीता जी ने कहा—"फिर ये वस्त्राभूषण कैसे चलेंगे?"

लक्ष्मण जी ने कहा—"आप चलें भी इन सब की व्यवस्था हो जायगी।"

सीता जी के मन में तो मुनि पत्नियों के दर्शनों की अत्यधिक

डरती है। वह भी राजाराम के शासन को मानती है देवि! आप मुझ पर अप्रसन्न न हो। अभी इस अभागे के अपराधों की ओर ध्यान दें। माँ अपनी सन्तान समझ कर मेरे ऊपर कृपा रख।

लक्ष्मण की इन हृदय हिला देने वाली बातों को सुनकर जानकी का भी हृदय फटने लगा। वे झक-झका कर बोली—"लक्ष्मण! तुम्हें मेरी शपथ है, तुम मुझे सच-सच बात बता दो। तुम मृत्यु क्यों चाहते हो, तुमने तो कभी स्वप्न में भी मेरा कोई अपराध नहीं किया है, फिर तुम मुझसे किस कारण क्षमा-याचना कर रहे हो? देखो, मेरा भी तुम पर अधिकार है। उसी अधिकार के नाते मैं तुमसे आग्रह करती हूँ। तुम सत्य बात को छिपाओ मत। अपनी आन्तरिक वेदना का कारण मुझे बता दो। तुम्हें महाराज की शपथ है?"

इतना सुनते ही लक्ष्मण मूर्छित होकर भूमि पर गिर पड़े। वे हाथ जोड़े हुए जल से निकली मछली के समान तड़प रहे थे। जानकी उनके दुःख का कुछ भी कारण न समझ सकी। उन्होंने अत्यन्त स्नेह से लक्ष्मण को उठाया। उनकी धूलि झाड़ी और अत्यन्त ही ममता-भरी वाणी में बोली—"वत्स! तुम इतने अधीर क्यों हो रहे हो? तुम पुरुष होकर भी अपने को नहीं सम्हाल सकते। बात तो बताओ। तुम्हारे भाई का तो कल्याण है न? राज्य में किसी प्रकार के अनिष्ट की आशंका तो नहीं है?"

लक्ष्मण जी ने रोते-रोते कहा—"देवि? तुम्हें महाराज ने त्याग दिया है।"

लक्ष्मण के मुख से ऐसी अभूतपूर्व बात सुनकर सीताजी अवाक् रह गईं। वे स्वप्न में भी ऐसी बात सुनने की आशा

नही रखती थी। उन्होंने चौककर पूछा—'क्या आर्य पुत्र ने मुझे त्याग दिया है ? क्या ऋषि आश्रम दिखान के बहाने से तुम मुझे यहाँ बीहड वन मे अकेली छोडने ही के लिये लाये हो ?"

लक्ष्मणजी की हिचकियाँ बँध गई थी। वे बालका का भाँति रुदन कर रहे थे। रोते-रोते उन्होने कहा—'हाँ देवि ! यही बात है। इसमे मेरा कोई अपराध नही।'

इस वान को सुनत ही जानकी मुर्छित हा गई। लक्ष्मण घबडा गए। समीप के ही सर वे कमल के पत्ते तोड लाये। वे उनसे सीताजी को वायु करन लग। कुछ काल मे चेतना होने पर जानकीजी ने आँखें खोली और बोली—"देवर ! तुम मुझसे हँसी तो नही कर रहे हो ? आर्यपुत्र ने मुझ मे ऐसा क्या दोष देखा ? किस अपराध पर उन्होन मेरा परित्याग किया ?"

लक्ष्मणजी ने आँसू पोछते हुए कहा—"माँ मैं क्या बताऊँ। यह राज्य सिंहासन ऐसी दूषित वस्तु है कि इसकी रक्षा के लिए मनुष्य को सबको छोडना पडता है। किसी रजक ने आपकी निन्दाकी। आप इतन दिन रावण के घर मे रही इसकी आलोचना की, इसी पर महाराज ने मुझे आज्ञा दे दी कि सीता को जगल मे छोड आओ।"

इतना सुनते ही सीताजी बिलखने लगी। वे रोते-रोते बोली—"लक्ष्मण ! मैंने मन से भी कभी पर-पुरुष का चिंतन किया हो तो यह पृथ्वी अभी फट जाय। सूर्य अभी गिर कर मुझे नष्ट कर दे। मैं तो मनसा वाचा कर्मणा सदा श्रीराम की ही दासी रही हूँ और सदा रहूँगी। तुमने ता लका मे मुझे जलने को आग दी थी। तुम्हारे सामने देवताओं ने क्या कहा था। तुम्हे तो मेरे चरित्र पर सदेह नही है ?"

लक्ष्मणजी के मानो पके हुये हृदय पर किसी ने बाण मार

दिया हो। अकबका उठे और बोले—"माँ ! तुम कैसी बात रही हो। ससार में तुम्हारी शुद्धि पर जो सदेह करेगा किसी भी लोक में स्थान न मिलेगा। जगज्जननी, तुम गगा की भाँति विशुद्ध हो मैंने कभी मन से भी तुम्हारे चरित्र संदेह किया हो तो यह आकाश मेरे ऊपर टूट पड़े। पृथ्वी जाय। देवी ! श्रीरामचन्द्रजी भी आपके चरित्र पर सदेह न करते। वे भी तुम्हे प्राणो से भी अधिक प्यार करते हैं। तुम्ह परित्याग के कारण उन्हे भी अत्यन्त ही आन्तरिक दु.ख है किन्तु लोकापवाद से बचने के लिये उन्हे यह कठिन काय करन पडा। माताजी ! समीप ही भगवान् वाल्मीकि मुनि का आश्र है, आप वही अपने शेष जीवन को बितावें।"

इतना सुनते ही सीताजी पुनः मुछित हो गईं। लक्ष्मणज किंकर्तव्य-विमूढ बने हुए थे। वहाँ रहने मे उनका हृदय फट रहा था। मूछित अवस्था मे मिथिलेशकुमारी को छोड़कर जाने का भी उनका साहस नही होता था। अतः वे पुनः अपने वस्त्र से उनको वायु करने लगे। कुछ काल मे जानकीजी ने पुनः नेत्र खोले और बिलखिलाती हुई बोली—देवर ! दिन तो अपने काट ही लूँगी किन्तु श्रीरामचन्द्र के मुख को बिना देखे मैं कैसे जीवित रह सकूँगी आश्रम की तपस्विनी जब मुझसे पूछेगी—तुम्हारे पति ने तुम्हारा किस अपराध पर परित्याग किया, तो मैं उनसे क्या कहूँगी। स्त्रियों के लिए चरित्र-सम्बन्धी दोष अत्यन्त ही लज्जा जनक और असह्य है। मैं किस मुख से कहूँगी, कि मेरे पति ने मेरे चरित्र मे दोष देखकर मुझे घर से निकाल दिया है। हाय ! मैं स्वेच्छा से मर भी नही सकती। मेरे उदर में रघुवंश की थाती है। श्री राम के वंश को चलाने वाला बीज रखा है। उसे नष्ट करने का मुझे अधिकार नही है। पति से परित्यक्ता नारी का क्या महत्व

है। नारी की शोभा पति से ही है। अपनी कीर्ति की रक्षा के लिये श्रीराम ने मुझे त्यागा है, तो संसार में उनकी कीर्ति अमर रहे। यदि मुझ निर्दोष का उन्होंने प्रजा की प्रीति के लिये परित्याग किया है तो वे सदा प्रजा के प्रीति-भाजन हों। वे मुझे भले ही त्याग दें। मैं तो उन्हें अपने हृदय से पल भर के लिये भी नहीं त्याग सकती। वे मुझे चाहे महलों में रखें या वन में। मेरे तो सर्वस्व वे ही हैं किन्तु देवर, तुम जाकर कुलगुरु वशिष्ठ जी महाराज से पूछना, कि आपने मुझ पापरहित निर्दोष अपनी आश्रिता दासी का परित्याग किया है। क्या यह आपके कुल की कीर्ति के अनुरूप है। क्या मनसा वाचा तथा कर्मणा पति में ही अनुरक्त चक्रवर्ती महाराज दशरथ की पुत्रवधू अनाथिनी की भाँति बीहड़ वन में अकेली भटकती फिरे? क्या इससे रघुकुल की कीर्ति बढ़ेगी? क्या यह कार्य शास्त्रसम्मत है?' फिर कुछ देर ठहर कर बोली—'अच्छा लक्ष्मण! रहने दो। अब इन बातों के पूछने से लाभ क्या? तुम आर्य-पुत्र के चरणों में मेरा प्रणाम निवेदन कर देना और कह देना शरीर से आपने मुझे पृथक् कर दिया है, किन्तु मेरा मन तो सदा आपके चरणों के समीप ही मँडराता रहेगा। सुमित्रानन्दवर्धन मेरे प्यारे देवर! तुम मेरी सब सासों को बिना भेदभाव के प्रणाम कहना और कह देना तुम्हारी बहू जंगली जन्तुओं के साथ वन में सुख पूर्वक विचरण कर रही है। लक्ष्मण! देखो! मुझसे कोई भूल में अपराध हो गया हो तो उसे भूल जाना। अब मैं सदा के लिये तुमसे विदा होती हूँ। इतना कहते सीताजी पुनः मूर्छित होकर गिर पड़ीं।"

लक्ष्मणजी अब और अधिक न सह सके। उन्हें वहाँ ठहरना कठिन हो गया। वे मूर्छित पड़ी हुई जानकी की प्रदक्षिणा करके

और उनको पदधूलि को मस्तक पर चढाकर रोते-रोते चल दिये। इतने मे ही जानकीजी को पुनः चेत हुआ। जाते हुए लक्ष्मण को देखकर उन्होने अत्यन्त करुणा-भरी वाणी मे पुकारा। सौमित्र, मेरे प्यारे देवर ? मेरी एक बात और सुनते जाओ।"

अब तक जो राजरानी थी, सहस्त्रो दास-दासी जिसकी सेवा मे सदा सलग्न रहते थे, आज वह बीहड़ वन मे अकेली कुररी पक्षी की भाँति रो रही है और दीन होकर अपने देवर को पुकार रही है। लक्ष्मणजी इसे सहन न कर सके। वे पुनः लौटकर सीताजी के समीप आ गये।

सीताजी ने सम्मुख लक्ष्मण को देखकर कहा—देवर, अब तुम जा ही रहे हो, अच्छा जाओ, किन्तु जाते समय तुम मेरे पेट को देखते जाओ। मैं गभवती हूँ, इस ससार का मुँह काला हो। पीछे कोई यह न कहे—गर्भस्थ बालक श्रीराम के नहीं हैं।"

इतना सुनते ही लक्ष्मण मूर्छित होकर गिर पड़े और रोते-रोते बोले— 'माँ, तुम मुझे लज्जित क्यो कर रही हो। देवि ! श्रीराम के सम्मुख भी मैंने कभी आपके मुख को नही देखा है। मैं सदा आपके चरणो की ही ओर देखता रहा हूँ, फिर यहाँ एकान्त स्थान मे मैं आपके उदर को कैसे देख सकता हूँ। ससार जानता है कि आप गर्भिणी है। श्रीराम का अमोघ वीर्य आपके उदर मे है। देवि ! सब दिन एक से नही रहते। कभी श्रीराम को भी अपने कृत्यपर पश्चात्ताप होगा। तुम पुनः राजरानी बनोगी। तुम्हारे बच्चे इस रघुवश के सिंहासन् पर बैठेंगे। इन दुखो के दिनो को किसी प्रकार काट लो। भगवान् वाल्मीकि बड़े दयालु है। वे त्रिकालज्ञ ऋषि मुनि की भाँति तुम्हारा पालन करेंगे। अब मुझे जाने की आज्ञा दो।"

जानकीजी ने लक्ष्मण से कहा—"वीरवर, तुम्हारा मार्ग मंगलमय हो श्रीराम के तुम सच्चे सेवक हो। तुमने उनकी आज्ञा का पालन करके अत्यन्त ही उचित कार्य किया। मैं तुम पर प्रसन्न हूँ। तुम्हें आशीर्वाद देती हूँ। संसार में तुम्हारी कीर्ति सदा बनी रहे। मेरा अपवाद संसार में बना रहे इसकी मुझे चिन्ता नहीं, किन्तु मेरे त्याग से आर्यपुत्र का यश निर्मल हो उनकी कीर्ति विशुद्ध बनी रहे, तो मुझे इस त्याग से भी संतोष है। अच्छा तुम जाओ किन्तु इस अभागिनी को भूल मत जाना। प्राणनाथ को कभी प्रसग उठने पर मेरी स्मृति दिलाते रहना।

इतना कहकर जानकी जी चुप हो गई। लक्ष्मणजी ने उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम किया और वे रोते हुए चल दिये। जानकीजी निर्निमेष दृष्टि से लक्ष्मण की ही ओर देखती रही। कभी वे सोचती कि लक्ष्मण मेरे देवर हैं, उन्होने कहीं मेरे साथ हँसी तो नही करी। फिर सोचती—"लक्ष्मण ने तो आज तक मुझसे हँसी नही की। वे तो सगी जननी की भाँति सदा मेरा आदर कर रहे हैं। कभी उन्हें आशा होती कि सम्भव है लक्ष्मण फिर लौटकर आवें और मुझे लिवा ले जायँ। जब उन्होंने देखा लक्ष्मण नौका में बैठकर चले गये और उस पार भी पहुँच गये, तब उन्हें विश्वास हो गया कि मैं पति द्वारा अवश्य ही त्याग दी गई। इस बात का स्मरण होते ही वे उच्चस्वर से रुदन करने लगी। उनके करुण क्रन्दन की ध्वनि सम्पूर्ण वायुमंडल में गूँजने लगी। पशु पक्षी एकत्रित हो गये। हस अपने अपने पंखों से उनको वायु करने लगे। सारस अपनी चोंचों में जल भरकर उनके ऊपर डालने लगे।

सूतजी कहते है—'मुनियो! लक्ष्मण सीताजी को छोड़कर चले तो गये किन्तु वे फिर एक छोटी सी नौका पर चढ़कर

इस पार आ गये और एक पेड़ की आड़ में छिपकर देखते रहे अब क्या होता है।"

जानकी निरतर रो रही थी। उन्हें कुछ सूझता ही नहीं था। भगवान् वाल्मीकि मुनि का आश्रम वहाँ से समीप ही था। आश्रम के छोटे-छोटे ऋषि-कुमारो ने जब सीताजी का रुदन सुना तो वे दौडकर सीताजी के समीप गये। वे सीताजी के रूप को देखकर आश्चर्य चकित हो गये। उन्होने पृथ्वी पर ऐसा सौंदर्य आज से पहले कभी नही देखा था। दुखित जानकी को कुररी की भाँति रुदन करते देखकर बालको का हृदय भर आया। वे दौड़ते हुए भगवान् वाल्मीकिजी के समीप गये और शीघ्रता के साथ हाथ जोडकर बोले—"भगवन्! भगवन्! यहाँ समीप में ही एक सुन्दरी रमणी अत्यन्त करुणापूर्ण वाणी मे रुदन कर रही है। वह मृत्युलोक की महिला तो प्रतीत होती नहीं। सम्भव है स्वर्ग से उतर आई हो। आप चलकर उसे सान्त्वना दीजिये। उसके कष्ट को दूर कीजिये।"

दया के सागर मुनि छोटे-छोटे भोले-भोले ऋषि कुमारो के मुख से यह समाचार सुनकर उनके साथ चल दिये। उन्होने देखा, कटी हुई सुवर्ण लतिका के समान स्वर्गलोक से गिरी, देवाङ्गना के समान, नारायण से रहित लक्ष्मी के समान सीताजी भूमि पर पडी है और मुक्त कठ से रुदन कर रही हैं। कुमारो से घिरे वृद्ध ऋषि को अपनी ओर आते देखकर वे उठकर खडी हो गई और उन्होने हाथ जोडकर सिर झुकाकर मुनि के पदापद्मो मे प्रणाम किया। मुनि ने अत्यन्त स्नेह से जानकीजी को आशीर्वाद दिया—"पुत्री! तुम अपने पति की अत्यन्त ही प्यारी हो, तुम वीर पुत्रों को प्रसव करके वीर माता हो।"

जानकीजी लज्जा के कारण गड़ी-सी जा रही थी। उन्हें

मुनि की ओर देखने का भी साहस नही होता था, वे सोच रही थीं—"मुनि ने मेरा परिचय पूछा, तो मै क्या कहूँगी। कही मुनि को भी मेरे चरित्र पर सदेह न हो।"

अत्यन्त लज्जा और सकोच के कारण सिकुडी लजाती तथा हरिणी के समान भयभीत हुई सीताजी के सकोच को दूर करते हुए मुनि बोले—"बेटी। तुम अपने मन मे किसी प्रकार का संकोच मत करो। मैंने अपने योगवल से सब बाते जान ली है। तुम महाराज दशरथ की पुत्रवधू श्रीरामजी की पत्नी तथा मिथिलाधिप महाराज जनक की अयोनिजा प्यारी पुत्री हो तुम्हारे पति ने लोकापवाद के भय से तुम्हे पापरहित का परित्याग कर दिया है। तुम पतिव्रताओ मे मुकुटमणि हो। तुम किसी प्रकार की चिन्ता मत करो। भगवान् जो भी करते है अच्छा ही करते है। (शिव का कोई कार्य अशिव नही होता।) इससे तुम्हारी कीर्ति संसार में व्याप्त होगी। महाराज दशरथ मेरे परम मित्र थे। तुम्हारे पिता जनक तो मेरे शिष्य ही हैं। जैसे तुम जनक को पिता मानती हो उसी प्रकार मुझे भी अपना पिता समझो। तुम मेरी धर्म की पुत्री हो। मेरे आश्रम मे तुम अपने पिता के भवन के समान सुखपूर्वक रहो। आश्रम की तपस्विनी तुम्हारी सब प्रकार से देख रेख करेंगी। तुम्हें कोई कष्ट न होगा।"

भगवान् वाल्मीकि की बातो को सीता जी ने सिर झुका कर स्वीकार किया। वे बिना कुछ उत्तर दिये चुपचाप हाथ जोड़े हुए मुनि के पीछे-पीछे चल दी। आश्रम मे पहुँचकर मुनि ने सीताजी को अर्घ्य दिया। आश्रम से थोडी दूर पर ही तपस्विनी मुनि पत्नियो के रहने का आश्रम था। उसमे बहुत सी तपस्विनी तपस्या करती थी। मुनि सीताजी को लेकर तपस्विनियों के समीप गये। बहुत दिनो मे मुनिको अपने यहाँ आये देखकर सभी

तापसियों ने आकर मुनि के चरणों में प्रणाम किया और हाथ जोड़कर बोली— 'प्रभो बहुत दिनों के पश्चात् आपने कृपा की। हमारे योग्य कोई सेवा हो तो आज्ञा कीजिये।"

मुनि ने कहा—"तपस्विनियो! यह महाराज दशरथ की पुत्र-वधू महाराजाधिराज श्रीरामचन्द्रजी की पत्नी और मिथिलाधिप महाराज जनक की पुत्री है। इसके पति ने बिना अपराध ही लोक पवाद के भय से इसका परित्याग कर दिया है। यह परमपतिव्रता और सती शिरोमणि है। यह सदा से सुख में पली है। मुझे इसका विशेषरूप से पालन करना है। यह मेरी पुत्री के समान है। तुम सब इसका सावधानी के साथ लालन पालन करो। इसे किसी प्रकार का कष्ट न हो, यह इस बात का अनुभव न करे कि मैं परदेश में हूँ।"

मुनि पत्नियों ने हाथ जोड़कर कहा—"प्रभो! हम आपकी आज्ञा का श्रद्धासहित पालन करेंगी। सीता को कोई भी कष्ट न होने पावेगा। हम इनकी सावधानी से देख रेख करेंगी।" मुनि पत्नियों के आश्वासन से मुनि का प्रसन्नता हुई। उन्होंने शिष्यों द्वारा तुरन्त ही एक सुन्दर सुहावनी पर्णकुटी सीताजी के लिये बनवा दी सीताजी उस कुटी में रहकर भगवान् वाल्मीकिजी की सेवा करने लगी। उनके स्थान को लीप देती। उनके पूजा के वर्तन मल देती। आश्रम में झाड़ू बुहारू दे देती। वे एक बार फलाहार करके ही रहती और निरन्तर राममन्त्र का जप करती रहती। मनसे सदा रामरूप का चिन्तन करती रहती। भगवान् वाल्मीकि उनका सदा बड़ा ध्यान रखते। किसी भी व्यवहार से सीता को यह अनुभव न होने पावे कि मैं किसी दूसरे के यहाँ रह रही हूँ। कुछ ही काल में सीताजी आश्रम में सर्वप्रिय बन गई। बालक से लेकर वृद्ध तक सभी स्त्री पुरुष उनसे प्रेम करने लगे। वे सभी

ऋषि कुमारों को अपने पुत्र की भाँति मानतीं। सभी की सेवा में सदा संलग्न रहतीं। इस प्रकार आश्रम में रहकर वे एक सच्ची तपस्विनी का जीवन व्यतीत करने लगीं।

इधर वृक्ष की आड़ में छिपे हुए लक्ष्मणजी ने देखा कि भगवान् वाल्मीकि जी स्वयं ही आकर सीताजी को अपने साथ आश्रम में ले गये हैं, तो उन्हें सन्तोष हुआ। वे पुनः इस पार आये और रथ में बैठकर रोते हुए अयोध्या की ओर चल दिये।

सूतजी कहते हैं—'मुनियो! लक्ष्मणजी ने वे सभी वस्त्र-भूषण निषादों के हाथ मुनियों के आश्रमों में पहुँचा दिये। वे सीताजी के ही सम्बन्ध में सूतजी से बातें करते हुए अयोध्या की ओर जा रहे थे। उसी दिन शीघ्रता से चलकर वे अयोध्यापुरी में पहुँचे। श्रीरामचन्द्रजी के चरणों में रोते रोते उन्होंने निवेदन किया—'प्रभो! मैं आपकी आज्ञा का पालन कर आया।' इतना सुनते ही श्रीरामचन्द्रजी माताजी का स्मरण करके उनके वियोग में मूर्छित हो गये। सीताजी के परित्याग के कारण समस्त नगर में तथा राज्य में शोक छा गया। सभी सीताजी का स्मरण करके फूट-फूट कर रोने लगे। माताओं की तो बुरी दशा थी, जानकी के बिना महल उन्हें काटने दौड़ता था। वह श्रीहीन राजमहल जगदम्बा जानकी के बिना सूना-सूना प्रतीत होता था।

छप्पय

पति यश जग महँ अमर होहिं तुम तव सुख पाओ।
देवर! मेरो उदर-निरखि नृपके ढिंग जाओ॥
गर्भवती हूँ दोष फेरि मोकूँ मत दइयो।
पति परमेश्वर चरन कमल महँ वन्दन कहियो॥
वचन सुनत मूर्छित भये, गिरे भूमि पै ह्वै विकल।
लखि प्रसंग अति ही करुण, भये दुखित खग मृग सकल॥

सीता-सुत लव-कुश

[६९७]

अन्तर्वत्न्यागते काले यमौ सा सुषुवे सुतौ।
कुशो लव इति ख्यातौ तयोश्चक्रे क्रिया मुनिः॥ ❀

(श्री भा० ९ स्क० ११ अ० ११ श्लो०)

छप्पय

चरन धूरि सिर धरि लखन लौटे इत जबहीं।
सुनि सब मुनि वाल्मीकि ले गये सियकूँ तबहीं॥
मुनि पत्निनि सग रखी सुता सम जनक दुलारी।
सेवा मुनि की करें सबनि की भई पियारी॥
समय पाइ द्वै सुत जने, सुनि सब अति हर्षित भये।
करन जात संस्कार मुनि, तुरत जानकी ढिग गये॥

एक कथा है। कोई महात्मा थे। बडे सुख से रहते थे उनके आवास के आस पास पहरे भी लगते थे। किसी दूसरे सत ने कहा— तुम किस चक्कर में फँस गये। कुए में से निकले खाई में गिर गये। साधु को इन वाहरी दिखावटी कार्यों से क्या काम? चलो मेरे साथ इन सबको छोड दो।" महात्मा विरक्त सब कुछ छोड छाडकर उन सतजी के साथ चल दिये। रात्रि भर चलते रहे। प्रातःकाल गंगा तट पर किसी सुंदर आश्रम पर पहुँचे। नित्य कर्मों से निवृत्त होकर वे राजर्षि एक ओर शान्त चित्त से बैठ गये। उनके साथी सत एक प्रकार के गर्व का अनुभव कर रहे थे कि मैंने इनका प्रपंच छुडा दिया। इन्हें विरक्त बना दिया। भिक्षा का समय हुआ। सतजी ने उन राजर्षि से कहा— 'तुम यहीं बैठे रहना मैं गाँव से मधुकरी माँगकर लाता हूँ। बहुत दिनों तक चिकनी चुपडी उडाई है। आज भिक्षान्न का स्वाद देखो।

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन! गर्भवती सीता ने समय आने पर दो यमज (जुडँले पुत्र) पैदा किये। वे संसार में लव कुश इन नामों से विख्यात हुए। महामुनि वाल्मीकिजी ने उनके सभी जात कर्म आदि संस्कार किये।"

राजर्षि ने कहा—"जो आज्ञा, मै यहीं बैठा हूँ" यह सुनकर सन्त भिक्षा के लिये चले गये। सयोग की बात उसी समय कोई राज-पुत्र वहाँ आया। उसके साथ सेना थी। जब ये महात्मा राजा थे तब उसके पिता की और इनकी मैत्री थी। राजकुमार ने साधु होने पर भी एक बार महात्मा के दर्शन किये थे और उनके ठाठ देखे थे। जब उसने इन महात्मा को आज इस प्रकार बैठे देखा तो वह उनके पैरो मे पड गया। वहीं डेरे तम्बू लगा दिय। पहरे लगने लगे। इसी बीच सन्तजी भिक्षा लेकर लौट आये। वे भीतर जाना चाहते थे, पहरे वालो ने उन्हे रोक दिया। महात्मा की आज्ञा मिलने पर उनका भीतर प्रवेश हुआ। वहाँ उन्होने देखा राजकुमार भाँति-भाँति के स्वादिष्ट पदार्थों से सुन्दर थाल सजाये महात्मा के सामने उपस्थित है और उनसे भगवान् के प्रसाद पाने की प्रार्थना कर रहा है। इतने मे हा सन्त पहुँच गये। राजर्षि ने उन्हे प्रणाम किया और बोले—"भगवन्! मै आपकी प्रतीक्षा ही कर रहा था। यह बच्चा मुझसे बडी देर से प्रसाद पाने की प्रार्थना कर रहा है, आपकी आज्ञा हो तो प्रसाद पाऊँ, आपकी आज्ञा न हो तो न पाऊँ।"

सत ने हाथ जोड़कर कहा—"महात्मन्! आप प्रेमपूर्वक प्रसाद पावें। यह लोकोक्ति सर्वदा सत्य है, कि मनुष्य के चलने के पहिले ही उसका भाग्य उसके आगे-आगे चलता है। भाग्यशाली जगल म भी जा बैठे तो वहाँ भी मंगल हो जाता है। भाग्यहीन को देखकर उदार भी अनुदार हो जाते है। सौभाग्यशाली जहाँ भी रहेगे सुख से रहेगे, प्रेमियो को सर्वत्र प्रेमी मिल जायँगे और दुष्ट दुष्टो मे ही घुल मिल जायँगे। अतः भाग्य पर भरोसा करके सभी परिस्थितियो में प्रसन्न रहना चाहिये। भाग्य

मे जितना सुख-दुख बदा होगा वह कही भी चले जाओ वही मिलेगा।'

इसी प्रकार एक दूसरी भी कहानी है। एक आदमी अत्यन्त दरिद्र था। उसे कभी न तन ढकने को वस्त्र मिलता था, न खाने को भर पेट अन्न। एक दिन उसने विचार किया। यहाँ से १००-२०० कोस दूर चला जाऊँ। वहाँ मेरा दरिद्र नष्ट हो जायगा। उसके पैरो मे बडी-बडी बिवाइयाँ फट रही थी। इतनी दूर की यात्रा करनी थी, अत. कही से घी मोम लाकर वह बिवाइयो में भरने लगा। उसी समय उसने देखा उससे दो हाथ आगे एक दूसरा पुरुष भी अपनी बिवाइयो मे मोम घी भर रहा है। उस आदमी ने पूछा—'भैया, तुम कौन हो? तुम क्यो बिवाइयो मे मोम घी भर रहे हो, तुम्हे कहाँ जाना है।"

उस व्यक्ति ने कहा—'मैं दरिद्र हूँ।"

इस आदमी ने चौंककर पूछा—'तुम किसके दरिद्र हो? कहाँ जाना चाहते हो?'

उसने कहा—'मै तुम्हारा ही दरिद्र हूँ। मैंने सुना है तुम १००-२०० कोस दूर जा रहे हो, इसलिये मैं तुमसे दो हाथ आगे चलूंगा।'

इस आदमी ने कहा—'अरे, जब तू वहाँ भी मेरा पीछा न छोड़ेगा, तो मेरा जाना ही व्यर्थ है। यह लोकोक्ति सत्य है—भाग्य सबके साथ जाता है।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! सौभाग्यवती सीता को एकाकी वन मे छोड़ते समय लक्ष्मण का हृदय फटने लगा। वे सोचने लगे—"सदा सुख मे रहने वाली मिथिलेशकुमारी इस बीहड वन मे कैसे रहेगी। वनवास के समय तो इनके प्राणनाथ इनके साथ थे। वे पल-पल पर इनकी चिन्ता रखते थे।" इन्हे प्रसन्न करने

की सदा चेष्टा करते रहते थे। फिर भी इनका मुख-कमल मुरझा जाता था। समस्त ऋषि मुनि श्रीराम का बड़ा आदर करते थे। सीता की सुकुमारता देखकर सभी का हृदय फटने लगता था। सभी इन्हें सुखी बनाने का प्रयत्न करते। फिर वह १४ वर्ष की बात थी। जैसे तैसे वनवास की अवधि कट गई। अब तो जानकी जी को जीवन भर वन में ही रहना है। कैसे वे रहेंगी, कौन उनकी देख रेख करेगा। इन बातों को स्मरण करके उनका चित्त चञ्चल सा हो रहा था। जब उन्होने लाल्मीकि जी की बातें सुनी और वे उन्हें अपनी सगी पुत्री के समान मानकर आश्रम ले गये, तब उन्हें सन्तोप हुआ। वे सोचने लगे—"मुनि की छत्र छाया में मैथिली को क्या कष्ट हो सकता है। महाराज जनक तो एक देश के राजा हैं, ये तो संसार के स्वामी हैं। बड़े-बड़े राजे महाराजे इनके चरणों में आकर मस्तक झुकाते हैं। घंटों प्रतीक्षा करते रहते हैं। इनकी कृपा-कटाक्ष के लिये बड़े-बड़े सम्राट् लालायित रहते हैं। महाराज जनक तो इन्हें अपना गुरु ही मानते हैं। हम सबके तो ये कुल-देवता ही हैं। इनके सान्निध्य में सीता जी को कष्ट न होगा। इनका भाग्य इनके साथ है। इनकी रक्षा इनका पातिव्रत ही करेगा। इनका सुन्दर शील स्वभाव सब को हठात् अपनी ओर आकर्षित कर लेगा। मुनि पत्नियों में रहकर पति-प्राणा सीता जी को अधिक कष्ट न होगा। यही सोचकर वे अपने मन को सन्तोप देते हुए अवध-पुरी लौट गये।

लक्ष्मणजी ने देखा श्रीरामचन्द्र जी अपने भवन से निकलते नहीं। वे बिना खाये पिये उदास बैठे हुए हैं, उनके नेत्रों से निरन्तर अश्रु प्रवाहित हो रहे हैं। लक्ष्मण जी श्रीराम की ऐसी दयनीय दशा देखकर अत्यन्त दुखी हुए। उन्होंने अपने भाई के चरण

छूकर कहा—"प्रभो ! आप जगज्जननी जानकी के लिये चिन्ता न करें। प्रभो ! दुख सुख सब भाग्य से मिलता है। आप जैसे धर्मात्मा को भी इतना क्लेश मिल रहा है, यह सब भाग्य की विडम्बना है। स्वामिन् ! आप अपने को सम्हाले। जिस अपवाद के कारण अपने निर्दोष सती सीता का परित्याग किया है वह अपवाद और भी अधिक होगा। लोग कहेगे—"पर घर मे रही सीता के लिये श्रीरामचन्द्र इतने दुखी हो रहे है। जो हुआ सो हुआ। आप धैर्य धारण करें, शाक को त्याग दें। राज-काज करें। प्रजा के लोगो को दु.ख न हो। राजा का काम ही है प्रजा का रजन करना।"

अपने छोटे भाई लक्ष्मण की बाते सुन कर लीला-मनुष्य श्रीराम बोले—'लक्ष्मण ! ससार मे तुम्हारे समान हितैषी कोई भी नही। भैया ! तुमने बहुत ही सुन्दर सम्मति मुझे दी। अब मै शोक का परित्याग करता हूँ। अब मैं तत्परता से प्रजा का पालन करूंगा।" यह कह कर वे राज-सभा मे गये और सभी कार्यों की देखभाल करने लगे।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! श्री रामचन्द्र जी ने कह तो दिया, किन्तु वे मन से सीता जी को भुला न सके। सीता जी की याद करके वे सदा दुखी रहते थे।"

यह सुन कर शौनक जी ने पूछा—"सूतजी ! भगवान् को चिरकाल तक अपनी प्रियतमा का इतना अधिक वियोग जन्य दु.ख क्यो सहना पड़ा ?"

इस पर हँसते हुए सूतजी बोले—"महाराज ! भगवान् को क्या सुख और क्या दुःख। भगवान् तो सुख दुख से परे हैं। वे तो प्राणियों के कल्याणार्थ नर लीला करते है। फिर भी जब नर-

नाट्य करते हैं तो उसे पूरा उतारते है। अपने किये का फल भोगते है।"

इस पर शौनक जी ने कहा—"सूतजी! जव नर-नाट्य ही है वनावटी लीला है तो भगवान् इतना करुणा का स्रोत क्यो बहाते हैं? क्यो उसे सत्य की भाँति दर्शाते है।"

इस पर हँसते हुये सूतजी वोले—"महाराज! जो सत्य सा प्रतीत न हो वह नाटक ही क्या। वनावटी होन पर भी जो पूरा उतरे वही तो यथार्थ खेल। एक राजा था, उसके यहाँ एक वहुरूपिया था। वह अनेक रूप रखकर राजा को आश्चर्य मे डालता था। एक दिन राजा ने कहा—'हमे त्यागी का खेल दिखाओ। हम तुम्हे एक सुन्दर सा घाडा देंगे।"

उसने राजा से कुछ काल का अवसर माँगा। एक वडे भारी त्यागी तपसी मौनी महात्मा का वेप वनाकर वडी-वडी दाढी और जटा वढा कर वैठ गया। वहुत से लोग दर्शनो के आने लगे। वह किसी से न बोलता, न किसी से कुछ लेता। उसकी प्रशसा सुनकर राजा भी गये। मोतियो का थाल भरकर ले गये। बहुत सा धन भट के लिये ले गये। महात्मा के सम्मुख सारा धन रख कर हाथ जोड कर वैठ गये। महात्मा ने उस धन का स्पर्श तक नही किया। कहला दिया कि या तो इसे उठाकर दूसरो को वाँट दो या उसे नदी मे फेंक दो। यहाँ एक पैसा भी न रखना। राजा ने सेवकों को श्राज्ञा दी कि इसे गरीबो को वाँट दो। ऐसा ही हुआ राजा प्रणाम करके चल दिया। वह वनावटी त्यागी अपना साधु पने का वेप छोडकर राजा के सम्मुख जय जयकार करके नट वेप मे आकर वोला—"अन्नदाता मुझे अव घोडा मिलना चाहिये।" राजा ने आश्चर्य चकित होकर देखा यह तो वही वहुरूपिया है। हँसकर वोले—"भैया! स्वाग तो तैने वडा

सुन्दर दिखाया, किन्तु हम पूछते हैं, जब हमने तुझे लाखो की सम्पत्ति दे ही दी थी, तो तैने उसे ले क्यो नहीं लिया। उससे तो हजारो घोडे आ जाते। अब तू एक घोडे के लिये गिडगिडा रहा है।"

उस बहुरूपिया ने कहा— 'प्रभो! उस समय यदि मैं एक पैसा भी ले लेता तो वह त्यागी का खेल ठीक न उतरता। त्यागी वेष मे यदि मैं कुछ ले लेता तो वह त्यागी का खेल न होकर बनावटी त्यागी का खेल हो जाता। मैंने वेष की रक्षा की। अब मैं नट के वेष मे हूँ। इसलिये आप एक पैसा भी दे दें तो उसे मैं प्रसन्नता पूर्वक माथे चढाऊंगा।"

राजा ने कहा—अच्छा हम तुम पर बडे प्रसन्न हैं। अब के तुम हमे ऐसा खेल दिखाओ जो हमने कभी न देखा हो।"

उसने कहा—"बहुत अच्छा महाराज, दिखाऊंगा।" यह कह कर उसने कुछ समय मांगा। उसने एक बहुत ही सुन्दरी का रूप धारण किया। एक आटे का आदमी बनाया। वह इतनी चतुरता से बनाया गया था कि कोई उसे पहिचान नही सकता था। एक दिन उसने हल्ला कर दिया कि मेरे पति का देहान्त हो गया, मैं सती हो जाऊँगी। बहुत से लोग जुट आये। उसके पति को लेकर श्मशान की ओर चले। वह सोलह शृंगार करके पति के पीछे पीछे रुपय वर्षाती हर्षाती हुई चली। मांग म सिन्दूर भर कर नेत्रो मे काजल लगाकर वह बिना विषाद के पति के साथ जा रही थी। श्मशान मे पहुँचकर चिता बनाई गई पति का शव रख उसमे आग लगाई और स्वय भी चिता मे बैठ गई। राजा भी सती होने का समाचार सुनकर देखन आये। हँसते हुय सती को जलते देखकर राजा को बडा आश्चर्य हुआ। सती जब आधी

जल गई तब उसने राजा से कहा—"महाराज, ऐसा खेल कभी आपने देखा है ?"

उसकी वाणी पहिचान कर राजा बोले—"अरे! तू तो भैया बहुरूपिया है। शीघ्रता मे चिता मे से निकल आ। क्यों खेल में व्यर्थ अपने शरीर को जला रहा है ?"

वह सती का वेष बनाये बहुरूपिया बोला—"देखिये, महाराज! इस समय मैंने सती का वेष बना रखा है। सती चिता से नीचे पैर रख दे या रो पडे तो वह सती नही। अब यदि मैं चिता मे से निकलता हूँ, तो सती का खेल पूरा न उतरेगा। सती धर्म को लाछन लग जायगा। अत: मुझे इसी मे भस्म हो जाने दीजिये।"

राजा ने ऐसा ही किया, उसकी स्मृति मे वहाँ उन्होंने एक स्तम्भ बनवा दिया। वे प्राय: कहा करते थे—'हमे सच्चा खेल उस नट ने ही दिखाया था।" सो ये भगवान्–तो नटवर हैं, ये जैसा स्वाँग बनाते हैं, उसका यथावत् पालन करते है। इस बात को दिखाने के लिए कि—"अवश्यमेव भोक्तव्य कृत कर्म शुभाशुभम्" इन्होने भृगुजी का शाप स्वीकार किया और उसका फल भी भोगा।"

इधर शौनकजी ने पूछा—"सूतजी ? भगवान् को भृगुजी ने शाप क्यो दिया ?-कृपा करके उसका कारण हमे सुनाइये। तब आगे बढिये।"

यह सुनकर सूतजी बोले—"महाराज, यह तो बहुत लम्बी कथा है। सक्षेप मे मै आपको सुनाता हूँ। पूर्वकाल मे देवता और असुरो का बडा भारी घनघोर युद्ध हुआ। उसमे देवताओं ने असुरों को परास्त किया। देवताओं से पीड़ित असुर भृगुजी के आश्रम पर गये। उस समय भृगुजी आश्रम पर नहीं थे।

भृगुपत्नी ने उन असुरो को आश्रय दिया। वह तत्परता के साथ उनकी रक्षा करने लगी। असुरो को जब अवसर मिलता तो देवताओ पर प्रहार करते, फिर भृगुजी के आश्रम पर आकर सुरक्षित हो जाते। देवता भृगुजी के तप तेज से डरते थे। अत कुछ कर भी नही सकते थे। उनके एकमात्र आश्रय तो भगवान् विष्णु ही थे। उन्होने जाकर भगवान् से निवेदन किया—'प्रभो! भृगुपत्नी हमारे शत्रु को आश्रय दे रही है। उनके कारण सभी लोक अत्यन्त दुखी हो रहे है। धर्म का ह्रास हो रहा है। आप सर्वज्ञ तथा सर्व समर्थ है। इस सकट से हमारी रक्षा करे।"

भगवान् ने कुछ सोचकर कहा—'देवताओ, यद्यपि स्त्री को सर्वथा अवध्य बताया है फिर भी जिसके कारण सभी लोगो को त्रास हो, जिससे धर्म की तथा सदाचार की हानि होती हो वह प्राणी चाहे पुरुष हो या स्त्री उसका वध करना ही श्रेयस्कर है। मै भृगुपत्नी का अपने चक्र से वध करके तुम्हारे भय को दूर करूंगा। तुम लोग चिन्ता मत करो।' देवताओ को इस प्रकार आश्वासन देकर भगवान् महर्षि भृगु के आश्रम पर गये और उन्होने भृगुपत्नी का सिर चक्र से काट दिया। इससे असुर निस्सहाय होकर भाग गये।

जब यह समाचार भगवान् भृगुजी ने सुना तो उन्हे अत्यन्त दुख हुआ। उन्होने हाथ मे जल लेकर भगवान् को शाप दिया—"विष्णो! तुमने मेरी अवध्या पत्नी का वध किया है। इसलिये आपको शाप देता हूँ कि आप को मर्त्यलोक मे मनुष्य देह धारण करनी पडेगी। वहाँ चिरकाल तक तुम्हे स्त्री का वियोगजन्य दुख सहना पडेगा।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! भगवान् की प्रेरणा से भृगुजी ने शाप दे तो डाला किन्तु उन्हे मन से बडा दुख हुआ वे

सोचने लगे—"मैने सर्वज्ञ विष्णु को शाप देकर बडा बुरा किया। इस पाप से मेरा छुटकारा कैसे हो।" यह सोचकर वे घोर तप करने लगे। उनके तपसे प्रसन्न होकर भगवान् उनके सम्मुख प्रकट हुए और बोले—"मुनिवर! आप कोई चिन्ता न करें। यह सब मेरी प्रेरणा से ही हुआ। मै मर्त्यलोक मे अवतार लेकर अत्यन्त करुणापूर्ण लीला करूँगा।" भगवान् के इस आश्वासन से भृगु जी को सतोष हुआ

सूतजी कहते है—"मुनियो! इसीलिये भगवान् को सीताजी के वियोग मे इतना दुख सहना पड़ा। या यो कहिये कि भृगुजी के शाप को सत्य करने के लिये ही भगवान् ने ऐसी लीला रची।"

यह सुन कर शौनक जी ने कहा—"सूतजी! यह सब भगवान् की इच्छा से ही होता है, वे कर्म बन्धन मे तो बँधे ही नही। उन्हें शाप कौन दे सकते है। अपनी इच्छा से ही लोगो को सुख देते और भाँति-भाँति की क्रीड़ा करते हैं। हाँ, तो अब हमे सीता जी को अग्रिम कथा सुनाइये। वाल्मीकि मुनि के आश्रम पर रहकर जगज्जनी जानकी ने क्या किया?"

इस पर सूतजो बोले—"सुनिये महाराज, अब मैं आपको भगवती सीता का समाचार सुनाता हूँ। हाँ, तो सीताजी वाल्मीकि मुनि के आश्रम पर सुखपूर्वक रहती थी। मुनि उनका पुत्री की भाँति पालन पोषण करते थे। सीताजी भी राजरानीका अभिमान छोड़कर दासी की भाँति प्रसन्न चित्त से मुनि की सेवा मे सलग्न रहती। वे सदा मन से श्रीराम रूप का चिन्तन करती रहती। वाणी से राम-मत्र का जप करती रहती, मुनि उनकी सेवा से बड़े प्रसन्न रहते। आश्रम की सभी तापसी उन्हे प्राणो से भी अधिक प्यार करती थी। सीता जी को वन मे सब सुख थे, एक

ही दुख था, कि वे अपने प्राणनाथ से पृथक रह कर जीवन धारण कर रही थी वह भी अपने स्वार्थ के निमित्त नहीं उनकी धरोहर की रक्षा के निमित्त रघुवश की वश परम्परा को अक्षुण्ण बनाने के स्वार्थ से वे जीवित थी। शनैः शनैः काल बीतता गया। सीता जी के गर्भ के दिन पूरे हो गये। एक दिन अर्ध-रात्रि के समय ऋषि कुमार दौड़ते हुए आये और शीघ्रता के साथ बोले— "भगवन्! भगवन्! भगवती सीता देवी ने दो यमजपुत्र उत्पन्न किये हैं। वे देखने मे दो चन्द्रमाओ के समान प्रतीत होते है। कृपा करके आप वहाँ पधारे और उन बालको की बालग्रह की बाधा को दूर करें।"

सीता के दो पुत्र उत्पन्न हुए है यह सुनकर महामुनि वाल्मीकि को अत्यन्त ही हर्ष हुआ। वे उसी समय सीता की पर्णकुटी के समीप गये वहाँ जाकर उन्होने बालको की रक्षा के मन्त्र पढे। उन्हें कोई बालग्रह कष्ट न दे सके इस निमित्त पवित्र कुश लेकर उन्होने रक्षा-विधि की। बालक दो थे, अतः उन्होने कुश के बीच से दो टुकडे किये। आधा तो कुशा के नीचे के जड का भाग रहा जो कुश कहलाता है। उससे जिस बालक का मार्जन किया उसका नाम तो 'कुश' हुआ और ऊपर के भाग-लव-से जिसका मार्जन किया उसका नाम 'लव' हुआ। इस प्रकार से कुश और लव इस नाम से विख्यात हुए।

मुनि ने उन बच्चो के जात कर्म आदि सस्कार किये। उनके गोत्र तथा पिता के नाम का उच्चारण करते हुए उन्होंने श्रीरामचन्द्र के नाम का उच्चारण किया। सयोग की बात, कि उसी दिन शत्रुघ्न जो भी वाल्मीकि मुनि के आश्रम पर ठहरे हुए थे। उन्होने जब सकल्प मे श्रीरामचन्द्र जी का नाम सुना और सीताजी के दो पुत्र हुए है यह बात सुनी, तब तो उनके हर्ष का

ठिकाना नही रहा। मुनि के लौटने पर उन्होने पूछा—"भगवन्! क्या भगवती सीता देवी यही है, क्या हमारी कुल की कीर्ति बढाने वाली जगज्जननी जानकी जी ने दो यमज तनय उत्पन्न किये हैं ?"

मुनि ने कहा—"सौमित्रे ! भगवती सीता मेरे ही आश्रम मे यहा तापसियो के बीच मे निवास करती हैं। मैं उन्ह पुत्री के समान मानता हूँ। आज उनके अश्विनी-कुमारा के समान परम रूपवान्, नर-नारायण के समान परम तेजस्वी, सूर्य चन्द्र के समान कान्तिवाले दो पुत्र उत्पन्न हुए हैं, किन्तु इस समाचार को न तो तुम श्रीरामचन्द्र जी से ही कहना और न किसी अन्य से ही। समय आने पर मैं स्वय ही इन बालको को श्रीरामचन्द्र के सम्मुख उपस्थित करूँगा।"

शत्रुघ्नजी ने कहा—"भगवान् की जो आज्ञा, मैं किसी से न कहूँगा, किन्तु माता जानकी जी को जाकर मैं प्रणाम तो कर आऊँ।"

मुनि ने कहा—"अच्छी बात है, जाओ तुम अपनी कुलदेवी को प्रणाम कर आओ।'

मुनि की आज्ञा पर शत्रुघ्नजी एक वृद्धा तापसी के साथ सीताजी की पर्णकुटी पर गये। सोहर के घर मे शत्रुघ्नजी भीतर तो जा नही सकते थे, जानकी जी भी कुटी से बाहर नही निकल सकती थी। वे प्रसव-पीडा के कारण पृथ्वी की गोद मे पडी थी। दूर से ही रोकर शत्रुघ्नजी ने कहा—"माताजी ! मैं शत्रुघ्न प्रणाम कर रहा हूँ। हाय ! अवध की सम्राज्ञी आज एक पर्णकुटी मे प्रसव कर रही है। जिसकी सेवा मे सदा सहस्रों सेविकायें रहती थी आज प्रसव के समय वे पृथ्वी पर पडी हैं।

काल की कैसी कठोर क्रीड़ा है। देवी! सौभाग्य की बात है कि श्रीराम सपरिवार कुशल है।"

सीताजी ने भीतर से अवरुद्ध कंठ से रुक-रुककर कहा—"मेरे छोटे देवर! सौभाग्य की बात है कि तुम इस समय साक्षी रूप में यहीं आ गये हो। तात! सब भाग्य का खेल है, किसी का दोष नहीं। भगवान् जो भी करते हैं अच्छा ही करते हैं। मैं आशीर्वाद देती हूँ कि तुम्हारे भी सबके इसी प्रकार दो-दो पुत्र उत्पन्न हों।"

सीताजी का ऐसा आशीर्वाद पाकर लज्जित और दुखित शत्रुघ्नजी सीताजी को दूर से ही प्रणाम करके लौट आये।"

यह सुनकर शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! शत्रुघ्नजी यहाँ वाल्मीकि मुनि के आश्रम पर क्या आये? क्या श्रीरामचन्द्रजी ने उन्हें सीताजी का समाचार लेने भेजा था?"

इस पर शीघ्रता के साथ सूतजी बोले—"नहीं, महाराज! श्रीरामचन्द्रजी कैसे भेज सकते हैं? शत्रुघ्नजी तो लवणासुर दैत्य को मारने मधुवन जा रहे थे। मार्ग में सन्ध्या होने से एक दिन के लिये वाल्मीकि मुनि के आश्रम पर ठहर गये। वह संयोग की बात थी कि उसी दिन माता ने पुत्रों को जन्म दिया।"

तब शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! यह लवणासुर कौन था? किसका पुत्र था? यह मधुवन में क्यों रहता था? शत्रुघ्नजी ने उसे क्या और कैसे मारा? इन सब बातों को सुनाइये। आपने सबका चरित्र तो सुनाया, किन्तु शत्रुघ्नजी का तो कोई विशेष चरित्र सुनाया ही नहीं।"

इस पर सूतजी बोले—"महाराज! शत्रुघ्न का चरित्र बड़ा ही आदर्श है। ये अपने सभी भाइयों में छोटे थे। भारतीय संस्कृति में छोटों के लिये बड़ी मर्यादा होती है। रामजी और भरतजी

दोनो हो तो भरतजी रामजी की धोती धोवेंगे। यदि श्रीराम भरतजी, और लक्ष्मणजी तीनो होगे तो श्रीराम तथा भरत दोनो की ही धोती लक्ष्मणजी को धोनी पडेगी और यदि श्रीराम, भरत जी, लक्ष्मण और शत्रुघ्नजी चारो होगे तो चारो की धोती शत्रुघ्न जी को ही धोनी होगी। शत्रुघ्नजी सबसे छोटे थे, इसलिये ये कभी बोलते ही नहीं थे। बडे के सम्मुख छोटे को बोलना, हँसी विनोद करना यह मर्यादा ही नहीं। ये एक ही बार बोले और उसी बोलने पर फँस गये। श्रीरामजी तुरन्त इन्हे मधुवन भेज दिया। वहाँ इन्होने बडी वीरता दिखाई किन्तु इन्हे श्रीरामचन्द्र से पृथक् रहना पडा।'

शौनकजी ने कहा—' सूतजी ! तब आप हमे यह सब कथा विस्तार से सुनाइये।"

सूतजी शीघ्रता के साथ बोले—' अजी, महाराज ! विस्तार से सुनाने का समय कहाँ है। अत्यन्त ही संक्षेप मे इस चरित को सुनाकर मैं आगे की कथा सुनाऊँगा। तो अच्छी बात है। पहिले आप लवणवध की कथा सुने।

छप्पय

रिपुसूदन तिहि समय लवण वध हित मधुवनमहँ।
जात रहे विश्राम करन उतरे आश्रममहँ॥
तहाँ सुन्यो सुत जनम सीयके ढिँग तब आये।
गुप्त रहे यह बात शत्रुहन मुनि समुझाये॥
सुनि शौनक शंका करी, कौन लवण जिहि हनन हित।
पठये रघुपति शत्रुहन, बल प्रभाव जिनिको अमित॥

बड़े लोग अपने छोटों पर वात्सल्य स्नेह रखते हैं और शक्ति भर उनकी इच्छा को रखते है। बडों का वडप्पन इसी मे है, कि छोटो की इच्छाओ की पूर्ति करें और छोटो का कर्तव्य यही है, कि बडो की बातो को बिना वाद-विवाद के माने। तभी संसार का कार्य सुचारुरीति से चल सकता है। तभी आर्य मर्यादा का पालन हो सकता है।

सूतजी कहते है—"मुनियो! आपने मुझसे लवणासुर की कथा पूछी। उसे ही मै सुनाता हूँ। प्राचीन काल मे मधु नामक एक राक्षस था। वह बडा बली, शूरवीर, ब्राह्मण भक्त प्रजा पालक और सच्चरित्र था। उसने सहस्रों वर्षो तक शिवजी की घोर आराधना की। उसकी तपस्या से प्रसन्न होकर आशुतोष भगवान् शूलपाणि ने उसे एक अमोघ त्रिशूल दिया और कहा—देखो, यह अत्यन्त ही चमकीला परम प्रभाव युक्त मेरा यह अमोघ त्रिशूल है। जब तक यह तुम्हारे पास रहेगा, तब तक तुम्हे कोई भी परास्त न कर सकेगा। इसमे यह विशेषता होगी कि शत्रु का वध करके यह पुनः तुम्हारे पास लौट आया करेगा, किन्तु इसका प्रभाव तभी तक रहगा जब तक तुम देवताओ से विरोध न करोगे। जब तुम देवताओ से विरोध करने लगोगे, तब इसका प्रभाव नष्ट हो जायगा और लौटकर पुनः मेरे पास आ जायगा।"

मधु ने कहा—'भगवन्! यह त्रिशूल मेरे वंशजो को भी प्राप्त हो।"

शिवजी ने कहा—'देखो, भैया! तपस्या तुमने की है। उसी के फलस्वरूप तुम्हे यह दिव्य त्रिशूल मैं देता हूँ। यह कोई उपाधि या सम्पत्ति तो नही जो तुम्हारे वंशजो को भी प्राप्त हो। फिर भी तुमने याचना की है, तो तुम्हारी याचना सर्वथा विफल न हो, इसलिये मै आशीर्वाद देता हूँ कि तुम्हारे पुत्र को भी यह

त्रिशूल प्राप्त हो। जब तक उसके हाथ मे यह त्रिशूल रहेगा, तब तक संसार मे उसे कोई जीत न सकेगा।"

'इस बात से उसे बडी प्रसन्नता हुई। शिवजी अन्तर्धान हो गये और मधु शूरसेन देशो का पालन करने लगा। वैसे वह था तो असुर किन्तु बडा धर्मात्मा था। चारो वर्ण के लोग उससे सन्तुष्ट रहते थे। जिस वन में उसका निवास था, वह उसी के नाम से "मधुवन" प्रसिद्ध हुआ। उसकी राजधानी भी उसी के नाम से मथुरा प्रसिद्ध हुई। उसका विवाह रावण की मौसी कुम्भीनसी के साथ हुआ। उसके गर्भ से एक बडा ही पराक्रमी पुत्र हुआ। मधु ने उसका नाम लवण रखा। लवण नित्य प्रति बढने लगा और कुछ ही काल मे वह युवा हो गया। वह बडा ही क्रूर स्वभाव का था। वह असुरो का-सा सबके साथ व्यवहार करता। हिंसा उसे अत्यन्त प्रिय थी। मास का वह अत्यन्त ही प्रेमी था सैंकडो हजारो जीवो को वह स्वय ही मारकर लाता और उन सबको खा जाता, यहाँ तक कि वह ऋषि-मुनियो को भी मारकर खा जाता। इससे प्रजा के लोग उससे अत्यन्त ही दुखी थे। मधु ने उसे भाँति-भाँति से समझाया, किन्तु वह किसी भी प्रकार नही माना। मधु ने देखा, यह किसी प्रकार मानेगा नही। पिता पुत्र का विरोध उचित नही। इसीलिय वह राज्य पाट छोड कर शिवजी के त्रिशूल को उसे सौंपकर समुद्र के किनारे चला गया। अब तो लवण सर्वथा स्वतन्त्र हो गया। वह ऋषि मुनियो को कष्ट देने लगा। वर्णाश्रम धर्म मे विघ्न डालने लगा और प्रजा के लोगो को भाँति-भाँति के कष्ट देने लगा। बहुत से राजा उससे लडने आये, किन्तु शिवजी के त्रिशूल के प्रभाव से उसे कोई जीत न सका। बहुत से तो वही मर गये, बहुत से रण से

प्राण लेकर भाग गये। इससे उसका गर्व और भी बढ गया। वह स्वच्छन्द होकर पापाचरण करने लगा।

यमुना किनारे पर उन दिनो वहाँ बहुत से तपस्वी तपस्या किया करते थे। उस देश का नाम ही ब्रह्मर्षि देश था। उन सब ऋषियो मे भृगुपुत्र भगवान् च्यवन मुख्य थे। उन्ही दिनो ऋषियों ने सुना श्रीरामचन्द्र जी अमित-बल पराक्रम-युक्त रावण का वध करके अयोध्या पुरी मे आ गये हैं और यज्ञ याग कर रहे हैं। तब तो सभी ऋषियो ने सोचा कि श्रीरामचन्द्रजी ही इस दुष्ट की दुष्टता को नष्ट कर सकेंगे। हम सब उनकी सेवा मे चलकर सब बातें उनसे निवेदन करें।"

सभी ने इस बात का समर्थन किया। मुख्य-मुख्य एक सौ ऋषियो का एक शिष्ट-मडल अवधपुरी के लिये चला। भृगुपुत्र भगवान् च्यवन उस मडल के अग्रणी थे। कुछ दिनो मे वे अयोध्या के राजभवन के द्वार पर पहुँच गये भगवान् नित्य कर्मों से निवृत्त होकर राजसभा मे पधारे ही थे, कि उसी समय द्वारपाल ने आकर निवेदन किया—'प्रभो! यमुना तटवासी बहुत से ऋषि द्वार पर खडे हैं, वे महाराज से मिलन के लिय अत्यन्त लालायित है। उनके लिये जो आज्ञा हो।"

भगवान् ने कहा—'उन तपोधन महर्षियो को सत्कारपूर्वक तुरन्त यहाँ ले आओ। भगवान् की आज्ञा पाकर द्वारपाल सभी ऋषियो को सादर ले आया। भगवान् ने उठकर उन सबकी अभ्यर्चना की। पाद्य, अर्घ्य, फल, मूल भेंट करके तथा गौदान के द्वारा उनका सत्कार करके उन सबको सुन्दर-सुन्दर सुवर्ण के आसनो पर बिठाया। ऋषियो ने विविध तीर्थों के जलो से भरे घडे, फल फूल, श्रीरामचन्द्रजी को भेंट किये। तीर्थों के पवित्र जलो से भरे घडो को तथा मुनियो के दिये फूलो को भगवान् ने

सहर्ष स्वीकार किया। दोनो ओर से कुशल प्रश्न होने के अनन्तर भगवान् बोले—"मुनियो! आपने बडी कृपा की जो मुझ दीन हीन को दर्शन देकर कृतार्थ किया। अब मैं यह जानना चाहता हूँ कि आपका पधारना किसी कारण को लेकर हुआ या वैसे ही मुझे कृतार्थ करने ही आप पधारे हैं। यदि किसी कारण से आपने कृपा की है, यदि आप मुझे कोई सेवा का सुयोग प्रदान करना चाहते हैं तो उसे नि.सकोच होकर कहे। मुझे आज्ञा दें। मैं आपका कौन-सा कार्य करूँ। आप जिस कार्य के लिये भी आये हो, उसे हुआ ही समझें।"

भगवान् का ऐसा आश्वासन पाकर भार्गव मुनि च्यवन बोले—राघव! ये वचन आपके अनुकूल ही हैं। क्यो न हो, आप रघुकुल के भूपण हैं, इक्ष्वाकुवशावतस हैं। आपके जितने भी पूर्वज हुए हैं सभी शरणागतप्रतिपालक तथा ब्राह्मण भक्त हुए हैं। उनके यहाँ से कोई भी याचक कभी भी निराश होकर नही लौटा। उन्होने सर्वस्व समर्पित करके ब्राह्मणो की सेवा की है। प्रभो। हम मधु के पुत्र लवण नामक असुर के दु खो से अत्यन्त दु खी हैं। वह मधुवन मे रहकर प्राणियो की हिंसा करता है। ऋषि मुनियो को पकड कर खा जाता है और भाँति-भाँति के उपद्रव करता है। आपने प्रबल पराक्रमी विश्वविजयी रावण को मारकर दक्षिण दिशा को निष्कटक बना दिया। अब इस लवणासुर को और मारकर ब्रह्मर्षि देश को सुखी कीजिये। हम सब इसीलिये मिलकर आपकी सेवा मे उपस्थित हुए हैं।"

मुनियो की बात सुनकर प्रसन्नता प्रकट करते हुए भगवान् ने कहा—"मुनियो! आप निश्चित रहे। आप अब लवणासुर को मरा ही हुआ समझें।"

यह कहकर भगवान् ने सभा मे बैठे हुए अपने भाइयो से

कहा—"कहो भाई ! लवणासुर किसके भाग में आता है। कौन उस अधम असुर को मारने के लिये उद्यत होता है ?"

यह सुनकर भरत जी अपने सिंहासन से उठकर खड़े हुए और हाथ जोडकर बोले—"प्रभो मुझे आज्ञा दी जाय, मैं लवणासुर का वध करूंगा।"

भरत जी जब कहकर बैठ गये तो छोटे भाई शत्रुघ्नजी खड़े हुए और हाथ जोडकर बोले—"प्रभो ! लक्ष्मण जी ने आपके साथ वन में रहकर भाँति भाँति के क्लेश सहे, बहुत से दुष्ट असुरों को मारा। भरतजी यहाँ अवध में रहकर घोर तपस्या करते रहे। अवध के राज्य पाट की रक्षा करते रहे उन्होने बड़े-बडे क्लेश सहे हैं। मैंने अभी तक कुछ नही किया। अतः लवण् को मारने की आज्ञा मुझे प्रदान की जाय।'

भगवान् ने प्रसन्नता प्रकट करते हुए कहा—"सुमित्रानंदवर्धन शत्रुघ्न, तुम सर्वथा उस दुष्ट को मारने को अनुकूल हो। तुम उसे अवश्य ही मार दोगे। मै आज ही तुम्हारा शूरसेन देशों के राज्य पर अभिषेक करूंगा। तुम उस दुष्ट लवण को मारकर वहीं अपनी राजधानी बनाकर रहो और धर्मपूर्वक प्रजा का पालन करो।"

यह सुनकर शत्रुघ्नजी तो भौचक्के से रह गये। उनकी आँखों मे आँसू आ गये। वे रोते-रोते बोले—"प्रभो ! मुझे यह दंड किस अपराध के कारण दिया गया है, मै आपके चरणों को छोडकर बाहर कैसे रहूँगा। ऋषियो ने सत्य ही कहा है—"छोटों को बड़ों के बीच में नही बोलना चाहिये।" मैने भरतजी के अनन्तर बोल कर बड़ी भारी भूल की। उसी के परिणाम स्वरूप तो मैं श्रीराम के चरणों से पृथक् किया जा रहा हूँ। हे धर्म के मर्म को जानने वाले प्रभो ! आप अधर्म न करें। बड़े भाइयो के रहते छोटों का

अभिषेक शोभा नही देता। मुझे केवल लवण के वध की ही आज्ञा मिलनी चाहिये। उसे मारकर फिर मैं आपके चरणो के समीप लौट आऊँगा।''

भगवान् ने अत्यत ही स्नेहपूर्वक शत्रुघ्नजी को गोदी मे बिठा कर कहा—''महाबाहो! इस प्रकार अधीर नही होते। क्षत्रिय के लिये ऐसी कातरता शोभा नही देती। राजा लोग प्रवास से डरते नहो। जो राजा अन्यायी राजा को मारकर उस राज्य पर दूसरा राजा नही बिठाता उसे पाप लगता है। इसलिये लवण को मार कर उसके राज्य की रक्षा तुम्हे ही धर्मपूर्वक करनी चाहिये। मैं आज ही तुम्हारा राज्याभिषेक करूंगा।''

यह सुनकर उदास मन से शत्रुघ्नजी बोले—''प्रभो! अब मैं आपके सम्मुख कैसे उत्तर दूं। एक बार जो मैने भूल की बडे भाई के बीच मे बोला उसके परिणाम के स्वरूप तो मैं प्रभु-पादपद्मो से पृथक् किया जा रहा हूँ। अब यदि कुछ कहा, तो न जाने क्या दड मिलेगा, किन्तु स्वामिन् मुझे आपके चरणो को छोडकर अन्यत्र कही सुख न मिलेगा।''

शत्रुघ्नजी की इन बातो को सुनकर श्रीरामचन्द्रजी अत्यत ही प्रसन्न हुए। उन्होने मन्त्रियो तथा पुरोहित को बुलाकर विधि-विधान पूर्वक शत्रुघ्नजी का शूरसेन देश के राज्य पर अभिषेक किया। अब शत्रुघ्नजी कुमार न रहकर राजा बन गये। वे राज-सिंहासन पर छत्र चँवर धारण किये हुए अत्यत ही शोभा को प्राप्त हुए। श्रीरामचन्द्रजी ने अभिषेक के जल से भीगे हुए अपने भाई का प्रेमपूर्वक सिर सूँघा और उन्हे उपदेश करते हुए बोले—''देखो, भैया! धर्मपूर्वक प्रजा का पालन करना। अपने से किसी को भी कष्ट न हो। तुम उस लवण से सावधानी के साथ युद्ध करना उसके पास शिवजी का दिया हुआ एक त्रिशूल है। जब

तक वह त्रिशूल उसके हाथ में रहता है, तब तक उसे कोई जीत नहीं सकता। अहंकार के कारण जब वह आखेट के लिये वन में जाता है, तो उस त्रिशूल को साथ नहीं ले जाता। घर के भीतर रखकर वह उसकी पूजा करता है। तुम ऐसे समय पर उसके पास जाना जिस समय वह त्रिशूल न लिये हो, आखेट के लिये वन में गया हो। जब वह लौटे तो उससे युद्ध करना। वह लाख प्रयत्न करे, तुम उसे त्रिशूल लेने भीतर मत जाने देना। देखो, यह मेरा एक अमोघ बाण तुम ग्रहण करो। यह साक्षात् भगवान् विष्णु का बाण है। इसी से उन्होंने मधु कैटभ नामक असुरों को मारा था। यह कभी भी निष्फल न जाने वाला बाण अमोघ है, इससे तुम अवश्य ही लवण को मार सकोगे। मैंने इस बाण को अत्यन्त भयंकर रावण के ऊपर भी नहीं छोडा था। निश्चय ही यह लवणासुर को धराशायी बना देगा।"

यह कहकर श्री रामचन्द्रजी ने शत्रुघ्न का सिर सूँघा नेह के नीर से उनका सिर भिगो दिया और वह बाण उन्हें दिया। शत्रुघ्न जी ने भी सिर झुका कर बड़े आदर के साथ उस दिव्य शर को ग्रहण किया।

श्री रामचन्द्रजी की आज्ञा से बहुत सी चतुरंगिनी सेना ऋषियों के साथ मधुवन को भेज दी। शत्रुघ्नजी स्वयं सबसे मिल भेंटकर एक महीने के पश्चात् १०-२० सैनिकों को साथ लेकर एकाकी ही मधुवन की ओर चले। मार्ग में वे भगवान् वाल्मीकि के आश्रम पर ठहरे थे। तभी सीताजी ने लव-कुश को जन्म दिया। भगवान् वाल्मीकि की आज्ञा लेकर शत्रुघ्नजी आगे बढे और कुछ ही दिनों में वे मधुवन के समीप पहुँच गये। अपनी सब सेना को इसी पार छोड़कर शत्रुघ्नजी एकाकी ही धनुष बाण लेकर लवण के द्वार पर जा बैठे। उस समय वह आखेट के लिये

वन मे गया था। जब वह हजारो पशु-पक्षियों तथा जंगली जीवों को मार कर आया तो द्वार पर उसने धनुष वाण ताने शत्रुघ्नजी को देखा। उन्हे देखकर वह बहुत हँसा और हँसते हुए बोला—"आज मेरा आहार कुछ कम था। सो दैव ने घर बैठे ही भेज दिया। इसकी मृत्यु इसे अपने आप यहाँ ले आई।'

शत्रुघ्नजी ने गरज कर कहा—"अरे, दुष्ट बहुत बक-बक क्यो करता है। मै तेरा आहार नहीं काल हूँ। मेरा नाम शत्रुघ्न है। मैं शत्रु को मारने वाला हूँ। तू मेरा शत्रु है। तुझे मार कर मैं आज राज्य निर्भय बनाऊँगा। तुझे यम-सदन पठाऊँगा। तू मरने के लिये तैयार हो जा।"

शत्रुघ्न की ऐसी वीरता पूर्ण बातें सुनकर असुर कुछ सहम गया। उसने पूछा—"तू कौन है, कहाँ रहता है ? किसके कहने से यहाँ मरने आया है ?"

शत्रुघ्नजी ने कहा—"मैं अयोध्याधिपति महाराज रामचन्द्र जी का छोटा भाई हूँ। शत्रुघ्न मेरा नाम है, श्रीरामचन्द्रजी ने तुझे मारने के निमित्त ही मुझे यहाँ भेजा है। अब मैं तुझे मारे विना यहाँ से नही जा सकता।"

यह सुनकर लवणासुर क्रोध मे भर गया। वह गरजकर बोला—"राम का नाम मैंने सुना है, उसने मेरे मौसेरे भाई रावण को स्त्री के निमित्त मारा है। यह सुनकर भी मैंने राम को क्षमा कर दिया, किन्तु तुझे क्षमा नही कर सकता। तुझे तो आज मैं अभी यम-सदन पठाऊंगा। तनिक देर ठहर जा, मैं अपना त्रिशूल भीतर से ले आऊँ।"

यह सुनकर हँसते हुए शत्रुघ्न बोले—"मैं तेरी भाँति मूर्ख तो हूँ नही, जो सम्मुख आये हुए शत्रु को अवसर दूँ। अब तू

भीतर बाहर कही भी नही जा सकता। यही तुझे मुझसे युद्ध करना पडेगा।"

यह सुनकर असुर को बडा क्रोध आया। उसने समीप से एक बडा वृक्ष उखाड कर शत्रुघ्नजी के सिर पर मारा। सिर के समीप पहुँचने के पूर्व ही शत्रुतापी शत्रुघ्न ने उसके टुकडे टुकडे करके फेंक दिये। उससे लवणासुर को अत्यन्त ही रोष आ गया। वह बहुत से वृक्षों को फेंकने लगा। शत्रुघ्नजी बडी वीरता से शत्रु के फेंके वृक्षों और पत्थरों को बाणो द्वारा टुकडे-टुकडे करके फेंक देते और बाणो से प्रहार भी करते। किन्तु उसके शरीर मे एक भी बाण न लगता। वह हँसते हुए बाणो को फूल के समान सहन करता। अवसर पाकर उसने शत्रुघ्नजी पर प्रहार किया, इससे रामानुज रिपुसूदन मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पडे। असुर ने समझा यह मर गया है इसलिये वह न तो भीतर त्रिशूल लेने ही गया न उसने उनकी ओर ध्यान ही दिया। उसे तो अपने बल का अभिमान था। भूख का वह उच्चा था अत मारे हुए जीवों को उठाकर अपने भोजन की व्यवस्था मे जुट गया। कुछ ही देर मे शत्रुघ्नजी को चेत हुआ। उन्होने देखा असुर तो आहार की चिन्ता मे लगा है। उन्होने उसे पुन युद्ध के लिये ललकारा वह ज्योंही शत्रुघ्नजी के समीप आया त्योंही उन्होंने श्रीरामप्रदत्त बाण को धनुष पर चढाया। श्रीरामचन्द्रजी का स्मरण करके मन्त्र पढकर ज्योंही शत्रुघ्नजी ने उस दिव्य अमोघ बाण को छोडा त्योंही वह दैत्य कटे वृक्ष के समान बाण लगते ही पृथ्वी पर गिर पडा। देवतागण यह देखकर साधु-साधु कहने लगे। ऋषि मुनि रामानुज शत्रुघ्न की प्रशसा करने लगे, उन्हे भाँति भाँति के आशीर्वाद देने लगे। गन्धर्व गाने लगे, अप्सराये नृत्य करने लगीं। सभी लोग लवणासुर के मारे जाने से सुखी हुए।

उसी समय सबके देखते-देखते वह शिवजी का त्रिशूल उड कर भगवान् शूलपाणि के समीप चला गया। देवताओं ने शत्रुघ्नजी से वर माँगने को कहा। शत्रुघ्नजी ने कहा— मेरी यह पुरी परम पावन मोक्षदा हो।"

देवताओं ने तथास्तु कहकर उनकी बात का अनुमोदन किया। उसी समय शत्रुघ्नजी ने देवताओं के वरदान से दिव्य मधुरापुरी मे प्रवेश किया। उन्होने मधु के बनाये महलो को फिर से बनवाया, उनमे रग बिरगे श्रीराम के सम्बन्ध के चित्र बनवाये। वन उपवनों की रचना की। बडे बडे राज-पथ बनवाये सभा-भवन क्रीडास्थल आमोद-प्रमोद के आवास, देव-मन्दिर, अखाडे और मनोरजन के स्थानो का निर्माण कराया। वह पुरी परम रमणीय हुई। शत्रुघ्नजी धर्मपूर्वक उन देशो का राज्य करते हुए प्रजा का पालन करने लगे। शत्रुघ्नजी के राजा होने से ऋषि-मुनियो को बडा हर्ष हुआ। नित्य खीर घुटने लगी। चका-चक माल उडने लगे। नित्य ही ब्राह्मण-भोज होते। नित्य ही उत्सव मनाये जाते।

इस प्रकार १२ वर्षो मे वहाँ रामराज्य स्थापित करके शत्रुघ्न जी अपने कुछ सेवको को लेकर अयोध्याजी श्रीरामचन्द्रजी के दर्शनो के लिये चल दिये। मार्ग मे वे भगवान् वाल्मीकि मुनि के आश्रम पर ठहरे। वहाँ उन्होने रात्रि मे प्रसाद पाकर जब विश्राम किया, तो उन्हे ताल-स्वर सहित राम-चरित सुनने को मिला। दूर से सुन्दर सगीत-मय रामचरित को सुनकर वे परम विस्मित हुए। भूत की घटनाओं को भविष्य के समान सुनकर उनके रोमाच हो गये। वे बार-बार इस सम्बन्ध मे भगवान् वाल्मीकि से पूछने की सोचते, किन्तु सकोच के कारण उनका साहस न होता। तब तक कुश लव दोनो भाई ११।१२ वर्ष के हो चुके थे। किन्तु मुनि ने

उन्हें शत्रुघ्न से न तो मिलने ही दिया और न सीताजी के सम्बन्ध मे ही कोई चर्चा की।

प्रातःकाल होते ही वे मुनि की आज्ञा लेकर अयोध्या की ओर चल पडे। नगर में पहुँचकर शत्रुघ्नजी ने प्रभु के पादपद्मों में प्रणाम किया। भरत तथा लक्ष्मण की चरणवन्दना की श्रीराम चन्द्रजी ने उनका सिर सूंघा और कुशल पूछी शत्रुघ्नजी ने सभी वृत्तान्त सुना दिया और अन्त में कहा—"प्रभो! मैंने आपकी आज्ञा का बड़े कष्ट से पालन किया। पापी लवणासुर मर गया। मथुरापुरी समृद्धिशालिनी बन गई सभी प्रजा के लोग प्रसन्न हैं। अब आप मुझे अपने चरण-कमलो से पृथक् न करें मैं तो सदा श्रीचरणो की सन्निधि में ही रहना चाहता हूँ।'

भगवान् ने कहा—"भैया! मुझे भी तुम्हारे बिना अच्छा नही लगता, किन्तु किया क्या जाय। कर्तव्य पालन सबसे श्रेष्ठ धर्म है। तुम्हारा कर्तव्य प्रजा का पालन है। तुम मुझे देखने आये। यह बड़े सौभाग्य की बात है, किन्तु तुम्हें वही जाकर राज्य का भार सम्हालना होगा। बीच-बीच मे मेरे पास आ सकते हो। अब तुम केवल ७ दिन यहाँ रहकर लौट जाओ।"

भगवान् की ऐसी आज्ञा पाकर शत्रुघ्नजी को दुःख हुआ किन्तु वे करते ही क्या? बड़ों की आज्ञा तो माननी ही पड़ती है। वे सात दिन रहकर अपनी माताओं से मिल भेंट कर फिर सात दिन पश्चात् मथुरापुरी में चले गये और वहाँ राज्य करने लगे। कालान्तर में उनके दो पुत्र पैदा हुए जिनका नाम सुबाहु और श्रुतसेन हुआ। इसी प्रकार लक्ष्मणजी के भी दो पुत्र हुए जिनका नाम अङ्गद और चित्रकेतु था। भरतजी के भी तक्ष और पुष्कल नामक दो पुत्र हुए जिन्होने गन्धर्वों को जीतकर पंचनद प्रदेश में राज्य बनाया।

यह सुनकर शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! भरतजी ने गंधर्वों को कैसे जीता? गन्धर्वों ने क्या अन्याय किया था। कृपा करके इस कथा को हमें सुनाइये।"

इस पर सूतजी ने कहा—"मुनियो! यह कथा बहुत बडी है। पुराणों मे इसका विस्तार के साथ वर्णन आया है। यहाँ मै आपको अत्यन्त संक्षेप मे ही सुनाऊँगा आप दत्तचित्त होकर इस परम पावन आख्यान को श्रवण करे।"

छप्पय

जाइ लवण के द्वार शत्रुहन बैठे जबहीं।
करिकें खल आखेट द्वारपै आयो तबहीं॥
दौरयौ लैन त्रिशूल शत्रुहन जान न दीन्हों।
गुत्थम गुत्था भई शत्रु मरमाहित कीन्हों॥
राम दत्त शर तानिकें, मार्यो तकि उर शत्रुहन।
मरयौ शत्रु शिव शूल हू, गयो तुरत शिव की शरन॥

भरतजी की गन्धर्वों पर विजय

[६६६]

सुबाहुः श्रुतसेनश्च शत्रुघ्नश्च बभूवतुः।
गन्धर्वान् कोटिशो जघ्ने भरतो विजये दिशाम्।
तदीयं धनमानीय सर्वं राज्ञे न्यवेदयत् ॥*

(श्री भाग० ६ स्क० ११ प्र० १३, १४ श्लोक)

छप्पय

यों लवणासुर मारि करी मथुरा रजधानी।
रहें शत्रुहन तहाँ रामकी आयसु मानी॥
वृद्ध पुरोहित भेजि युधाजित भरत बुलाये।
करन विजय गन्धर्व तक्ष पुष्कल सँग धाये॥
कोटि पुत्र शैलूश के, अति दुर्मद रनमहँ निपुन।
आये लड़िबे भरतहँ, भिड़े धारि हिय हरिचरन॥

भगवान् का जिनके ऊपर हाथ है उनकी सर्वत्र विजय है वे जहाँ जायंगे वहीं उन्हें लाभ होगा, उनकी पराजय तो कभी हो

---

* श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षित् से कहते हैं—'राजन! सुबाहु और श्रुतसेन ये दो पुत्र शत्रुघ्नजी के हुए। भरतजी ने दिग्विजय करते हुए करोड़ों गन्धर्वों का युद्ध में संहार किया और उन्हें परास्त करके तथा उनका धन छीनकर सबका सब लाकर उन्होंने महाराज रामचन्द्र जी को अर्पण किया।'

ही नहीं सकती । भगवान् तो अपराजित हैं जब भगवान् की कभी पराजय नहीं होती तो उनके आश्रितों की पराजय कैसे हो सकती है ? वे तो जहाँ भी जायँगे, विजय करके ही आवेंगे ।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! आपने मुझसे यह पूछा था, कि भरतजी ने गन्धर्वों पर विजय क्यों की ? गन्धर्वों ने उनका क्या अनिष्ट किया था ? अब मैं आपके इसी प्रश्न का उत्तर दूँगा, आप इस पुण्य प्रसंग को समाहित चित्त से श्रवण करें ।

एक दिन अवधकुल मंडन जानकी जीवन रघुवंश विभूषण भगवान् श्रीरामचन्द्रजी राजसभा में सिंहासन पर विराजमान थे । सौ सुवर्ण की डंडियों वाला श्वेत छत्र लगा हुआ था । चँवर डुल रहे थे भरतजी, लक्ष्मणजी तथा शत्रुघ्नजी सेवा में संलग्न थे, हनुमानजी चरण दबा रहे थे । उसी समय सेवकों ने महाराज रामचन्द्रजी का जय जयकार किया और हाथ जोड़कर अत्यन्त ही नम्रता के साथ कहने लगे—"प्रभो ! केकय नरेश महाराज युधाजित जी के राजपुरोहित-भगवान् गर्ग्य आपके यहाँ आये हैं । वे आपके लिये सुन्दर काबुली घोड़े, वस्त्र, आभूषण तथा नाना प्रकार के बहुमूल्य उपहार लेकर आ रहे हैं । वे यहाँ से एक कोश की दूरी पर होंगे । हमारे मामा के पुरोहित भगवान् गर्ग्य आ रहे हैं । इतना सुनते ही भगवान तुरन्त उनके स्वागत के लिये समस्त सामग्री लेकर चले । एक कोश आगे पहुँचकर सभी ने मुनिवर गर्ग्य का स्वागत सत्कार किया । उन्हें अत्यन्त ही आदर के साथ श्रीरामचन्द्रजी अपने नगर में लिवा लाये । मुनि के स्वागत के लिये सम्पूर्ण पुरी सजाई गई थी । सड़कों पर सुगन्धित जल के छिड़काव कराये गये थे और स्थान-स्थान पर धूप जलाई गई थी ।

श्रीरामचन्द्रजी के स्वागत सत्कार से वृद्ध गर्ग्य मुनि अत्यन्त

ही सन्तुष्ट हुए। उन्होने श्रीरामजी के समस्त परिवार की कुशल पूछी। अपने यहाँ की कुशल बताई, और भरत के मामा ने जो-जो उपहार की वस्तुएँ दी थी, उन्ह श्रीराम को अर्पित किया। श्रीरामचन्द्रजी ने मामा की भेजी हुई, उन सब वस्तुओ को स्वीकार किया और मुनि की पूजा करने के अनन्तर पूछने लगे—"मुनिवर! आपका स्वागत है आप तो ब्राह्मण होने के नाते ही जगत्पूज्य है, फिर मेरे नाना के पूज्य पुरोहित हैं। मामा ने अपको हमारे पास भेजा है, आप हमारे नाना से भी बढकर हैं। अब मैं यह जानना चाहता हूँ, कि मामाजी ने आपको किसी विशेष कार्य से भेजा है, या यों ही हमारे समाचार लेने तथा मिलने भेंटने को भेजा है। यदि कोई उनकी हमारे लिये विशेष आज्ञा हो तो बताइये।"

यह सुनकर वृद्ध गर्ग्य अपनी भूरी-भूरी दाढी पर हाथ फेरते हुए गम्भीरता के साथ बोले—"रामभद्र! तुम सब भाइयो को देखे कैकय राजा को बहुत दिन हो गये थे। इधर आपके कोई समाचार भी नही मिले थे। इसीलिये कुशल समाचार लेने स्नेह वश तुम्हारे मामा ने मुझे यहाँ भेजा है। एक छोटा सा सन्देश भी है?"

श्रीरामचन्द्रजी ने कहा—"हाँ सन्देश ही सुनाइये। मामा ने हमारे लिये क्या सन्देश भेजा है।"

वृद्ध गर्ग्य बोले—"राघव! सिन्धु नदी के इस पार उस पार केकय देश से सटे दो देश है वे बडे समृद्धिशाली हैं। उनमे फल फूल तथा मेवा प्रचुर मात्रा मे होती है। वहाँ के स्त्री पुरुष हृष्ट पुष्ट निरोग तथा गोरे होते हैं। वे देखने मे स्वस्थ और सुन्दर दिखाई देते हैं। उन देशो का राज्य पहिले क्षत्रिय वश के राजा ही करते थे। वहाँ के राजघरानों की लडकियाँ अत्यन्त ही

सुन्दरी होती थी। शैलूप नामक एक गन्धर्व ने आकर अपने बल पुरुषार्थ से उन राजाओं को जीत लिया और उन लडकियों के साथ विवाह भी कर लिया, और गन्धर्वो ने भी मानवीय कन्याओं से विवाह कर लिये। इससे वहाँ एक नई गन्धर्व जाति उत्पन्न हो गई। शैलूप के तीन पुत्रो के अनेक परिवार हैं, उनसे बढते-बढते अब एक करोड हो गये है। गन्धर्व वैसे उपदेव हैं, वे मदराचल की उपत्यकाओ मे तथा स्वर्ग मे रहने वाले है, किन्तु मानवीय ललनाओं से ससर्ग होने के कारण अब वे मर्त्यलोक में रहने लगे हैं। फिर भी वे अपने को मनुष्यो मे श्रेष्ठ समझते हैं। अपने को देवता बताकर चातुर्वर्ण्य वालो का तिरस्कार भी करते हैं। वे सबके सब बली, शूरवीर, लडाकू और साहसी हमारे पड़ोसी राजा हैं। हम उन्हे जीतने मे समर्थ नही हैं। यदि आपकी सहायता पावें, तो हम इन अभिमानी गन्धर्वों को जीत लें। इसलिय आपकी सम्मति हो, तो लक्ष्मण को शत्रुघ्न को अथवा भरत को सेना सहित यहाँ भेजकर इन्हे परास्त कर और इन देशो को अपने राज्य मे मिला लें।''

भगवान् ने पूछा—'इन देशो मे कौन-कौन सी वस्तुयें होती हैं ?''

वृद्ध पुरोहित बोले—"प्रभो ! आपने देखे ही होगे काबुल देश के घोडे बडे सुन्दर हैं। गान्धार (कन्धार) के फल बडे मीठे होते हैं, वहां का अनार तो सवत्र प्रसिद्ध है। प्यास लगने पर लोग अनार का रस पीते हैं, इसी से वहाँ के लोग हृष्ट-पुष्ट तथा लाल होते हैं। उन देशो को जीतने मे बहुत लाभ हैं। सबसे अधिक बात तो यह है, कि वहाँ के लोग इन गन्धर्वों के अन्याय से मुक्त हो जायेंगे।''

वृद्ध पुरोहित की बात सुनकर भगवान् ने कहा—"देखो

भाई, लक्ष्मण ने मेघनाद-वध के समय बडा परिश्रम किया है। शत्रुघ्न ने भी लवणासुर के वध के समय अपना पुरुषार्थ दिखाया है। अभी तक भरत को ऐसा अवसर नही आया। हमारी सम्मति है भरत अपने दोनो सुयोग्य सुतो के साथ गन्धर्वों मे लडने जायँ और मामाजी की सहायता मे उन देशो को जीतकर अपने राज्य मे मिलालें। जीते हुए राज्य को दो भागो मे विभक्त करके एक का राजा तक्ष को बना दे, दूसरे का पुष्कल को। हमारी तो यही सम्मति है, यदि सब पचो की यही सम्मति हो, तो भरतजी को शीघ्र ही यात्रा का प्रबन्ध करना चाहिये।"

भगवान् की बात सुनकर सभी ने एक स्वर स साधु-साधु कहा। अब तो भरतजी की यात्रा की तैयारियाँ होने लगी। हाथी, घोडे, रथ तथा पैदल सवार युद्ध के लिये चलन लगे। चारो ओर कोलाहल होने लगा। मार्ग मे विविध वस्तु बेचन वाले व्यापारी वाहनो मे वस्तुएं भर भर कर चलने लगे। हजारो लाखों हाथी घोडे चीखते चिङ्घाडते दौडने लगे। सडक बनाने वालो ने जितनी बडी सडक बनाई थी, वह पर्याप्त न थी, अत खेतो मे रौदते, वृक्षो को तोडते, मतवाले हाथी चलने लगे। भरतजी के एक पुत्र आगे चल रहे थे, एक मध्य मे और सबसे पीछे भरतजी थे। श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मण और शत्रुघ्न के सहित, सेना सहित भरत जी को पहुँचाने पुरी से एक कोश दूर तक आय। उन्होने भरतजी को तथा उनके पुत्रो को सावधानी के साथ युद्ध करन का उपदेश दिया। भाँति-भाँति की राजनीति सिखाई इस प्रकार युद्धोपयोगी सभी बाते बताकर उनका सिर सूँघा प्यार किया और जाने की आज्ञा दी। भरतजी भी पुत्रो सहित प्रभु के पादपद्मो मे प्रणाम करके आगे बडे। श्रीरामचन्द्रजी भाइयो सहित बडी देर तक भरतजी को देखते रहे। भरतजी मुड मुड कर भगवान् के दर्शन

करते जाते थे। जब वे आँखो से ओझल हो गये, तब भगवान् दुखित चित्त से अयोध्यापुरी मे लौट आये और पूर्ववत राज-काज करने लगे।

इधर भरतजी बीच मे अनेक स्थानो मे विश्राम करते हुए कैकय देश मे पहुँच गय। उनके मामा ने जब पुत्रो सहित भरत के आगमन का समाचार सुना तो वे उन्हे आगे लेने गये और अत्यन्त सत्कारपूर्वक उन्हे अपने नगर मे ले आये। भरतजी के स्वागत के लिये सम्पूर्ण नगर सजाया गया था। कैकय देश की स्त्रियो को अपने सौन्दर्य का बडा गर्व था, जब उन्होंने भरत जी के सौन्दर्य की प्रशसा सुनी, तो वे सभी काम छोडकर भरतजी के दर्शनो के लिय अपने महलो की छता पर तथा अटा अटारियो मे से भरतजी को देखने लगी। भरतजी की मनमोहनी मूरति को देखकर सबने पलक मारने बन्द कर दिय। वे सबको सब चित्र लिखित नारियाँ सी प्रतीत होने लगी। कुमारी कन्यायें उनके ऊपर पुष्प तथा खीलो की वर्षा कर रही थीं। इस प्रकार सभी नर नारियो ने भरतजी का हृदय से स्वागत किया। भरतजी अपने मामा के घर मे पहुँचे। उनकी मामियो ने आरती उतारी। हंसते हुए सबकी कुशल पूछी और उनका सिर सूंघा। मामियो ने उन्हे बडे प्रेम से पुत्रो सहित भोजन कराया। महाराज के सेवको न सेना के ठहरने का पहिले से ही समुचित प्रबन्ध कर रखा था इसलिये सैनिको को कोई कष्ट न हुआ उन्हे वहाँ परदेश-सा प्रतीत ही नही हुआ। सभी ऐसा अनुभव करने लगे, मानो हम सब अयोध्या मे ही निवास कर रहे है।

भोजनोपरान्त भरतजी ने सुख-पूर्वक शयन किया। प्रात काल वे सूत मागधो की स्तुति और वीणा पणव की सुमधुर ध्वनि के साथ जागे। नित्यकर्मो से निवृत्त होकर वे ज्यो ही राज सभा मे

आये, त्यों ही बहुत से नगर निवासी उनके दर्शनों को आ गये। भरतजी ने सब का यथोचित सम्मान किया। आस पास के हजारों पर्वतीय राजे उनसे मिलने आये और सभी ने कहा—'आप गन्धर्वों से युद्ध करें, हम आपका साथ देंगे।"

सबकी सम्मति समझकर भरतजी ने एक सभा की। उसमें सभी मुख्य-मुख्य राजाओं तथा बुद्धिमान मन्त्रियों और ब्राह्मणों को बुलाया। उसमें भरतजी ने यही प्रस्ताव रखा कि हमें गन्धर्वों के साथ कैसा बर्ताव करना चाहिये।"

इस पर सभी ने अपनी-अपनी रुचि के अनुसार सम्मति दी। किसी ने कहा—"उनसे छिप कर युद्ध करना चाहिये, किसी ने कहा—उनसे यु करना ही न चाहिये।" कोई बोले—"जब तक उन्हें भरतजी के आने के अभिप्राय का पता न चले, तभी तक असावधानी की अवस्था मे ही उन पर चढाई कर देनी चाहिये।"

इन सबकी बात सुनकर वृद्ध गर्ग्य बोले—'देखो, भाई! मत्त, प्रमत्त, उन्मत्त असावधान, विरथ, रण से भागते हुए सोते हुए, शस्त्रविहीन तथा, दूसरो के साथ समर मे संलग्न एसे सैनिकों के साथ शूरवीर समर नही करते। यह छल युद्ध है आर्य लोग ऐसे युद्ध की निन्दा करते हैं। अधर्म मे युद्ध करना बहुत निन्दनीय कार्य है।"

वृद्ध गर्ग्य की बात सुनकर भरतजी ने भी कहा—'पूज्य पुरोहित जी सत्य ही कह रहे हैं। कूटयुद्ध करना रघुवंशियों की कीर्ति का कलङ्कित करने वाला है। रघुनन्दन श्रीरामचन्द्रजी ने मुझे अधर्म युद्ध सिखाया ही नहीं। रण भूमि मे सुसज्जित शत्रु से सम्मुख युद्ध करना यही रघुवंशियों का धर्म है। इसलिये मैं तो उसे सावधान करके धर्मानुसार युद्ध करना चाहता हूँ।"

यह सुनकर वृद्ध गर्ग्य बोले—"देखिये रघुनन्दन! युद्ध की

विद्वानो ने प्रशंसा नही की है। साम, दान, भेद और दण्ड चार चालें होती हैं। जब तक शान्ति से काम निकल जाय, तब तक युद्ध न करना चाहिये। यदि कुछ लेकर भी युद्ध टल जाय, तो बुद्धिमान राजा को चाहिये, सैनिको को मन्त्रियो को तथा राजा के अन्य प्रेमी समीपवर्ती सेवको और अनुचरो को कुछ दे लेकर युद्ध को टाल देना चाहिये। यदि इससे भी काम न चले तो राजा के मन्त्रियो मे सैनिको मे ही परस्पर मे फूट डाल दे। या शत्रु को किसी उसके प्रधान शत्रु से भिडा दे अथवा अपने गुप्तचर भेज कर प्रजा को राजा के विरुद्ध भडका दे। इन सब उपायो से काम न चले तब कही जाकर युद्ध की बात सोचनी चाहिये। इसलिये मेरी सम्मति तो यही है, कि गन्धर्व राज शैलूश के समीप प्रथम सन्देश भेजना चाहिये। उनसे कहना चाहिये यह समृद्धशाली देश तुम लोगो के रहने के लिये नही है। यद्यपि तुम्हारी उत्पत्ति उपदेश स हुई है, फिर भी तुम मानवीय स्त्रियो स पैदा होने के कारण भारतवर्ष मे ही रहोगे। इसलिये हिमालय के प्रान्तो मे तुम लोग जाकर सुख से रहो। गन्धमादन पर्वत के आस-पास अपनी बस्तियाँ बनाओ। इन देशो को छोड दो; यहाँ भरतजी राज्य करेंगे।" यदि इस सन्देश का उन्होने सहर्ष स्वागत किया और वे हिमालय के गधमादन प्रान्त मे चले गये, तब तो युद्ध की आवश्यकता ही न रहेगी। यदि उन्होने इसे स्वीकार न किया, तब तो युद्ध अवश्यम्भावी है ही। फिर हम लोग दोप के भागी न होगे।"

वृद्ध गर्ग्य की बात सुनकर उनकी प्रशसा करते हुए भरतजी बोले—"मुनिवर! आपने बडी ही धर्मयुक्त युक्ति-युक्त सम्मति दी। इसीलिये तो सभाओ मे वृद्धो का सम्मान किया जाता है। वह सभा, सभा ही नही मानी जाती, जिसमे वृद्धपुरुष न हो और वे वृद्ध, वृद्ध ही नही माने जाते जो सभा मे आकर भी लोभ

मोह अथवा सकोच वश सत्य बात को नही कहते। मुनिवर! आपकी सम्मति अति उत्तम है। आप ही इस कार्य के सर्वथा उपयुक्त है। आप ही इस कार्य को भली-भाँति कर सकते हैं। राजदूत जहाँ तक हो, वृद्ध हो, दूरदर्शी हो, अनुभवी हो, चिड़चिड़ा न हो, तनिक सी बात पर उत्तेजित न हो जाता हो। सभ्य हो, कुलीन हो और ओजस्वी हो। आप मे ये सभी गुण विद्यमान् हैं, अत आप आज ही गन्धर्वराज शैलूप के समीप जाइये और जिन उपायो से भी युद्ध रुक सके उन सब उपायों को कीजिये। आप जो भी कर आवगे वह सब मुझे स्वीकार है।"

भरतजी की अनुमति पाकर वृद्ध गर्ग्य गधर्वों के नगर मे गये। गन्धर्वराज शैलूप न जब केकय देश के पुरोहित भगवान् वृद्ध गर्ग्य का आगमन सुना, तो उसने इनका विधिवत् स्वागत सत्कार किया। अर्घ्य, पत्र, पुष्प, फल, मूल तथा पूजा की अन्यान्य सामग्रियो के द्वारा पुरोहित की पूजा करके शैलूप ने उनको कुशल पूछी और आने का कारण जानना चाहा।

पुरोहित गर्ग्य ने अत्यन्त ही सक्षेप मे सभी बातें सुनाई—"भरत श्रीरामचन्द्रजी के छोटे भाई है। उनके मामा केक्य-राज ने उन्हे यहाँ बुलाया है; वे यहाँ अपना राज्य स्थापित करना चाहते है। यह स्थान आप लोगों के योग्य तो है नही। आपलोग न खेती करते हैं न व्यापार। इसलिये आप हिमालय पुण्यप्रान्त में जाकर निवास करें, वह भी पृथ्वी का स्वर्ग ही है। वहाँ गन्धमादन पर्वत के आस-पास आप आनन्द से रहे, विहार करें, क्रीडा करें, सुखो का उपभोग करें। भरत के पुत्र यहाँ राजधानी बनाकर वर्णाश्रमो प्रजा का पालन करेंगे। आप लोगो को भी कोई कष्ट न होगा, प्रजा भी सुख से रहेगी और युद्ध भी न करना पड़ेगा।"

यह सुनकर हंसते हुए शैलूप ने कहा—"ब्रह्मन् ! हमने अपने पुरुषार्थ से इन देशो को जीता है। हम इन देशो के स्वामी है। यहाँ हमारा घर है, हमारी यहाँ पैतृक सम्पत्ति है। हमे यहाँ से निकालने वाले भरत कौन होते है ? हिमालय की उपत्यकाओ मे जाकर वे स्वय ही राज्य स्थापित क्यो नही कर लेते। हम उनसे डरते होते, या युद्ध करना न जानते होत, तो सभव है भाग भी जाते, किन्तु हम तो शूरवीर है। युद्ध करना हमारा काम ही है। भरत को हम तृण की बरावर भी नही समझते। भरत जैसे यहाँ नित्य ३६० आते हैं। आप उनसे कह दे, ऐसा सन्देश फिर कभी मत भेजना। हम युद्ध करने के लिये सर्वथा तैयार हैं। कह देना— 'वे अपनी पूरी शक्ति लगाकर हम पर चढाई करे, हम उनके दांत खट्टे कर देंगे।

शैलूप का उत्तर पाकर तथा उसके द्वारा सत्कृत होकर वृद्ध गर्ग्य भरतजी के पास आये और सब बातें सुना कर बोले— "रघुनन्दन ! युद्ध रुक नही सकता। ग धर्व बडे दुर्मद हो रहे है। वे अपने समान ससार मे किसी को शूर बीर समझते ही नही।" आप युद्ध के लिये तैयारी करें, कल प्रात ही गन्धर्वों के नगर पर चढाई कर दें।"

वृद्ध गर्ग्य की बातो का अभिनन्दन करके भरतजी ने सैनिको को तैयार होने की आज्ञा दे दो। अब क्या था, वीरो की बोटी-बोटो फडकने लगी। वे प्रसन्नता के कारण उछलने कूदने लगे, गाने लगे, नाचने लगे, कोई व्यायाम करने लगा, कोई ताल ठोकने लगे, वहुत से घोडो के गद्दो को ठीक करने लगे, बहुत से वाहना को सम्हालने लगे। सराश यह कि सभी प्रसन्नता-पूर्वक युद्ध करने की तैयारियाँ कर रहे थे।

इधर शैलूप के पुत्रो ने जब युद्ध की बातें सुनी, तो वे बडे

प्रसन्न हुए। वे तो युद्ध के लिये उधार खाये बैठे रहते थे। वे सबके सब शूर वीर, बली, लडाकू, योद्धा, पराक्रमी, साहसी तथा अपने को अपराजित मानने वाले थे। वैसे तो वे सभी बली थे, किन्तु उनमे नमुचि, कामपाल, गवेषण, सुदर्शन, वीरबाहु सुवाहु, वायुवेग, सुवर्चम निकुम्भ कुम्भनामा, बलाक बलक, हरिकेश, मदोजा, सूर्यराशी, प्रमङ्कर, वृन्दारक, ज्योतिषिक, दृढस्यु अपराजित, कुमुद कुमुदापीड, वसुनाथ, सुलोचन, चन्द्रपीड, गदी, मौली, किन्नर अजगर, रुह, केशरी, वरत्राणभानु आगात्राह, रार्य, एकलव्य, विशाल, कलविङ्क, कलाप्रिय, भीम—नाद महानाद वसुकी, पनस, गद, चन्द्रवर्मा, महावर्मा, वसुपेण, तथा अग्रजारक, ये अत्यन्त ही बली थे। जहाँ युद्ध का नगाडा बजा, तहाँ ये सबके सब एकत्रित हो गये और अपने-अपने अस्त्रो को ठीक करके युद्ध के लिये उत्साह दिखाने लगे।

इधर प्रात काल होते ही भरतजी नित्य कर्मों से निवृत्त हुए उन्होन अपने पुत्रो को शीघ्र ही युद्ध के लिये चलने की आज्ञा दी। तक्ष और पुष्कल दोनो ही रण के लिये सुसज्जित होकर चले। उधर से गन्धर्व भी तैयार होकर आये थे। दोनो सेनाये परस्पर मे भिड गयी घुडसवारो का घुडसवारो के साथ, रथियो का रथिया के साथ और पैदलो का पैदलो के साथ युद्ध होन लगा। गन्धर्व लडने मे प्रसिद्ध थे वे बडे बली शूरवीर और रणरङ्ग-दुर्मद थे। इधर भरतजी के सैनिक भी कम नही थे। वे सुप्रसिद्ध लडाकू थे। दोनो ही एक दूसरे पक्ष को पराजित करने के निमित्त प्राणोका पण लगाकर भिड गये। उस युद्ध के सम्मुख लङ्का का युद्ध छोटा प्रतीत होता था। विमानो मे चढे देवता भी देखकर चकित रह गये, कि ऐसा युद्ध तो देवासुर-सग्राम के समय भी नहीं हुआ था। रक्त की नदियाँ बहने लगी। उनमे सैनिको के सिर कट-कट

कर कछुओं को भांति तैरने लगे। वीरो को बाहुएं सर्पों के समान दिखाई देने लगी। कटे हुए हाथी तिमिङ्गिलो की भांति दीखने लगे। सैनियों के सिर के बाल सिवार की भांति प्रतीत होते थे। योद्धाओ के धड ग्राह की भांति तैर रहे थे। वह युद्ध सात दिना तक होता रहा, प्रतिदिन भयकर होता जाता था। वीर सब कुछ भूलकर प्राणो का मोह छोड़कर लड रहे थे। दोनो पक्षो मे से न तो कोई अपनी पराजय ही मानता था और न युद्ध स भागता हा था। गन्धर्वों के पुरोहित नाडायन ने शैलूष को बहुत समझाया कि भरत साधारण राजा नही, वे भगवान् के अंशावतार हैं। साक्षात् परब्रह्म परमात्मा नराकृति मे रामरूप स अवनि पर अवतरित हुए हैं, किन्तु शैलूष ने उनकी एक भी बात न मानी। उसने स्पष्ट कह दिया— या तो मै भरत के हाथो मर कर स्वर्ग जाऊंगा, या भरत को मार कर निष्कण्टक राज्य करूंगा। डर कर रण से विमुख होना तो मैंने सीखा ही नही।" उस वीर ने ऐसा ही किया। जो कहा उसे प्रत्यक्ष करके दिखा दिया। उसकी बहुत सो सेना का सहार हो गया, किन्तु उसने साहस नही छोडा। सात दिन तक घनघोर युद्ध होता रहा।

भरतजी के भी बहुत से सैनिक काम आये, तब उन्होंने शैलूष से कहा—"गन्धर्वराज! सैनिको के सहार से क्या लाभ? हमारा तुम्हारा युद्ध हो जाय, या तो तुम मुझे जीत लो, या मैं तुम्हे जीत लूं।"

शैलूषने कहा—"राजन्! मैं युद्ध से डरने वाला नही। रक्त को देखकर मेरा रक्त खौलता है, आप चाहे जैसे मुझसे युद्ध कर लें। अच्छी बात है, हमारा आपका ही युद्ध हो, हमारे तुम्हारे युद्ध से ही जय पराजय का निर्णय हो जाय।" यह सुनकर अकेले भरतजी युद्ध करने के लिये उद्यत हुए।

भरतजी को अकेले युद्ध के लिये उद्यत देखकर उनके समस्त सेनापति उनके समीप आये, और हाथ जोडकर बोले—"प्रभो! आप यह नीति विरुद्ध कार्य क्या कर रहे है। स्वामी तो केवल आज्ञा दिया करते हैं। युद्ध सेवक करते है और उसके फल-भोगी स्वामी होत हैं। सेना-रूपी विशाल वृक्ष की राजा जड है, सेनापति स्कन्ध हैं छोटे सेनापति छोटी डालियाँ हैं और सैनिक फूल पत्ते है। विजय उसका फल है, जड भूमि मे छिपी रहती है, उसे कोई नही देख सकता। भूमि मे छिपी छिपी ही उसके द्वारा समस्त वृक्षका पालन पोपण होता है। स्कन्ध-शाखा तथा फूल पत्तो के कट जाने पर उसमे से दूसरी नई निकल आती हैं और सघन बन जाता है, किन्तु जडके कटने से तो सम्पूर्ण वृक्ष ही नष्ट हो जाता है। आप स्वय युद्ध करने अकेले न जायँ हमे आज्ञा द। हम आपके शत्रु शैलूप को उसके पुत्र पौत्र तथा परिवार के पुरुपो के साथ निश्चय ही नष्ट कर देंगे।"

भरतजी ने उन्हे धैय बँधाते हुए कहा—"वीरो! क्षत्रिय युद्ध से कभी डरते नही। सम्मुख शत्रु युद्ध के लिये ललकार रहा हो, तो कौन सा क्षत्राणी के उदर से क्षत्रिय के वीर्य से उत्पन्न हुआ वीर युद्ध से मुख मोड सकता है। मैं शैलूप से अवश्य लड़ूँगा। तुम सब तटस्थ रह कर तमाशा देखो। देखते चलो क्या होता है। मेरे हृदय मे श्रीराम का रूप विराजमान् है। राम को हृदय मे रखकर जो भी कार्य किया जाय, उसमे सफलता ही सफलता है। आप लोग न तो विजय के होने के सम्बन्ध मे शका ही करें, न मेरे सम्बन्ध मे चिन्ता ही करें। आज मैं शैलूप को निश्चय ही यमपुर पठा दूँगा।"

इस प्रकार भरतजी के बहुत समझाने पर सेनानायकों ने उनकी बात मान ली। अब भरतजी और शैलूप का युद्ध होने

लगा। दोनों ही वीर थे, दोनों को ही अपने बल, पराक्रम, युद्ध-कौशल का अभिमान था, दोनों ही दो मत्त हाथियों के समान, दो बड़े ककुद्मवाले साड़ो के समान भिड गये। वह उसके बाण मारता, वह उनके ऊपर शरो की वर्षा करता। वह उस पर प्रहार करता, वह उस पर। एक अग्नि अस्त्र चलाता तो दूसरा वरुणास्त्र छोडकर अग्नि को बुझा देता। इस प्रकार दिव्य-अस्त्रो से वे दोनो लडने लगे। शैलूष के जब सब अस्त्र विफल हो गये, तब उसने अन्त मे अमोघ ब्रह्मास्त्र छोडा। भरतजी ने तुरन्त ही दूसरा ब्रह्मास्त्र छोडकर उसे शान्त कर दिया। अन्त मे एक बाण से उसका सिर धडसे पृथक् कर दिया।

शैलूष के मरते ही सभी गन्धर्व डर गये, वे भरतजी की शरण गये। भरतजी ने उन्हे अभय दान दिया, और कह दिया—'तुम सब अपने स्त्री बाल-बच्चो को लेकर हिमालय पहाड के आस-पास गन्धमादन पर्वत की पुण्य भूमि पर चले जाओ, जहाँ भगवान् नर-नारायण तपस्या करते हैं।"

सूतजी कहते है—'मुनियो! भरतजी की आज्ञा शिरोधार्य करके वे शैलूष गन्धर्व के वशज सब गन्धमादन पर्वत पर जाकर रहने लगे। मुनियो! अभी उनके वशज बद्रीनाथ से आगे मणि-पुर (माणा) नामक ग्राम में निवास करते हैं बहुत से तिब्बत मे रहते हैं।"

जब सब गन्धर्व चले गये तो भरतजी ने सिन्धु नदी के दोनों ओर दो अति सुन्दर नगर बसाये। वे नगर अत्यन्त ही सुन्दर थे। एक का नाम तक्षशिला रखा, जिसमे तक्ष को अभिषिक्त किया। दूसरी गान्धार देश (काबुल कन्धार) मे पुष्कलवती पुरी बसाई जिसके सिंहासन पर पुष्कलजी को बिठाया। इस प्रकार ५ वर्षो मे सम्पूर्ण राज्य की व्यवस्था करके भरतजी पुन अपने

कुछ सैनिकों के साथ अयोध्यापुरी में लौट आये। विजयी भरत का आगमन सुनकर सभी लोग परम प्रसन्न हुए। लक्ष्मणजी तथा शत्रुघ्नजी उन्हें कोश भर पहिले ही लेने आये। भरतजी ने अपने बड़े भाई भगवान् रामचन्द्रजी के पादपद्मों में प्रणाम किया। भगवान् ने भी उठकर उनका दृढ़ आलिंगन किया। सिर सूँघ कर उनकी कुशल पूछी और तक्ष तथा पुष्कल के राजा होने की बात सुनकर प्रसन्नता प्रकट की।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! जैसे भरतजी के पुत्र राजा हुए वैसे ही लक्ष्मणजी के भी दोनों पुत्र राजा हो गये?"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! लक्ष्मणजी के दो पुत्र कौन थे, वे किस देश के राजा हुए, कृपया इस कथा को भी आप हमें सुना दें।"

इस पर सूतजी बोले—"अच्छी बात है महाराज! लक्ष्मणजी के पुत्रों का भी वृत्तान्त सुनिये।"

छप्पय

सात दिवस तक युद्ध उभय दल कीयो डटिकें।
लड़े वीर गन्धर्व गये नहिं कोई हटिकें॥
भरत और शैलूष भिड़े लखि सब घबराये।
विजय भरतकी भई शत्रु सुरसदन सिधाये॥
तक्षशिला सुत तक्षकूँ, पुष्कल कूँ पुष्कलवती।
चले सुतनि दै दै पुरी, रखि सेना तहँ बलवती॥

लच्मण जी के पुत्रों को राज्य

[७००]

अङ्गदश्चित्रकेतुश्च लक्ष्मणस्यात्मजौ स्मृतौ।
तक्षः पुष्कल इत्यास्तां भरतस्य महीपते ॥❀
(श्री भा० ६ स्क० ११ अ० १२ श्लो०)

छप्पय

भरत अवधमहँ आइ राम चरननि सिर नायो।
बोले प्रभु नहिँ लखन कहँ को भूप बनायो॥
लछिमन के सुत चन्द्रकेतु अङ्गद नृप होवें।
तब हम हैं निश्चिन्त नींद फिर सुख की सोवें॥
देश कारुपथ सुघर अति, भूमि उरवरा विपुल जल।
कही भरत सुनि विजय हित, चले लखन सँग विपुल बल॥

जो परिवार का श्रेष्ठ पुरुष होता है, वह परिवार के सभी स्त्री पुरुषों का समान रूप से ध्यान रखता है। मुखिया होकर जो विषम बर्ताव करता है, न्यायाधीश होकर जो भेदभाव करता है, वह श्रेष्ठ नहीं, सर्वमान्य नहीं। जैसे मुख खाता तो अकेला है, किन्तु पालन समस्त अङ्गों प्रत्यङ्गों का करता है इसी प्रकार

❀ श्री शुकदेव जी कहते हैं—"राजन्! अङ्गद और चित्रकेतु ये दो लक्ष्मण जी के पुत्र हुए और तक्ष, पुष्कल ये दो श्री भरतजी के सुत थे।

परिवार का प्रधान लोक दृष्टि मे तो सभी सम्मान का वह स्वतः ही उपभोग करता है, किन्तु वह वास्तव मे अपने लिये कुछ भी नही रखता। सभी परिवार वालो को उचित ढङ्ग से सब बाँटकर स्वय उससे पृथक रहता है।

सूतजी कहते है—"मुनियो ! शत्रुघ्न जी के दोना पुत्र माथुर-मडल तथा शूरसेन देशो के राजा हो गय। भरतजी के दोनो पुत्र पञ्चनद और गन्धार देश के राजा हो गय, अब लक्ष्मण के दो पुत्र और रह गये। उनको राजा बनाने की भगवान् को बडी चिन्ता थी।"

एक दिन उन्होने सभा मे कहा—'लक्ष्मण ! शत्रुघ्न भरत तो राजा हो गये अब मै तुम्ह और राजा बनाना चाहता हूँ।"

लक्ष्मण जी ने कहा— प्रभो ! मेरी यही भीख है, मुझे आप अपने पादपद्मो से पृथक न करें। मैं आपका दास हूँ, अनुचर हूँ, किंकर हूँ, भृत्य हूँ, अनन्य हूँ, मेरे तो आपही गति हैं, आपही मति हैं, मेरे सर्वस्व आपही है, अखिल ब्रह्माण्ड के राज्य को मैं आपके दर्शनो के सम्मुख तृण समान समझता हूँ, मुझे राज्य से क्या काम ?'

भगवान् ने बात को बदलते हुए कहा—' नहीं तुममे मेरा अभिप्राय तुम्हारे अङ्गद और चित्रकेतु इन दोनों पुत्रों से है। ये सब आठ भाई हैं, मेरे लिये सब समान ही है, इसलिये ये सबके सब राजा बन जायँ यह मेरी आन्तरिक अभिलाषा है।"

लक्ष्मण जी ने कहा—'हाँ, इसके लिये मुझे जो सेवा आप बतावें उसे मैं करूँगा, आपकी आज्ञा पालन करना यही तो हमारा धर्म है।'

भगवान ने कहा—"कोई ऐसा समृद्धिशाली देश खोजो जहाँ

की भूमि उर्वरा हो जल की कमी न हो। जहाँ वर्णाश्रमी लोग रहते हों और जो यहाँ से दूर भी न हो।"

यह सुनकर भरतजी ने कहा—"समीप में ही कारुपथ और मल्ल (गोरखपुर के आस-पास) ये दो देश है। ये देश देखने में भी रमणीक हैं; इनमें वन भी बहुत हैं, हिमालय की तराई तक फैले हुए हैं। आजकल ये राज्य बिना राजा के पड़े हुए हैं। इन देशो में राजधानियाँ बनाकर लक्ष्मण के दोनो पुत्रों का वहाँ अभिषेक किया जाय। मेरी तो यही सम्मति है।"

भगवान् ने कहा—'यह देख लो, वहाँ राजधानी बनाने से अन्य राजा तो संघर्ष न करेंगे अथवा आश्रमवासी मुनियों को तो कोई कष्ट न होगा।"

भरतजी बोले—'राजाओं से संघर्ष होने की तो कोई बात ही नहीं। आजकल वहाँ कोई राजा है ही नहीं। बिना राजा के प्रजा मनमानी करने लगती है। आश्रम वासियों के कार्यों में हम कोई विघ्न न डालेंगे। उनके वन तो राज्य से पृथक् ही समझे जाते हैं। वनो मे वे भजन, पूजन, जप, तप, तथा यज्ञादि पुण्य कार्य करते रहे, हम उनके कार्यों मे शक्तिभर सहायता ही देंगे। कुछ स्वार्थी लोग उन देशों पर अपना अधिकार करने को उत्सुक हैं, उन्हें हम घर भगावेंगे।'

भरतजी की बात सुनकर श्रीरामचन्द्रजी अत्यन्त ही प्रसन्न हुए। सभी को यह बात रुचिकर प्रतीत हुई। दूसरे दिन बड़ी भारी सेना सजाकर लक्ष्मणजी को उनके पुत्र अङ्गद और चन्द्रकेतु के साथ कारुपथ देश की ओर श्रीरामचन्द्रजी ने विदा किया। स्नेह वश श्रीरामचन्द्रजी नगर के बाहर तक पुत्रों सहित लक्ष्मण जी को विदा करने आये। अन्त में सबका सिर सूँघकर तथा आशीर्वाद देकर भगवान् ने उन्हें विदा किया।

लक्ष्मणजी ने श्रीराम की आज्ञा शिरोधार्य करके सहज में ही उन देशो पर अपना अधिकार जमा लिया। जिन स्वार्थियों ने स्वार्थ वश उनका विरोध किया उनके कार्यों मे विघ्न डाला। उन्हे उचित दंड देकर ठीक किया गया। श्रीरामचन्द्रजी की आज्ञा से लक्ष्मणजी ने कारुपथ देश मे एक सुन्दर नगरी बनवाई; जिसका नाम अङ्गदीया रखा। वह अत्यन्त ही सुन्दर ढग से बनाई गई थी। उसमे बडे-बडे चौडे राज-पथ थे। विविध वस्तुओं के व्यापारी वहाँ क्रय-विक्रय करते थे, चातुर्वर्ण के लोग उसमे निवास करते थे। उसका किला दृढ और अजेय था। नगर के चारो ओर परिखा थी। उस भरी पूरी समृद्धिशालिनी पुरी में लक्ष्मण पुत्र अङ्गद का राज्याभिषेक किया गया। अङ्गद भी श्रीरामचन्द्रजी के शासन मे रहते हुए उनकी आज्ञा से उन देशो का धर्मपूर्वक पालन करने लगे।

दूसरे पुत्र चन्द्रकेतु के लिये भी मल्ल देश मे एक चन्द्रकान्त नामक नगर बसाया गया। श्रीरामचन्द्रजी की आज्ञा से भरतजी ने सम्पूर्ण मल्ल देश को अपने वश मे कर लिया। नगर का निर्माण योग्य शिल्पिया से उन्होने कराया। वह नगर इतना सुन्दर बना, कि दूसरा अवध सा ही प्रतीत होता था। भरतजी ने उस नगरी के राजसिंहासन पर चन्द्रकेतु का विधिवत् राज्याभिषेक किया। चन्द्रकेतु भी श्रीरामचन्द्रजी की आज्ञा मानकर उस देश का पालन करने लगे।

इस प्रकार लक्ष्मणजी और भरतजी एक-एक वर्ष तक इन नई राजधानियों के प्रबन्ध में वहाँ रहे। जब दोनों ने देखा राज्य शासन ढंग से चलने लगा। राज्य में कोई विरोधी शक्ति शेष नही रही। सभी ने श्रीरामचन्द्रजी का शासन स्वीकार कर लिया, तो वे दोनों अङ्गद और चन्द्रकेतु को भाँति-भाँति की राज-

नीति की शिक्षा देकर, अवधपुरी में श्री रामचन्द्रजी के समीप लौट आये। श्री रामचन्द्र जी के वियोग में ये दिन लक्ष्मणजी तथा भरत जी के बड़े ही कष्ट से बीते। लक्ष्मण जी ने विनय की—"प्रभो! मुझे कभी भी पदि पद्मों से पृथक् न किया जाय।" श्री रामचन्द्र जी ने अपने दोनों विजयी बन्धुओं का सिर सूँघा और अत्यन्त प्यार के साथ कहा—"भैया! मैं कब चाहता हूँ, तुम मुझसे पल भर भी पृथक् हो, किन्तु यह कर्तव्य इतना कठोर कार्य है; कि इच्छा न रहने पर भी बहुत से कार्य करने पड़ते हैं।

इस प्रकार श्री रामचन्द्रजी का प्रेम पाकर भरत जी तथा लक्ष्मण जी आनन्द पूर्वक अयोध्या में निवास करते लगे। श्री रामचन्द्र जी के चरणों में दृढ़ अनुराग होने के कारण उन्हें समय का बीतना प्रतीत ही नहीं होता था।

यह सुनकर शौनक जी ने पूछा—"सूत जी! आपने भरतजी के पुत्र तक्ष और पुष्कल, लक्ष्मण जी के पुत्र अंगद और चित्रकेतु तथा शत्रुघ्न जी के पुत्र सुबाहु और श्रुतसेन इन सब का तो वृतान्त बताया, किन्तु श्री रामचन्द्र जी के जो दो पुत्र लव और कुश जो भगवान् वाल्मीकि के आश्रम में हुए, उनका क्या हुआ। वे राजा हुए या नहीं? श्री रामचन्द्र जी ने उन्हें स्वीकार किया या नहीं? सीताजी को पुनः बुलाया या नहीं? इन सब बातों को कृपा करके हमें और सुनाइये।"

इस बात को सुनकर सूतजी के नेत्रों में जल भर आया। वे बोले—"मुनियो! कथा कहने का कार्य बड़ा ही क्रूर है। कहने वाले की अपेक्षा लिखने वाले लेखक का हृदय तो पाषाण से भी कठोर होता होगा, जो इन करुण प्रसंगों को लोह की लेखनी से निर्भय होकर लिखता जाता है। आपने मुझसे अत्यन्त ही कारुणिक प्रश्न कर डाले, उनका जितना उत्तर दे सकूँगा दूँगा।

आप अपने हृदय को हाथ से थाम कर इस रोमाच कारी वृत्ता
को सावधान होकर श्रवण करें।

छप्पय

पुरी कारुपथमोहिँ अङ्गदीया रचवाई।
अङ्गद राजा करे प्रजा सुनि अति हरपाई॥
चन्द्रकेतु हित चन्द्रकान्त शुभ पुर बनवायो।
लखन तनय नृप भये हृदय हरि को अरि आयो॥
सब बन्धुनि के पुत्र नृप, भये सुनो अब सिय कथा।
अति करुनामय अति दुखद, सुनत होहिँ हियमहँ व्यथा॥

००० इसके आगे की कथा अगले अक मे पढिये ! ०००

॥ श्री हरि ॥

संकीर्तन भवन, झूसी (प्रयाग) से प्रकाशित

श्री प्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी द्वारा लिखित

पुस्तकों का

संक्षिप्त सूची-पत्र

हिन्दुत्व की रक्षा के निमित्त प्रत्येक हिन्दु के लिये
नित्य अवश्य पालनीय चार नियम

१. शिखाधारण — प्रत्येक हिन्दु को सिर पर शिखा अवश्य रखनी चाहिये।

२. प्रात स्मरण — प्रात काल उठकर अपनी निष्ठा के अनुसार भगवान् के किन्हीं नामों का स्मरण अवश्य करना चाहिये।

३. देवदर्शन — नित्य नियम से आस-पास के किसी देवालय या मन्दिर में-दिन में एक बार-किसी भी समय देवता को प्रणाम अवश्य करना चाहिये।

४. धर्मग्रन्थ पाठ — किसी भी धार्मिक ग्रंथ का एक श्लोक अथवा एक छंद ही नित्य नियम से पाठ अवश्य करें अथवा सुने ही।

इससे अधिक जितना भी धार्मिक कृत्य करें, उतना ही उत्तम है।

"अधिकस्याधिकंफलम्"

१. भागवती कथा (१०८ खडो में)—अब तक ७० खण्ड छप चुके हैं। प्रत्येक खड की न्योछावर १ रु० ६५ पैसे।

श्रीमद्‌भागवत को उपलक्ष्य बनाकर इसमें अष्टादश पुराण तथा सभी वेद शास्त्रों का सार सरल, सुगम, सरस भाषा मे वर्णित हैं। पढते-पढते आपकी तृप्ति न होगी, एक अध्याय को समाप्त करके दूसरा अपने आप ही पढने लगेंगे। सर्वथा औपन्यासिक शैली मे लिखी है, भाषा इतनी सरल ओज पूर्ण है कि थोडे पढे बालक मातायें तथा साधारण पुरुष भी समझ सकते हैं। अध्याय के आरम्भ मे एक श्रीमद्भागवत का श्लोक होता है फिर एक उसी भाव की छप्पय, फिर उसी अध्याय की सारगर्भित भूमिका। तदनन्तर प्रतिपादित विषय, दृष्टान्त और सरल कथाओ तथा कथोपकथन के रूप मे वर्णित है, अन्त मे एक छप्पय देकर अध्याय की समाप्ति की है। प्रत्येक खड मे १५-२० अध्याय होते हैं, लगभग २५० पृष्ठो का एक खड होता है। प्रत्येक खड का मूल्य १) रुपया ६५ पैसे। उत्तर प्रदेश, बिहार तथा बहुत सी जिला परिषदो के पुस्तकालयों के लिये सरकार द्वारा स्वीकृत है। ६८ खडों म तो श्रीमद्‌भागवत के आधार पर विवेचन है ६९ वें खड से गीतावार्ता नाम से श्रीमद्भगवत्‌गीता का विवेचन हो रहा है। २०) भेजकर स्थायी ग्राहक बनें। वर्ष के १२ खड आपको घर बैठे रजिष्ट्री से मिल जाया करेंगे।

६० खडा मे तो कथा भाग समाप्त हो गया है। शेष खडो में से प्रत्येक में किसी एक विषय का विवेचन होता है। सभी खड प्राय. स्वतन्त्र हैं। विद्वानो नेताओ तथा प्रतिष्ठित पुरुषो ने इसकी भूरि-भूरि प्रशसा की है। हमारा बडा सूची-पत्र बिना मूल्य मँगाकर बहुत से विद्वानो की सम्मतियाँ पढें। यह ग्रन्थ किसी का अक्षरश अनुवाद नही स्वतन्त्र विवेचन है। हम यहाँ ७० वें खड पर केवल एक सम्मति राष्ट्रीय स्वय सेवक संघ के सर सघचालक श्री गुरुजी की ही देते हैं—

राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के सर संघचालक
परम पूज्य श्री माधव सदाशिव गोलवलकर
(श्री गुरुजी)
की

भागवती कथा
पर
शुभ-सम्मति

लगभग एक वर्ष पूर्व की बात है। श्री बदरीनारायण क्षेत्र में श्रद्धेय श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी जी महाराज ने संकीर्तन भवन का निर्माण कराया था और उसका उद्घाटन मैंने ही करना चाहिए ऐसी उनकी इच्छा थी। श्री महाराज जी की इच्छा को आदेश मानकर मैंने श्री बदरीनाथ की यात्रा करने का निश्चय किया। सोचा कि वर्षों की उत्कट इच्छा पूर्ण करने के लिए परम कृपालु श्री बदरीनाथ ने ही यह संयोग बनवाया और अपने अन्तरग भक्त श्री ब्रह्मचारी जी महाराज को मुझे भवन के उद्घाटन करने के हेतु निमन्त्रित करने की प्रेरणा दी होगी। इस कार्यक्रम का निमित्त बनाकर मुझपर श्री भगवान् ने दया कर मुझे अपने पास खींचकर ले जाने का मेरे लिए भाग्य का सुयोग्य प्राप्त कर दिया। अकारण करुणा करने का यह पवित्र खेल, खेल कर मुझ पर अपना वरदहस्त मानो रख दिया।

श्री महाराज जी की सन्निधि में यात्रा करने के आनन्द का वर्णन करना मेरी शक्ति के बाहर है। श्री बदरीनाथ पहुँच कर पाँच रात्रि वहाँ भगवद्चरणों मे रहने का सद्भाग्य प्राप्त हुआ। और श्री महाराज जी के श्रीमुख से श्रीमद्भागवत के कुछ अंश का विवरण सुनने का असीम सुख प्राप्त कर सका। भगवान् श्रीकृष्ण जी के मथुरा चले जाने के कारण शोक विह्वल गोप गोपियों और विशेष कर नन्द बाबा और यशोदा मैया की भाव विभोर अवस्था का उनके द्वारा किया हुआ वर्णन, पत्थर को पिघला सकने वाला कारुण्य रस का उत्कट

माविष्कार था। उनको सान्त्वना देने के लिए श्री भगवान् के द्वारा प्रेषित उद्धव जी के आगमन पर गोप, गोपी, यशोदा माई, आदि की स्थिति, उनकी भावनाएँ, उनका उद्धव जी के साथ हुआ संभाषण श्री ब्रह्मचारी जी के श्री मुख से सुनते-सुनते मन एक सुखद वेदना का अनुभव कर द्रवित हो जाता था। इस अनुभव का वर्णन किस प्रकार करूँ?

यह मंगल अनुभव सब लोगों को प्राप्त होना कितना अच्छा होगा ऐसा विचार मन मे उठता रहा, और इसका समाधान भी प्राप्त हुआ है। पूज्य श्री ब्रह्मचारी जी ने अपनी मधुर भावनी भाषा मे श्री मद् भागवत को सरल हिन्दी मे प्रसिद्ध करने का संकल्प किया था और उसके अनेक खंड प्रकाशित भी हो चुके थे इसका पुन स्मरण हुआ जब श्रद्धेय श्री महाराज जी का कृपा पत्र मुझे प्राप्त हुआ कि श्री मद्भागवती कथा लेखन का कार्य जो बीच मे रुक-सा गया था, उन्होंने फिर करना प्रारम्भ कर दिया है और अब ७० वां खण्ड छप रहा है। श्री महाराज जी ने उसकी प्रस्तावना के रूप मे मुझे कुछ लिखने का आदेश दिया। मुझे मेरी अयोग्यता का कुछ ज्ञान तो अवश्य है। अतः मैं निश्चय नही कर सका कि मुझे क्या करना उचित होगा। किन्तु श्री महाराज जी का आग्रहपूर्ण और एक पत्र आने पर यह धृष्टता करने बैठा हूँ।

इसमे मेरा एक ही काम है। सब बन्धुओ व माताओ से मैं नम्रता पूर्वक प्रार्थना करता हू कि श्री ब्रह्मचारी जी की यह "श्रीमद्भागवती कथा" अपने पास रखें, उसका अध्ययन मनन करें। मूल श्री भागवत महापुराण समझना सबके लिए संभव नही है। पंडितो की विद्वता की "भागवते परीक्षा" होती है, यानी जो श्रीमद्भागवत रहस्य समझ सके वही विद्वान्, वही पंडित कहलाने योग्य माना जा सकता है, ऐसा परम्परा से अपने यहाँ विश्वास है। श्रीमद्भागवत की रहस्य की गूढता इससे अभिव्यक्त होती है। जहाँ पंडितो की बुद्धि कुंठित होती है वहाँ सामान्य श्रद्धालु वाचक की क्या स्थिति होगी यह समझना सरल है। फिर आज कल देववाणी संस्कृत के अध्ययन की उपेक्षा होने के कारण और भी

कठिनाई उत्पन्न हुई है। ऐसे सब बन्धु क्या श्रीमद्भागवत को समझने से वंचित ही रहे ? यह होना उचित नहीं। श्रीमद्भागवत तो सर्वश्रेष्ठ ज्ञान के परिपाक पर उत्पन्न होने वाली अद्वैत भक्ति का आधार है। श्री भगवान् की यह शब्दवपु ही है। उसके ज्ञान से वंचित रहने के समान मनुष्य का अन्य दुर्भाग्य हो नही सकता। इस दुर्भाग्य से रक्षण कर सर्वमान्य मनुष्य को श्रीमद्भागवत का रहस्य सुगम भाषा में बताना, श्रीमद्भागवत में अभिव्यक्त ज्ञान भगवत्स्वरूप तथा विशुद्ध पराभक्ति का बोध सब को अपनी बोली के माध्यम से प्राप्त कर देना आवश्यक है। और यह केवल सूक्ष्म भाषानुवाद के रूप में न होकर उत्कट भक्ति भाव से होना आवश्यक है।

श्री ब्रह्मचारी जी भगवद् भक्ति में नित्य लीन रहते हैं। अतः उनके मुख से निकलने वाली सहजवाणी विशुद्ध भक्ति के मधुर रस से आर्द्र रहती है। ऐसी मृदु मधुर सरस भाषा में श्रीमद्भागवत महापुराण रहस्य सबको अवगत करा देने के लिए वे कृत सकल्प हैं। अष्टोत्तरशत खण्डों में ग्रन्थ पूर्ण करने की उनकी योजना है। उसमें से यह ७० वाँ खंड है। शीघ्र ही शेष खंड भी प्रकाशित होंगे और सामान्य सीधे-साधे भोले किन्तु भक्ति की चाह रखने वाले असख्य श्रद्धालु बन्धुओं की अभिलाषा पूर्ण होगी ऐसा मुझे विश्वास है।

परम मंगल अकारण करुणामय दया घन श्री भगवान् की असीम कृपा से उनकी साक्षात् मूर्ति ही श्रीभगवती कथा के शब्द देह को धारण कर प्रकट हो और ससार तप्त जन को शांति प्रदान करे इस हेतु उनके चरण कमलों में मैं विनम्र प्रार्थना करता हूँ।

केवल प्रस्ताविक के नाते अधिक लिखना मेरे लिए अशोभनीय होगा। वस्तुतः मेरा यह लिखना भी सामान्य छोटे से दीपक से सहस्र रश्मि सूर्य नारायण को प्रकाशित करने की चेष्टा के समान हास्यास्पद है। श्री महाराज जी की आज्ञा का पालन करना इसी एक उद्देश्य से यह धृष्टता की है जिसके लिए सब श्रेष्ठ भक्त वाचक वृन्द से क्षमा-याचना करता हूँ। —मा० स० गोलवलकर

पता—संकीर्तन भवन, झूसी (प्रयाग)

२ भागवत चरित सप्ताह (पद्यो मे)—यह भागवत का सप्ता है। छप्पय छन्दों मे लिखा है। सैकडो सादे चित्र ५-६ बहुरगे चित्र कपडे की सुन्दर जिल्द है, लगभग हजार पृष्ठो की पुस्तक का मूल्य ६ रु ५० पैसे, पाँच सस्करणो मे अब तक २३ हजार प्रतियाँ छप चुकी हैं बिहार सरकार द्वारा पुस्तकालयो के लिये स्वीकृत है।

३ भागवत चरित (सटीक दो भागो मे)—अनुवादक—प रामानुज पाडेय, बी० ए० विशारद भागवत चरित व्यास भागव चरित की सरल हिन्दी म सुन्दर टीका है प्रथम खड छप चुका है। जिसं १२२५ पृष्ठ हैं मूल्य ८ रुपया। द्वितीय खड शीघ्र ही छपने वाला है।

४ बद्रीनाथ दर्शन—श्रीबद्रीनाथ यात्रा पर यह बडा ही खाजपूर ग्रन्थ है। बद्रीनाथ यात्रा की सभी आवश्यक बातो का तथा समस्त उत्तराखड के तीर्थों का इसम वर्णन है। लगभग सवाचार सौ पृष्ठो कं सजिल्द सचित्र पुस्तक का मूल्य ५) रुपया। भारत सरकार द्वार अहिन्दी प्रान्तो के लिये स्वीकृत है।

५ महात्मा कर्ण—महाभारत क प्राण महात्मा कर्ण का यह अत्यन्त ही रोचक शिक्षाप्रद तथा आलोचनात्मक जीवन चरित्र है। ३५६ पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य ३ रु० ४५ पैसे।

६ मतवाली मीरा—मीराबाइ के दिव्य जीवन की सजीव झाँकी तथा उनके पदो की रोचक भाषा म व्याख्या। २२४ पृष्ठ की सचित्र पुस्तक का मूल्य २ रु० ५० पैसे है। यह इसका छठा सस्करण है।

७ नाम सकीर्तन महिमा—नाम सकीतन के ऊपर जितनी भी शकायें उठ सकती हैं उनका शास्त्रीय ढङ्ग से युक्तियुक्त विवेचन है। मूल्य ६० पैसे।

८ श्रीशुक (नाटक)—श्रीशुकदेव मुनि के जीवन की दिव्य झाँकी। पृष्ठ स० १०० मूल्य ६५ पैसे

९ भागवती कथा की वानगी—भागवती कथा के खडो के कुछ अध्याय बानगी के रूप म इसम दिय गये हैं। इसे पढकर आप भागवती कथा की शैली समझ सकेंगे। पृष्ठ १०० मू० ३१ पैसे।

१० शोक शान्ति—अपने प्रिय स्वजनो के परलोक प्रयाण पर सान्त्वना देने वाला मार्मिक पत्र। शोक सतप्तो को सजीवनी बूटी है। पृष्ठ ६४, मूल्य ३१ पैसे। पचम सस्करण।

११ मेरे महामना मालवीयजी—महामना मालवीयजी के सुख"

सस्मरण १३५ पृष्ठ की छोटी पुस्तक, मूल्य ३१ पैसे।

१२. भारतीय संस्कृति और शुद्धि—क्या अहिन्दु पुनः हिन्दु बन सकते हैं, इस प्रश्न का शास्त्रीय ढङ्ग म प्रमाणों सहित विवेचन बडी ही मार्मिक भाषा मे किया गया है वर्तमान समय में जब विधर्मी अपनी सख्या बढा रहे हैं यह पुस्तक बडो उपयोगी है। पृष्ठ ७६ मूल्य ३१ पैसे।

१३. प्रयाग माहात्म्य—तीर्थराज प्रयाग के माहात्म्य पर ३२ पृष्ठ की छोटी सी पुस्तक मूल्य २० पैम।

१४. वृन्दावन माहात्म्य—श्रीवृन्दावन के माहात्म्य पर लघु पुस्तिका। मूल्य १२ पैसे।

१५. राघवेन्द्र चरित (छप्पय छन्दो म)—श्रीरामचन्द्र जी की कथा के ६ अध्याय भागवत चरित से पृथक् छापे हैं। रामभक्तों को नित्य पाठ के लिय बडी उपयोगी है। पृष्ठस० १६०। मूल्य ४० पैसे।

१६ प्रभुपूजा पद्धति—भगवान् की पूजा करने की सरल सुगम शास्त्रीय विधि इसमें श्लोको सहित बताई है। श्लोकों का भाव दोहाओं में भी वर्णित है। मूल्य २५ पैसे।

१७. चैतन्य चरितावली—महाप्रभु चैतन्यदेव की जीवनी। प्रथम खण्ड का मूल्य १ रु० ६० पैसे। अन्य खण्ड भी छपने वाले हैं।

१८. भागवत चरित की बानगी—इससे भागवत चरित के पद्यो की सरसता जान सकेंगे। पृष्ठ १०० मूल्य ३१ पैसे।

१९ गोविन्द दामोदर शरणागत स्तोत्र—(छप्पय छन्दो मे) दोनो स्तोत्र हैं। मूल स्तोत्र भी दिये हैं। मूल्य २० पैम।

२० श्रीकृष्ण चरित—भागवत चरित से यह पद्यो में श्रीकृष्ण चरित पृथक् छापा गया है। पृष्ठ २०४ मूल्य २ रु० ५० पैसे।

२१. गोपालन शिक्षा—गौ कैसे पालनी चाहिये। गौओ की कितनी जाति हैं, गौओ को कैसा आहार देना चाहिये। बीमार होने पर कैसे चिकित्सा की जाय। कौन कौन देशी दवाएँ दी जाय, इन सब बातों का इसमे विशद वर्णन है। पृष्ठ २०४ मूल्य २ रुपया ५० पैसे।

२२. मुक्तिनाथ दर्शन—नैपाल मे सुप्रसिद्ध मुक्तिनाथ तीर्थ है। यात्रा का बहुत ही हृदयस्पर्शी वर्णन है। नैपाल राज्य तथा नैपाल के समस्त तीर्थों का इसमे विशद वर्णन है, मूल्य २ रुपया ५० पैसे।

२३. आलवन्दार स्तोत्र मूल तथा छप्पय छन्दो मे अनूदित—

श्रीवैष्णव सम्प्रदाय के महामुनीन्द्र श्रीमत् यामुनाचार्य कृत यह र सर्वमान्य तथा बहुत प्रसिद्ध है।

२४ रास पचाध्यायी—भागवत चरित से रास पचाध्यायी छापी गयी है। बिना मूल्य वितरित की जाती है।

२५ गोपी गीत—श्रीमद्भागवत के गोपी गीत का उसी छ ब्रजभाषा अनुवाद है। वह भी बिना मूल्य वितरित है।

२६ श्रीप्रभु पदावली—श्रीब्रह्मचारीजी के स्फुट पदो का सु सग्रह है। पृष्ठ सख्या १२२ अमूल्य।

२७ परमसाहसी बालक ध्रुव—१०० पृष्ठकी पुस्तक मू० ६० पै

२८ सार्थ छप्पय गीता—गीता के श्लोक एक बार मूल अर्थ सहित छाप हैं। उनके सामने अर्थ की छप्पय हैं। सचित्र पु का मूल्य ३ रु० है।

२९. हनुमत् शतक—नित्य पाठ करने योग्य यह पुस्तक बहुत सुन्दर है। इसम १०८ छप्पय हैं, सुन्दर हनुमान जी का एक बहु तथा २१ सादे चित्र हैं। मूल्य ५० पैसे।

३०. महावीर हनुमान्—श्रीब्रह्मचारी जी महाराज ने श्रीहनु जी का यह विस्तृत जीवन चरित्र भागवती कथा की भाँति लिखा है, इ २१ अध्याय है। पृष्ठ सख्या २०६ मूल्य २) ५० पैसे।

३१ भक्त चरितावली (दो भागो मे) - यदि आप चाहते हैं हम भी प्रभु के भक्तो की गाथा पढकर, भक्ति म आत्मविभोर होकर, की दिव्य झाँकी की झलक का दर्शन करें तो आज ही भक्त चरिताव के दोनो भाग मँगाकर पढें। भक्त चरितावली भाग (१) पृष्ठ ४ मूल्य ४) रु०। भाग (२) पृष्ठ ३०३ मूल्य २ रु० ५० पैसे।

३२. छप्पय भर्तृहरि शतकत्रय—श्री भर्तृहरि के नीति, शृग और वैराग्य तीनों शतको का छप्पय छन्दो म भावानुवाद। पुस्तक ब ओजस्वी कविता म है। (प्रेस म)।

३३ श्री सत्यनारायण व्रत कथा (माहात्म्य)—छप्पय छन्दा श्लोक सहित भाष्य ही पूजा पद्धति भी सदोप म दी गई है। अभी छ है। पृष्ठ ७२ पैसे।

३४. छप्पय विष्णु सहस्र नाम तथा दोहा—भाष्य सहित सहस्र नामों के सहस्र दोहे। शीघ्र ही प्रकाशित होने वाली है।

मुद्रक—बंशीधर शर्मा, भागवत प्रेस, ८५२ मुट्ठीगंज (प्रयाग)